इकाई 1 : शहरीकरण: परिचय
(Urbanization: Introduction)

इकाई की रुपरेखा

1.0 उद्देश्य
1.1 प्रस्तावना
1.2 विकसित समाज का अर्थ एवं परिभाषा
1.3 विकासशील समाज का अर्थ एवं परिभाषा
1.4 विकसित एवं विकासशील समाज की विशेषताएं
1.5 विकासशील समाज की प्रमुख समस्याएं
1.6 विकसित एवं विकासशील समाज में अंतर
1.7 विकसित एवं विकासशील देशों में नगरीकरण की प्रक्रिया
1.8 विकसित एवं विकासशील देशों में नगरीकरण से उत्पन्न समस्याएं
1.9 सारांश
1.10 बोध प्रश्न एवं लघु उत्तर प्रश्नावली
1.11 निबन्धानात्मक प्रश्न
1.12 संदर्भ ग्रंथ सूची

1.0 उद्देश्य

इस ईकाई का मुख्य उद्देश्य है

- विकसित एंव विकासशील समाज की अवधारण को स्पष्ट करना ।
- विकासशील समाज के प्रमुख मापदण्ड तथा विशेषताओं की व्याख्या करना, विकासशील समाज की प्रमुख समस्याओं को स्पष्ट करना ।
- विकसित तथा विकासशील समाज में अंतर को स्पष्ट करना ।
- विकसित एवं विकाशील देशों में नगरीकरण की प्रक्रिया को स्पष्ट करना ।
- विकसित एवं विकासशील देशों में नगरीकरण की प्रक्रिया से उत्पन्न प्रमुख समस्याएं को स्पष्ट करना ।

1.1 प्रस्तावना

संपूर्ण विश्व के समाज प्रायः दो भागों में विभक्त रहते हैं। एक भाग में वे आधुनिक समाज आते हैं जहाँ विकास अपनी चरम सीमा में पहुँच जाता है, जिसके परिणामस्वरूप प्राकृतिक तथा मानव संबंधी समस्त साधनों, पूंजी एवं प्रौद्योगिकीय साधनों का मानवीय विकास में अपना एक सर्वोच्च योगदान होता है। ऐसे अति व्यवस्थित तथा उच्च समाज को विकसित समाज कहा जाता है। दूसरे भाग में वे समाज आते हैं जो अभी पूर्ण विकास को प्राप्त नहीं हो पाते हैं तथा धीरे–धीरे विकास की ओर उन्मुख होते हैं। अल्पविकसित समाज होने के कारण इन समाजों में निर्धनता, बेकारी, अशिक्षा तथा असुरक्षा जैसी कई समस्याएं व्याप्त होती हैं।

नगरीकरण की यदि बात करें तो विकसित एवं विकासशील समाज भी इस प्रक्रिया से अछूता नहीं रह गया है। इन दोनों ही समाजों में नगरीकरण की प्रक्रिया लगभग उन्नीसवी शताब्दी से प्रारंभ हो गई थी। किन्तु यह भी वास्तविकता है कि दोनों समाजों में नगरीकरण की प्रक्रिया समान रूप से विकसित हुई किंतु कई समानताएं होने के पश्चात् भी दोनों समाजों के नगरीकरण की प्रक्रिया में मौलिक अंतर पाए जाते हैं, यद्यपि दोनों समाजों में कई मौलिक असमानताएं होने के पश्चात् भी दोनों समाज एक ही तरह के नगरीकरण से उत्पन्न कई समस्याओं से जूझ रहा है, क्योंकि नगरीकरण की प्रक्रिया जहाँ एक ओर समाज को विकास की नई दिशा देता है वहीं दूसरी ओर कई अनगिनत समस्याओं को भी जन्म देता है।

1.2 विकसित समाज का अर्थ एवं परिभाषा

जिस समाज में औद्योगिकरण, नगरीकरण की प्रक्रिया तथा साक्षरता को अनुपात औसत से अधिक होता है। उस समाज को विकसित समाज कहा जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि विकसित समाज उन समाजों को कहा जाता है, जिसमें प्राकृतिक संसाधन प्रचुर मात्रा में औद्योगिकरण एवं प्रौद्योगीकरण का पर्याप्त उपयोग करके समाज को एक उच्चतर जीवनस्तर प्राप्त करने में अपना पूर्ण सहयोग प्रदान करता है। प्रायः विकसित समाजों में औद्योगीकरण, आधुनिकीकरण तथा नगरीकरण तीव्र गति से होता है।

प्रमुख समाजशास्त्री विरेन्द्र सिंह का मानना है कि विकसित समाज को दो बड़े भागों में विभाजित किया जा सकता है। एक ओर वे विकसित समाज हैं, जिन्होंने विकास के लिए प्रजातांत्रिक मार्ग का अनुसरण किया है और प्रजातांत्रिक ढांचे के अंतर्गत अपने को विकसित किया है। इन श्रेणी में पश्चिमी यूरोप के देश, इग्लैण्ड, संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा और आस्ट्रेलिया आदि आते हैं। इन सभी समाजों ने अपने यहाँ बड़ी सीमा तक स्वाधीन आर्थिक क्रिया और निजी अर्थव्यवस्था को स्थापित कर रखा है। इन समाजों में औद्योगिकरण, आधुनिकीकरण उपलब्धि– अभिविन्यास, सामाजिक गत्यात्मकता, राजनैतिक सामाजीकरण, सहभागिता एवं सहयोग का उच्च स्तर दिखाई पड़ता है। आर्थिक और भौतिक दृष्टिकोण से यह समाज समृद्ध एवं संपन्न समाज है। एरिक फ्राम के मतानुसार पूंजीवादी सभ्यता एवं समाज ने जहाँ एक ओर विकास का उच्चतर स्तर प्राप्त कर लिया है। वहीं दूसरी ओर मानवता के लिए मानसिक और भावनात्मक समस्याएं भी उत्पन्न कर दी हैं, जिनमें अलगाव की समस्या, मानसिक असंतोष भावनात्मक अस्थिरता, अर्थहीनता और आदर्शविहीनता की समस्या प्रमुख है। फ्राम ने लिखा है कि पश्चिमी पूंजीवादी समाजों में व्यक्ति ने अपने व्यक्तित्व की वास्तविकता और मूर्तता को खो दिया है और जन समाज में उसकी स्थिति वैसी ही होकर रह गई है जैसे किसी बड़ी मशीन में एक छोटे पुर्जे की होती है।

1.3 विकासशील समाज की अवधारणा एवं परिभाषा

जैसा कि हम जानते हैं कि संपूर्ण विश्व प्रायः दो भागों में विभक्त होता है। विकसित तथा अल्पविकसित। अल्पविकसित समाजों को प्रायः निर्धन, पिछड़े, अविकसित तथा विकासशील देशों के नाम से जाना जाता है। मायर एवं बाल्डविन और बारबरा वार्ड ने प्रायः अल्पविकसित समाज को निर्धन कहा है, क्योंकि आपके मतानुसार अल्पविकसित शब्द अल्पविकास के बजाय निर्धन कहना ज्यादा उपयुक्त है, क्योंकि अल्पविकसित शब्द भी उपयुक्त नहीं है। क्योंकि पिछड़ा और आत्मगौरव को ठेस पहुँचाते हैं। प्रो0 गुन्नार मिर्डल ने इसी कारण एक अधिक गतिशील एवं व्यापक शब्द ''अल्पविकसित देशों के प्रयोग का समर्थन किया है। हमारी राय में यह अधिक उपयुक्त है क्योंकि यह शब्द विकास की दो चरम सीमाओं अविकसित और विकसित के मध्य में स्थित होने के कारण इन देशों को अगले छोर पर पहुँचने के लिए प्रेरित करता है।

परिभाषायें

1. जे0आर0हिक्स ने ''कन्ट्रीब्यूश[1]न टू दी थियरी ऑफ ट्रेड साइकिल्स में विकसशील समाज की व्याख्या करते हुए लिखा है कि ''एक विकासशील देश वह है, जिसमें प्राविधिक तथा मौद्रिक साधनों की मात्रा उत्पादन एवं बचत के वास्तविक स्तर के समान ही निम्न होती है। जिसका परिणाम यह होता है कि श्रमिक को पुरस्कार (वेतन) बहुत कम मिल पाता है।
2. प्रो0 सेम्युलसन ने आर्थिक आधान पर विकासशील समाज की व्याख्या की है। साधारणतया एक विकासशील राष्ट्र वह है, जिसकी प्रति व्यक्ति आय ऐसे राष्ट्रों जैसे कनाडा, संयुक्त राज्य अमेरिका, बिट्रेन, फ्रांस तथा पश्चिमी यूरोप के प्रति व्यक्ति आय की तुलना में कम हो। ऐसे राष्ट्रों के आय के स्तर में पर्याप्त सुधार करने की क्षमता होती है।
3. जैकब वाइनर ने विकासशील समाज के संदर्भ में लिखा है कि एक विकासशील राष्ट्र वह है जहाँ अधिक पूंजी अथवा श्रम अथवा अधिक उपलब्ध प्राकृतिक साधनों अथवा इन सभी का उचित उपयोग करने की संभावना हो, जिससे कि समाज अपनी जनसंख्या को ऊँचा जीवन स्तर प्रदान कर सके और यदि प्रति व्यक्ति आय पहले से ही अधिक है तो रहन–सहन के स्तर को कम किए बिना अधिक लोगों का भरण–पोषण किया जा सके।[5]
4. रेगनर नर्क्स ने लिखा है कि विकासशील समाज वो है जिसमें जनसंख्या और प्राकृतिक साधनों की तुलना में पूंजी कम होती है।
5. प्रमुख समाजशास्त्री विरेन्द्र सिंह ने विकासशील समाज को निम्नांकित रूप में परिभाषित किया है।
    1. विकसित राष्ट्रों की तुलना में प्रति व्यक्ति आय कम है।
    2. प्राकृतिक साधनों एवं मानवीय शक्ति का उचित उपयोग न हो।
    3. निर्धनता प्रत्यक्ष हो।
    4. धार्मिक विश्वासों एवं रूढ़ियों का प्रभाव अधिक हो।
    5. प्रत्येक पहलू में विकास की संभावनाएं दृष्टिगोचर हो।
    6. जनसाधारण का जीवन स्तर निम्न हो।[7]

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि विकासशील समाज ऐसे समाज को कहा जा सकता है जहाँ औद्योगिकरण की प्रक्रिया काफी धीमी हो तथा विकसित समाजों की अपेक्षा प्रति व्यक्ति आय निम्न हो, विकास के दृष्टिकोण से भी ये समाज बहुत पिछड़े हुए होते हैं तथा समाज में जीवन यापन कर रहे प्रत्येक व्यक्तिा का जीवन स्तर निम्न होता है।

विकासशील समाज की परिभाषाएं :

प्रो0 डब्ल्यू0 सिंगर का मत है कि– अल्प–विकसित अर्थव्यवस्था को परिभाषित करने का कोई भी प्रयास, समय को बर्बाद करना है फिर भी किसी एक निश्चित निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए यह आवश्यक होगा कि कुछ प्रचलित परिभाषाओं का अध्ययन कर लिया जाए।

संयुक्त राष्ट्र संघ (U.N.O) की एक विज्ञप्ति के अनुसार– ''अल्प–विकसित देश वह है जिसकी प्रति व्यक्ति वास्तविक आय अमेरिका, कनाडा, आस्ट्रेलिया तथा पश्चिम यूरोपीय देशों की प्रति व्यक्ति वास्तविक आय की तुलना में कम है। प्रो0 सेम्युलसन (Samuelson) के विचार भी इस प्रकार के हैं।

प्रो0 मेकलियोड (A.N. Meleod) के मतानुसार– ''एक अल्प–विकसित देश अथवा क्षेत्र वह है, जिसमें उत्पत्ति के अन्य साधनों की तुलना में उद्यम एवं पूंजी का अपेक्षाकृत कम अनुपात है परंतु जहाँ विकास संभाव्यताएं विद्यमान हैं। अतिरिक्त पूंजी को लाभजनक कार्यों में विनियोजित किया जा सकता है।''

प्रो0 जे0 आर0 हिक्स (J.R. Hicks) के शब्दों में– ''एक अल्प–विकसित देश वह देश है जिसमें प्रौद्योगिकीय और मौद्रिक साधनों की मात्रा, उत्पादन एवं बचत की वास्तविक मात्रा की भांति कम होती है, जिसके फलस्वरूप प्रति–श्रमिक को औसत पुरस्कार उस राशि से बहुत कम मिलता है, जो प्राविधिक विकास की अवस्था में उसे प्राप्त हो पाता है।''

प्रो0 ऑस्कर लैंज (Oskar Lange) की दृष्टि में– ''एक अल्प–विकसित अर्थव्यवस्था वह अर्थव्यवस्था है जिसमें पूंजीगत वस्तुओं की उपलब्ध मात्रा देश की कुल श्रम–शक्ति को आधुनिक तकनीक के आधार पर उपयोग करने के लिए पर्याप्त नहीं है।'' प्रो0 नर्कसे ने भी अल्पविकसित देश को इसी आधार पर परिभाषित किया है।

जैकब वाईनर (Jacob Viner) के अनुसार– ''अल्प–विकसित देश वह देश है जिसमें अधिक पूंजी अथवा अधिक श्रम–शक्ति अथवा अधिक उपलब्ध साधनों अथवा इन सबको उपयोग करने की पर्याप्त संभावनाएं हों जिससे कि वर्तमान जनसंख्या के रहन–सहन के स्तर को ऊँचा उठाया जा सके और यदि प्रति–व्यक्ति आय पहले से ही काफी अधिक है तो रहन–सहन के स्तर को कम किए बिना अधिक जनसंख्या का निर्वाह किया जा सके।''

यूजीन स्टाले (Eugene Steley) के विचारानुसार– ''अल्प विकसित देश वह देश है जहां जनसाधारण में दरिद्रता व्याप्त है जो (दरिद्रता) अत्यन्त स्थाई व पुरातन है जो किसी अस्थाई दुर्भाग्य का परिणाम नहीं है, बल्कि उत्पादन के घिसे–पिटे एवं परंपरागत तरीकों और अनुपयुक्त सामाजिक व्यवस्था के कारण है जिसका अभिप्राय यह है कि दरिद्रता केवल प्राकृतिक साधनों की कमी के कारण नहीं होती है और उसे अन्य देशों में श्रेष्ठता के आधार पर परखे तरीकों द्वारा संभवतः कम किया जा सकता है।

भारतीय योजना आयोग के अनुसार एक अल्पविकसित देश वह देश है जहां पर एक अप्रयुक्त मानवीय शक्ति और दूसरी ओर अवशोषित प्राकृति साधनों का कम या अधिक मात्रा में, सह–अस्तित्व पाया जाता है।''

सामान्यतः एक अल्प–विकसित देश वह है जहाँ जनसंख्या की वृद्धि की दर अपेक्षाकृत अधिक हो, पर्याप्त मात्रा में प्राकृतिक साधन उपलब्ध हो परंतु उनका पूर्णरूपेण विदोहन न हो पाने के कारण उत्पादकता व आय का स्तर नीचा हो। सरल शब्दों में, वह देश अल्प–विकसित देश माना जाएगा जिसका आर्थिक विकास संभव हो किंतु अपूर्ण हो।

1.4 विकसित एवं विकासशील समाज की विशेषताएं

विकसित समाज की विशेषताएं– विकसित समाज की विशेषताओं की निम्नांकित आधार पर स्पष्ट किया जा सकता है।

1. औद्योगीकरण की तीव्र गति
2. नगरीकरण की तीव्र गति
3. साक्षरता की उच्च दर
4. प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि
5. धन का समान वितरण
6. प्रौद्योगिकीय विकास
7. संचार एवं यातायात की प्रचुर मात्रा
8. बैकिंग सुविधाएं
9. जीवन स्तर उच्च होना
10. आर्थिक विकास का स्तर उच्च होना
11. भौतिक सुख एवं समृद्धि का उच्च स्तर
12. स्वास्थ्य सेवाओं की पर्याप्त एवं प्रचुर उपलब्धियाँ
13. रोजगार के अवसरों की प्रचुरता
14. प्रजातांत्रिक संस्थाओं का सुदृढ़ होना
15. प्रत्याशाओं एवं सामान्यताओं के प्रति जनता का जागरूक होना

16. आधुनिक दृष्टिकोण
17. अंधविश्वास एवं रुढ़िवादिता का पूर्णरूप से अभाव
18. सामाजिक गतिशीलता एवं सामाजिक गत्यात्मकता में वृद्धि
19. राजनैतिक सुदृणीकरण
20. जीवन प्रत्याशाओं का उच्च स्तर

1. **विकासशील समाजों की विशेषताएं** :– विकासशील समाजों की विशेषताओं को निम्नांकित आधार पर स्पष्ट किया जा सकता है।
    1. निम्न प्रति व्यक्ति आय या वास्तविक आय का कम होना।
    2. कृषि अर्थव्यवस्था अथवा कृषि की प्रधानता
    3. कृषि संबंधी सुविधाओं एवं साधनों का अभाव
    4. अल्प–शोषित प्राकृतिक साधनों की प्रचुरता
    5. बैंक संबंधी सुविधाओं एवं साधनों का अभाव
    6. बेरोजगारी
    7. आय का असमान वितरण
    8. प्रौद्योगीकरण एवं नगरीकरण का अभाव
    9. औद्योगीकरण एवं नगरीकरण का अभाव
    10. जन्म और मृत्यु दर का उच्च होना
    11. जनसंख्या का आधिक्य
    12. साक्षरता का निम्न स्तर
    13. परंपरा, रीति–रिवाज, अंधविश्वास एवं धार्मिक विश्वासों की प्रधानता
    14. संचार एवं यातायात के साधनों का विकास न होना
    15. आधुनिक उत्पादन क्षमता एवं विधियों का अभाव
    16. प्रौद्योगिकरण एवं नवीन यंत्रों की जानकारी का अभाव
    17. राजनैतिक अस्थिरता की स्थिति
    18. सामाजिक एवं आर्थिक चेतना का आभाव
    19. महिलाओं की निम्न स्थिति
    20. आयात एवं नियति में असमानता
    21. उत्पादन क्षमता में परंपरागत विधियों की प्रचुरता

4.5 विकासशील समाज की प्रमुख समस्याएं

विकासशील समाज की अनेकों समस्याएं हैं, जिसमें विकास संबंधी समस्याएं प्रमुख है। अनेक समाजशास्त्रियों ने विकासशील समाजों की समस्याओं को स्पष्ट करने का प्रयास किया है जो निम्नांकित हैं।

1. यूजीन स्टैली के अनुसार– आर्थिक एवं प्राकृति साधन संबंधी समस्याओं के अतिरिक्त कुछ सामाजिक समस्याओं की ओर यूजीन स्टैली ने संकेत किया है, इन समस्याओं ने विकासशील देशों ने विकास की प्रक्रिया पर प्रतिकूल प्रभाव डाला है। स्टैली ने जिन समस्याओं की ओर संकेत किया है उनमें से प्रमुख निम्नलिखित हैं–

    (क) पुरानी आदतें, विचार पद्धतियाँ एवं संस्थाएँ– स्टैली ने इस तथ्य की ओर संकेत किया है कि विचारशील देशों में विद्यमान पुरानी आदतें, विचार पद्धतियाँ और संस्थाएँ विकास में बाधक सिद्ध हो रही है। इसके परिणामस्वरूप एक और वैज्ञानिक, प्रत्यक्षवादी एवं तार्किक दृष्टिकोण का प्रसार नहीं हो पा रहा है जिसके कारण इन देशों ने अनेक प्रकार के अंधविश्वास तथा अतार्किक विचार प्रचलित हैं जिन्होंने इन देशों की जनसंख्या की इच्छा और क्रिया की क्षमता को दुर्बल करके उसमें एक प्रकार की निष्क्रियता उत्पन्न कर दी है। दूसरी ओर, इन देशों के जनसाधारण में परिवर्तन का भय भी उत्पन्न कर दिया है जिसके फलस्वरूप विकास में बाधा पड़ रही है। विकसित तथा विकासशील देशों के अंतर के लिए उत्तरदायी कारकों को स्टैली ने न तो जलवायु से संबंधित किया है और न ही प्रजाति से बल्कि इन कारकों

को सामाजिक एवं सांस्कृति मानते हुए इनको आदत, विचार पद्धति एवं आचार से संबंधित किया है।

(ख) अप्रभावशाली, अप्रशिक्षित, अयोग्य तथा भ्रष्ट प्रशासन– स्टैली ने गारनर के इस मत से सहमति प्रकट की है कि अप्रभावशाली, अप्रशिक्षित, अयोग्य तथा भ्रष्ट प्रशासन विकासशील देशों में प्रबल समस्याएं उत्पन्न कर रहा है। विकास प्रगतिवादी नीतियों के अनुसरण तथा विवेकपूर्ण योजनाओं के क्रियान्वयन पर आधारित होता है और यह कार्य अधिकांशतः प्रशासन पर निर्भर करता है। अगर प्रशासन अयोग्य और भ्रष्ट है तो तीव्र विकास सहानुभूति का अभाव (Lack of Sympathy), आचारिकतावाद (Ritualism), संभ्रान्तवर्गवाद (Elitism), लालफीताशाही (Red Tapism), नैत्यवाद (Routinism), शासकीय आलस्य (Official lethargy) इत्यादि। कर्मचारीतंत्र के ये दोष विकास के प्रति न तो जागरूक हैं और न उत्तरदायी। प्रशासन का यह स्तर जनसाधारण से कटकर रह गया है और इस पर वास्तविक प्रजातांत्रिक नियंत्रण नहीं है। स्वयं सत्ताधारी वर्ग भी निहित स्वार्थों के कारण इस पर अंकुश लगाने पर असमर्थ रहा है।

(ग) उच्चतर भौतिक तथा सामाजिक प्रौद्योगिकी का अभाव– स्टैली ने विकासशील देशों में उच्चतर भौतिक तथा सामाजिक प्रौद्योगिकी के अभाव को विकास में एक बाधा बताया है। प्रौद्योगिकी की विज्ञान का व्यावहारिक तथा उपयोगी पक्ष माना जाता है। विकास की गति तभी तेज हो सकती है जब आर्थिक, सामाजिक तथा राजनैतिक आदि क्षेत्रों में उच्चतर अथवा विकसित प्रौद्योगिकी का प्रयोग किया जाए। आर्थिक विकास के लिए उच्चतर भौतिक प्रौद्योगिकी की आवश्यकता होती है। भौतिक प्रौद्योगिकी से अभिप्राय कल–पुर्जों तथा यंत्रों आदि से है और सामाजिक प्रौद्योगिकी से अभिप्राय सामाजिक परिवर्तन व पुनर्निर्माण के लिए रची गई विधियों, उपायों और पद्धतियों से है। उच्चतर भौतिक प्रौद्योगिकी के उपयोग से उत्पादन क्षेत्र में ऊर्जा और समय की बचत होती है तथा उत्पादन की मात्रा में वृद्धि एवं स्तर में सुधार होता है। इसी प्रकार उच्चतर सामाजिक प्रौद्योगिकी के उपयोग से प्रकार्य विरोधी संस्थाओं, हानिकारक प्रथाओं तथा दूसरी सामाजिक बुराइयों को समाज से दूर करने में सहायता मिलती है। अगर किसी देश में उच्चतर भौतिक एवं सामाजिक प्रौद्योगिकी का अभाव है तो यह तत्व भी विकास में बाधक सिद्ध होता है।

(घ) विकास की प्रबल प्रेरणा और इच्छा का अभाव– किसी देश के नागरिकों में विकास की प्रबल प्रेरणा और इच्छा का विद्यमान होना विकास के लिए आवश्यक दशा का स्थान रखता है। जैसाकि इस कथन से स्पष्ट है कि जहाँ इच्छा होती है, वहाँ मार्ग भी निकल आता है। अगर किसी देश के जनसाधारण में स्वयं विकास की प्रेरणा और इच्छा है तो सरकार के द्वारा विकास के लिए कितने ही प्रयत्न क्यों न किए जाएं, तीव्र विकास नहीं हो सकता। अगर किसी देश के साधारण नागरिकों में अपनी दरिद्र एवं हीन दशा को बदलने और सुधारने की चेतना तथा इच्छा नहीं है, अगर उनकी प्रत्याशाओं का स्तर नीचा है, अगर वे परिवर्तन से डरते हैं और नवीनता से घबराते हैं, अगर उनकी प्रथाएं तथा परम्पराएं विकास विरोधी हैं, अगर उनमें वैज्ञानिक दृष्टिकोण के विरोध की प्रवृत्ति पाई जाती है, तो ये सभी तत्व विकास में कठोर बांधा उत्पन्न कर सकते हैं। भारत में विकास की मंदगति के लिए अन्य कारकों के साथ–साथ यह कारक भी बड़ी सीमा तक उत्तरदायी रहा है।

(ङ) सहयोग की क्षमता का अभाव– सामूहिक प्रयत्न और परिश्रम विकास के लिए आवश्यक परिस्थिति का स्थान रखते हैं और यह तभी संभव हो सकता है जब किसी समाज के सदस्यों में सहयोग एवं सहकारिता की भावना एवं क्षमता मौजूद हो। जिन समाजों में जाति, प्रजाति एवं वर्ग के आधार पर कठोर संस्तरण पाया जाता है, वहाँ विभिन्न सामाजिक श्रेणियों के बीच पूर्वाग्रह, पक्षपात, और सामाजिक दूरी भी तीव्रतर पाई जाती है। ये तत्व सहकारिता एवं सहयोग की क्षमता के विकास में बाधक सिद्ध होते हैं जिसके फलस्वरूप सामूहिक प्रयत्न एवं परिश्रम संभव नहीं हो पाता और विकास में बाधा पड़ती है। भारत में विद्यमान जाति व्यवस्था ने पिछले हजारों वर्षों से सहकारिता, सहयोग और सामूहिक परिश्रम को कठिन बनाए रखा है जिससे विकास की गति मंद रही है।

2. कीनलेसाइड के मतानुसार (According to Kenleyside)–

जी हैम्बिग (G. Hambidge) द्वारा संपादित पुस्तक "Dynamic of Development" में कीनलेसाइड ने अपने एक लेख में विकासशील समाजों में विद्यमान विकास संबंधी समस्याओं का विश्लेषण किया है। कीनलेसाइड ने निम्नलिखित बाधाओं की ओर संकेत किया है–

1. जलवायु (Climate)
2. बीमारी (Disease)
3. सीमित साधन (Limited Resources)
4. साम्राज्यवादी विरासत (Colonial Heritage)
5. अत्यधिक जनसंख्या (Excess Population)
6. प्रतिकूल सामाजिक परंपराएं (Adeverse Social Traditions)
7. एक प्रभावशाली मध्यवर्ग की अनुपस्थिति (Absence of an Effective Middle Class)
8. पूँजी की कमी (Lack of Capital)
9. कुशल श्रम का अभाव (Lack of Skilled Labour)
10. अक्षय प्रशासन (Incompetent Administration)

2. संयुक्त राष्ट्र संघ की समीक्षानुसार–

सन् 1959 में प्रकाशित समीक्षा(Review), जिल्द सं0 5 में "What is Economic Development" शीर्षक के अन्तर्गत संयुक्त राष्ट्र संघ (U.N.O) द्वारा निम्नलिखित समस्याओं की ओर संकेत किया गया है–

1. अपर्याप्त कृषि उत्पादन।
2. अपर्याप्त आर्थिक संरचना तथा उत्पादन एवं वितरण संबंधी कारकों का अभाव।
3. जन प्रशासन में दोष एवं निर्बलता।
4. विकासशील देश की अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति के कारण सीमाबद्धता।
5. जनांककीय एवं सामाजिक समस्याएं।
6. बढ़ती हुई जनसंख्या की समस्या।
7. सामाजिक अभिवृत्तियाँ।

3. डी एस0 नाग के अनुसार–

नाग ने अपनी पुस्तक "Problem of Undeveloped Economy" में भारत के विशेष प्रसंग में विकास संबंधी सामाजिक समस्याओं पर प्रकाश डाला है। नाग ने जिन समस्याओं की ओर संकेत किया है, वे निम्नलिखित हैं–

1. कठोर धार्मिक अभिवृत्ति
2. जाति व्यवस्था
3. संयुक्त परिवार
4. प्राचीन संस्थाओं के प्रति रूढ़िवादी दृष्टिकोण।

5. गुन्नार मिर्डर के अनुसार–

गुन्नार मिर्डल ने अपनी पुस्तक में दक्षिण एशिया के देशों में विद्यमान विकास संबंधी बाधाओं एवं समस्याओं का विश्लेषण किया है। मिर्डल ने इस क्षेत्र, विशेषतया भारत में धर्म को विकास में सबसे बड़ी बाधा माना है। मिर्डल का मत है कि दक्षिणी, पूर्वी एशिया में धार्मिक अभिवृत्ति इतनी कठोर है कि इसने समाजिक परिवर्तन, आधुनिकीकरण एवं विकास में एक प्रतिकूल और नकारात्मक कारक का कार्य किया है। मिर्डल ने इस तथ्य की ओर संकेत किया है कि विश्व के इस क्षेत्र में जो परंपरागत और धर्म द्वारा स्वीकृत विश्वास प्रचलित हैं, वह सामान्यतया अतार्किक हैं। इसलिए इन विश्वासों ने न तो सामाजिक परिवर्तन को प्रोत्साहन दिया है और नही आधुनिकता संबधी आदर्शों एवं मूल्यों को प्रतिस्थापित होने दिया है। मिर्डाल ने लिखा है कि भारत में सामाजिक संस्तरण जो समाज की मूलभूत विशेषता है, के पीछे धार्मिक स्वीकृति

रही है। इस संस्तरण ने एक ओर आर्थिक विषमता को बढ़ावा दिया है और दूसरी ओर पंचवर्षीय योजनाओं के पर्याप्त क्रियान्वयन में समस्या करके विकास की गति को मंद कर दिया है।

विकासशील समाज की समस्याओं को मुख्य रूप से चार भागों में विभाजित किया जा सकता है–

1. आर्थिक समस्याएँ
2. सामाजिक समस्याएँ
3. राजनैतिक एवं प्रशासनिक समस्याएँ
4. अन्य–इसी के अंतर्गत अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं को भी सम्मिलित किया जाता है

प्रस्तुत अध्ययन में हम इन समस्याओं का विस्तृत वर्णन करेंगे जिसमें विकासशील समाज जैसे भारत आदि देश विशेष रूप से त्रस्त हैं।

1. निर्धनता की समस्या
2. बेरोजगारी की समस्याएँ
3. भिक्षावृत्ति की समस्याएँ
4. जनसंख्या विस्फोट की समस्या
5. जातिवाद की समस्याएँ
6. साम्प्रदायिकता
7. लोक जीवन में भ्रष्टाचार
8. क्षेत्रवाद
9. कृषि और भूमि संबंधी समस्याएँ
10. रूढ़ियाँ तथा धार्मिक नियोजन
11. नियोजन के प्रति उदासीनता
12. श्रम समस्याएँ

जैसा कि उपरोक्त विवेचना के आधार पर स्पष्ट है कि अनेक समाजशास्त्रियों एवं विद्वानों ने विकासशील समाज की समस्याओं की स्पष्ट व्याख्या की है। संक्षेप में विकासशील समाजों की समस्याओं को निम्नांकित रूप में स्पष्ट किया जा सकता है।

1. बेराजगारी की समस्या
2. निर्धनता या गरीबी की समस्या
3. जनसंख्या आधिक्य या जनसंख्या विस्फोट की समस्या
4. भिक्षावृत्ति का विकराल स्वरूप
5. कृषि योग्य भूमि की कमी
6. सांप्रदायिकता एवं जातिवाद की समस्याएं
7. वैचारिक स्वतंत्रता की कमी या अभाव
8. राजनैतिक तथा प्रशासनिक समस्याएं
9. जनता का विकास एवं नियोजन के प्रति उदासीनता
10. आय एवं श्रम का असमान वितरण
11. जीवन स्तर अथवा रहन–सहन का निम्न स्तर
12. शिक्षा के प्रचार–प्रसार की कमी
13. क्षेत्रवाद की समस्या
14. नियति की समस्या
15. नवीन अविष्कार के प्रयोगों के प्रति उदासीनता
16. रूढ़िवादी दृष्टिकोण
17. उच्च स्तरीय मशीनों, यंत्रों एवं प्रौद्योगिकी का अभाव
18. प्रशिक्षण एवं कुशल श्रम का अभाव
19. असमानतावादी दृष्टिकोण
20. हम की भावना का अभाव

1.6 विकसित एवं विकासशील समाज में अंतर

विकसित एवं विकासशील समाज के अंतर को पार्सन्स ने क्रिया संबंध सिद्धांत के अन्तर्गत निश्चित संरूप विकल्प के आधार पर विकसित किया है। पार्सन्स का मानना है कि किसी भ परिस्थिति में कर्ता के सामने दो विकल्प होते हैं, जिसमें से वह एक को स्वीकार करता है तथा दूसरे को अस्वीकार करता है। यदि कर्ता ऐसा निर्णय न करें तो वह लक्ष्य को नहीं प्राप्त करता है। वैसे ये विकल्प समाज विशेष की संस्कृति द्वारा स्वीकार अथवा अस्वीकार किए जाते हैं। प्रत्येक सांस्कृतिक व्यवस्था में ये विकल्प आदर्शमूलक पहलू से संबंधित होते हैं। संरूप विकल्प पार्सन्स के अनुसार पाँच प्रकार के होते हैं।

1. परिणाम पक्षीय अथवा तात्कालिक संतुष्टि संबंध
2. स्वहित अथवा सामूहिक हित संबंधी
3. सार्वभौमिक अथवा विशेष पक्षीय
4. गुणात्मक अथवा परिणाम पक्षीय
5. विशिष्ट पक्षीय अथवा व्यापक पक्षीय

हासलिट ने पार्सन्स का संदर्भ देते हुए लिखा है कि विकासशील समाजों में आर्थिक समानो तथा सामाजिक लक्ष्यों के निर्धारण में प्रदत्त संबंध व्यवहार अपनाया जाता है। लोग अर्जन संबंधी व्यवहार नहीं अपनाते यही कारण है कि विकासशील समाज में प्रदत्त प्रास्थिति की प्रधानता है। विकासशील समाज में विशिष्ट पक्षीय संबंधी विशेषता पाई जाती है, जबकि विकसित समाज में सार्वभौमिक पक्ष प्रधान होता है। विकासशील समाजों में लोगों का आर्थिक कृत्य व्यापक पक्षीय होता है जबकि विकसित समाजों में विशिष्ट हुआ करता है।

एस0एच0 फ्रैंकिल ने अपनी पुस्तक “The Economic Impact on Underdeveloped Countries” में स्पष्ट किया है कि विकासशील समाजों के जनसाधारण की इच्छाओं एवं प्रत्याशाओं पर विकसित देशों की आय तथा उपभाग के स्तर का उल्लेखनीय प्रभाव पड़ रहा है और विकासशील समाजों का जनसाधारण उसी जीवन स्तर की मनोकामना कर रहा है जो पाश्चात्य समाजों में प्राप्त किया जा चुका है। विकसित एवं विकासशील समाज में अंतर को निम्नांकित आधार पर स्पष्ट किया जा सकता है।

1. विकसित समाज की अधिकांश जनसंख्या विभिन्न प्रकार के औद्योगिक कारखानों एवं उद्योग धंधों पर कार्यरत होते हैं जबकि विकासशील समाज में जनसंख्या का अधिकांश भाग कृषि कार्यों पर आधारित होते हैं।
2. विकसित समाज में जनसंख्या घनत्व कम पाया जाता है जबकि विकासशील समाज में जनसंख्या के घनत्व में असमानता पाई जाती है।
3. विकसित समाज में प्रति व्यक्ति आय अधिक होती है जबकि विकासशील समाज में प्रति व्यक्ति आय निम्न होती है या काफी कम होती है।
4. विकसित समाज में प्रति व्यक्ति आय की दर उच्च होने के कारण व्यक्ति के जीवन स्तर का ढंग प्रायः उच्च होता है, जबकि विकासशील समाज में प्रति व्यक्ति आय कम तथा असमान होने के कारण जनसंख्या का जीवन स्तर प्रायः निम्न पाया जाता है।
5. विकसित समाज में नियोजन की प्रक्रिया काफी तीव्र होती है, जिससे उत्पादन क्षमता में तीव्रता से बढ़ोत्तरी होती है जबकि विकासशील समाज में नियोजन की प्रक्रिया की गति धीमी होने की वजह से विकास की प्रक्रिया तथा उत्पादन क्षमता भी धीमी गति से होती है।
6. विकसित समाज में नित नए उपकरणों तथा नए अविष्कारों के कारण कृषि में उत्पादन क्षमता में निरंतर वृद्धि होती रहती है जबकि विकासशील समाजों में परंपरागत कृषि शैली के कारण उत्पादन क्षमता में वृद्धि नहीं हो पाती।
7. विकसित समाजों में सुदृढ़ शिक्षा व्यवस्था पाई जाती है जिससे इन समाजों में साक्षरता की उच्च दर पाई जाती है जबकि विकासशील समाज में शिक्षा व्यवस्था उचित न होने के कारण साक्षरता–दर का प्रतिशत भी काफी कम पाया जाता है।
8. विकसित समाज में उत्पादित वस्तुओं के आयात एवं नियति की प्रक्रिया उच्च होती है जबकि विकासशील समाजों में आयात–निर्यात की प्रक्रिया काफी निम्न होती है।
9. विकसित समाज में महिलाओं की प्रास्थिति काफी उच्च पाई जाती है। जबकि विकसशील समाज में परंपरागत जीवन शैली होने के कारण महिलाओं की प्रास्थिति निम्न पाई जाती है।

10. विकसित समाज में नियंत्रण के साधन कठोर एवं सुदृढ़ होने के कारण कानून को विशेष महत्व दिया जाता है जबकि विकासशील समाज में नियंत्रण के औपचारित साधन जैसे धर्म, परंपराएं तथा रीति–रिवाज का महत्व अधिक होने के कारण कानूनों की महत्ता प्रायः कम पाई जाती है।
11. विकसित समाज में कर्म को विशेष महत्व दिया जाता है। जिसके परिणामस्वरूप अर्जित प्रास्थिति का विशेष महत्व होता है जबकि विकासशील समाज में आज भी प्रदत्त प्रास्थिति का विशेष महत्व होता है।
12. विकसित समाज वास्तव में प्रौद्योगिकीय समाज माना जाता है जबकि विकासशील समाज में प्रौद्योगीकरण इसे अविकसित एवं अप्राप्त माना जाता है।

1.7 विकसित एवं विकासशील देश में नगरीकरण की प्रक्रिया

नगरीकरण का तात्पर्य नगर निर्माण एवं नगरों की वृद्धि की एक प्रक्रिया है। वास्तव में नगरीकरण को अगर सरल शब्दों में परिभाषित किया जाए तो ग्रामीण जनसंख्या का नगरीय क्षेत्रों में जाना तथा नगरीय विशेषताओं को धारण करना ही नगरीकरण है। थामसन वारन ने इस संबंध में कहा है कि ''यह ऐसे समुदायों के व्यक्तियों का जो प्रमुख रूप से या पूर्णरूप से कृषि से जुड़े हुए हैं। उन समुदायों में जाना है जो साधारणतया (आकार) में उनसे बड़े हैं और जिनकी गतिविधियाँ मुख्य रूप से सरकार, व्यापार उत्पादन या इनसे संबंद्ध कारोबारों पर केन्द्रित हैं।
इसी प्रकार एन्डरर्सन का मानना है कि नगरीकरण एक तरफा प्रक्रिया न होकर दुररफा प्रक्रिया है। इसमें केवल गाँवों से शहरों में जाना नहीं होता परंतु इसमें प्रवासी के दृष्टिकोणों, विश्वासों, मूल्यों और व्यवहारों के स्वरूपों में भी परिवर्तन होता है।

उन्होनें नगरीकरण की पाँच विशेषताओं का उल्लेख किया है।[17]

1. मुद्राअव्यवस्था
2. सरकारी प्रशासन
3. सांस्कृतिक परिवर्तन
4. लिखित अभिलेख
5. अभिनव परिवर्तन

नगरीकरण के परिणामस्वरूप भारतीय सामाजिक संस्थाओं का स्वरूप भी बदल रहा है। इसके कारण संस्थाएं अनौपचारिक स्वरूप धारण कर रही हैं। नगरीकरण की प्रक्रिया आधुनिकीकरण के लिए आवश्यक है। यही कारण है कि विकासशील देश आज आधुनिकीकरण की प्राप्ति के लिए नगरीकरण को प्रश्रय दे रहे हैं।
नेल्सन एडरसन का मानना है कि जीवन के मार्ग के रूप में शहरीपन केवल शहरों एवं कस्बों तक ही सीमित नहीं हैं। यद्यपि दूसरा विकास विशाल नगर केद्रों में भी होता है। यह व्यवहार का ढंग है। जिसका अर्थ है कि कोई भी अपने विचारों तथा आचरण से शहर बन सकता है। भले ही निवास एक गाँव में करता है। दूसरी ओर एक अत्यंत अशहरीकृति शक्ति शहर के एक अति नगरीकृत क्षेत्र में निवास कर सकता है।
प्रमुख समाजशास्त्री **विरेन्द्र सिंह** का मानना है कि विकासशील देशों (जैसे भारत आदि) की यह विशेषता है कि वहाँ कभी–कभी या तो तीव्र गति से अथवा धीमी गति से नगरीकरण की प्रक्रिया कार्य करती है, जिसके कारण समाज का एक पहलू प्रभावित होता है तो अन्य पूर्ववत बने रहते हैं। ऐसा भी अनुभव किया जाता है कि वह भाग जो परिवर्तित हो रहा था। स्थिर अवस्था में तब तक बना रहता है। जब तक कि अन्य भाग उसकी बराबरी में नहीं आ पाते। अविकसित राष्ट्र जहाँ नगरीकरण की प्रक्रिया को अब कार्यशील माना जाता है। उसकी तुलना पश्चिमी देशों में हो रहे नगरीकरण से की जाती है भारत वर्ष में नगरीकरण की प्रक्रिया के कारण केवल नगरों में जनसंख्या की वृद्धि हो। विशेष उल्लेखनीय नहीं है अपितु नए–नए स्थान भी नगरीय विशेषताओं को धारण कर लेते हैं। आज इस ब्रह्मांड में जो विश्वव्यापी नगरीकरण की प्रक्रिया कार्यशील है उसकी कई विशेषताएँ होनी चाहिए। संभवतः इन्हीं विशेषताओं की प्राप्ति के लिए विकासशील देश नगरीकरण की प्रक्रिया को अपना रहे हैं। दूसरी ओर विकासशील राष्ट्रों को विदित है कि इन विशेषताओं की प्राप्ति व पश्चिमी देशों की नगरीकरण के कारण ही संभव हो सकती है।

विकसित एवं विकासशील देशों में नगरीकरण की प्रक्रिया विकास की मौजूदा प्रवृत्तियों पर निर्भर करती है। किंतु यह भी वास्तविकता है कि विकसित देशों की तुलनात्मक रूप में विकासशील देशों की अपेक्षा विकास की प्रक्रिया कम है ऐसा माना जाता है कि नगरीकरण का स्तर विकसित और विकासशील देश में एक बहुत बड़ अंतर आय वृद्धि है। 1960 के दशक में 35 देशों में लगभग प्रति व्यक्ति आय 2 डालर प्रति दिन थी जबकि नगरीकरण 15% था जबकि 2010 के दशक में 254 देशों की आय लगभग समान ही थी। जबकि नगरीकरण की दर लगभग 30% थी। अतः स्पष्ट होता है कि राजस्व तो स्थित है परंतु नगरीकरण की प्रक्रिया में वृद्धि हो रही है।
विकासशील देशों के यदि बड़े नगरों को देखा जाए तो यहाँ की आबादी न्यूयार्क या पेरिस के बड़े नगरों के समान ही है किंतु आय के स्तर में काफी असमानता पाई जाती है, जिसका प्रमुख कारण ग्रामीण जनता का शहरी प्रवजन प्रमुख है। विकासशील देशों में वर्तमान समय में कई नगर तीव्र गति से विकास कर रहे हैं तथा उत्पाद का स्तर भी उच्च है, किंतु ग्रामीण प्रवजन इस विकास की दर में असमानता लाने में एक प्रमुख भूमिका का निर्वहन कर रहा है, क्योंकि नगरों में प्रवजन के पश्चात् इन ग्रामीण जनता का एक रूप समूह नहीं होता जो नगरीय जीवन में कई समस्याओं को जन्म देता है। 2006 से 2011 के पाँच सालों के आंकड़ों को यदि देखा जाए तो लगभग 20 लाख से अधिक ग्रामीण जनसंख्या नगरों की ओर प्रवजन करते हैं।
इस प्रकार स्पष्ट है कि नगरीकरण की प्रक्रिया ने विकसित एवं विकासशील दोनों समाजों को एक नए स्वरूप में ढालने का प्रयास किया है, जिसमें एक ओर विकास की दर एवं प्रति व्यक्ति आय को तो बढ़ावा मिला है। वही दूसरी ओर असमानताओं के बावजूद प्रति व्यक्ति आय में भी वृद्धि हुई है।

1.8 विकसित एवं विकासशील देशों में नगरीकरण उत्पन्न प्रमुख समस्याएं

विकसित एवं विकासशील देशों में नगरीकरण की समस्या को निम्नांकित आधार पर समझा जा सकता है।

1. **मलिन बस्तियों में वृद्धि–** विकासशील देशों में प्रमुख समस्या उभर कर सामने आती है वह है प्रवजन के द्वारा जनसांख्यिकीय बदलावों का आाना ग्रामीण क्षेत्रों में प्रवजन के दौरान प्रायः युवा पुरुष नगरों की ओर रोजगार के अवसरों की तलाश में आते हैं। नगरीय जीवन के सीमित साधन नए प्रवासियों का सामना प्रायः नहीं कर पाते जिससे आवास एवं सुख–सुविधाओं की कमी के कारण झुग्गी–झोपड़ियों एवं मलिन बस्तियों का तीव्रता से निर्माण होने लगता है जो कई नई समस्याओं को जन्म देती है। जैसे अपराध, आत्महत्या, नशाखोरी, ड्रग्स, मृत्यु दर और शिशु दर की अधिकता आदि।
2. **बेरोजगारी–** विकसित एवं विकासशील देशों की आर्थिक समस्याओं में बेरोजगारी एक प्रमुख समस्या मानी जाती है। इन दोनों क्षेत्रों में काम की अनियमितता तथा आय असमानता प्रमुख है। कई विकसित देशों को असुरक्षित आर्थिक वृद्धि से एक प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है, जिससे उद्योगों में विशेषकर पारंपरिक उद्योगों में भारी गिरावअ देखने को मिलती है। जिससे मंदी के दौर में कर्मचारियों की संख्या कम करने से कई बार बेरोजगारी की समस्या उत्पन्न होने लगती है।
3. **पर्यावरणीय समस्या–** विकसित देशों में पर्यावरणीय समस्याएं विकासशील देशों की तुलना में सर्वाधिक पाई जाती हैं, अनेक उद्योग–धंधों, उच्च यंत्रों से सुसज्जित कारखानों, यातायात के साधन आदि से पर्यावरणीय प्रदूषण को सर्वाधिक बढ़ावा मिला है, जिससे स्वास्थ्य संबंधी कई प्रकार की समस्याओं का जन्म हुआ है। जिसे परिणामस्वरूप श्वसन, हृदय संबंधी बीमारियाँ तथा फेफड़े के कैंसर में तीव्रता से वृद्धि हुई है, अतः यह कहना कोई अतिशयोक्ति नहीं होती कि नगरीकरण की प्रक्रिया ने जल, वायु, ध्वनि तथा जलवायु प्रदूषण को बढ़ाने में एक प्रमुख भूमिका का निर्वहन किया है।
4. **पेयजल की समस्या–** नगरीकरण के कारण विकसित एवं विकासशील देशों में एक प्रमुख समस्या पीने के पानी की कमी है। कारखानों से निकलने वाले औद्योगिक अपशिष्ट को प्रायः नदी, नालों एवं समुद्र में विसर्जित कर दिया जाता है जिससे प्रायः नदी का जल दूषित हो जाता है। तत्पश्चात् वही जल आपूर्ति की जाती है। जो वर्तमान में कई देशों की जनता के स्वास्थ्य के लिए एक प्रमुख खतरा बन गया है।
5. **जलवायु परिवर्तन–** नगरीकरण तथा औद्योगीकरण ने विकसित एवं विकासशील दोनों देशों के जलवायु को परिवर्तित कर दिया है। औद्योगिक क्षेत्रों की वहुलता के कारण वायुमंडल का ताप

अत्यधिक बढ़ गया है जो तीव्रता से बढ़ता जा रहा है। ग्रामीण क्षेत्रों तक पहुंचने वाली अधिकांश सौर ऊर्जा वनस्पति एवं मिट्टी के पानी को वाष्पीकरण कर देती है। शहरों में जहाँ कम वनस्पति और मिट्टी होती है अधिकांश सूर्य की ऊर्जा को इमारतों और डामर द्वारा अवशोषित कर लेती है। उच्च सतह के तापमान के लिए अग्रणी वाहन कारखानों और औद्योगिकरण और घरेलू ताप ओर कूलिंग इकाइयाँ भी अधिक गर्मी जारी करती हैं।

6. **खाद्य असुरक्षा–** जुलाई 2013 की संयुक्त राष्ट्र की आर्थिक एवं सामाजिक मामलों की एक रिपोर्ट के अनुसार जलवायु एवं पर्यावरणीय परिवर्तन से 2050 तक 2.4 बिलियन से अधिक लोगों को खाद्य असुरक्षा का सामना करना पड़ सकता है। संयुक्त राष्ट्र के विशेषज्ञों के मुताबिक पर्यावरणीय परिस्थितियों में बदलाव और शहरी क्षेत्रों की बढ़ती आबादी का मिश्रण बुनियादी स्वच्छता प्रणालियों और स्वास्थ्य देखभाल पर रोग लगाएगा और संभवतः एक मानवीय और पर्यावरणीय आपदा पैदा करेगा।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि विकास एक ऐसे परिवर्तन को लक्षित करता है जो प्रगति की ओर सदैव उन्मुख होते हैं, किंतु यह भी सत्य है कि विकास किसी समाज में सकारात्मक भी हो सकता है और नकारात्मक भी। नगरीकरण की प्रक्रिया के संदर्भ में भी कहा जा सकता है कि चाहे विकसित देश हो या विकासशील देश दोनों ही समाजों में नगरीकरण ने जहाँ पर विकास के कई नवीन मार्गों को प्रशस्त करके समाज को एक नई दिशा प्रदान की है वही दूसरी ओर कई प्रकार की समस्याओं को भी जन्म दिया है।

1.9 सारांश

संपूर्ण विवेचना के आधार पर कहा जा सकता है कि नगरीकरण की प्रक्रिया से समस्त विश्व अछूता नहीं है। चाहे वह विकसित समाज या देश हो या विकासशील समाज या देश। दोनों ही देश नगरीकरण की प्रक्रिया तथा विशेषताओं को अपना रहे हैं। वास्तव में नगरीकरण आर्थिक विकास से जुड़ी हुई एक प्रक्रिया है, जो उत्पादक क्षमता को बढ़ाकर उद्योगों एवं सेवाओं की हिस्सेदारी को भी बढ़ावा देता है, नगरीकरण की प्रक्रिया ने विकसित एवं विकासशील दोनों देशों में विकास की वृद्धि दर को तो तीव्र किया है किंतु कई समानताओं के बावजूद मौलिक अंतर को भी स्पष्ट किया है। जिससे प्रमुख रूप से प्रति व्यक्ति आय में असमानता, जीवन प्रत्याशाओं में मौलिक असमानता तथा समाज के प्रत्येक क्षेत्र में मौलिक असमानताएँ आदि प्रमुख हैं।

विकसित एवं विकासशील इन दोनों ही देशों में नगरीकरण की प्रक्रिया ने प्रगति, विकास एवं उन्नति की दिषा को उन्नत किया है वहीं दूसरी ओर कई प्रकार की समस्याओं को भी जन्म दिया है, जिसमें प्रमुख रूप से मलिन बस्तियों का निर्माण, वेतन असंगतियाँ, स्वास्थ्य से संबंधित कई गंभीर बीमारियाँ, बेराजगारी, अपराध, बाल अपराध, वेश्यावृत्ति, ड्रग्स, नशाखोरी, मद्यपान, पर्यायावरणीय प्रदूषण, जलवायु परिवर्तन, जल प्रदूषण तथा खाद्य असुरक्षा आदि प्रमुख हैं।

1.10 बोध प्रश्न एवं लघु प्रश्नावली

1. बोध प्रश्न

सत्य/असत्य

1. विकसित समाज में साक्षरता दर अधिक होती है– सत्य/असत्य
2. विकसित एवं विकासशील दोनों देशों में नगरीकरण की प्रक्रिया समान रूप से होती है– सत्य/असत्य
3. विकासशील देश में जनसंख्या को आधिक्य होता है– सत्य/असत्य
4. विकासशील समाज में रोजगार के अवसरों की प्रचुरता होती है– सत्य/असत्य
5. विकसित समाज में प्रत्याशाओं का उच्च स्तर होता है– सत्य/असत्य

उत्तर

1. सत्य, 2. सत्य 3. सत्य, 4. असत्य, 5. सत्य।

लघु प्रश्नावली

1. विसित समाज किसे कहते हैं।
2. विकासशील समाज किसे कहते हैं।
3. विकासशील समाज की परिभाषाएं लिखिए।
4. विकसित एवं विकासशील समाज में अंतर।

5. एन्डरर्सन द्वारा लिखित नगरीकरण की पाँच विशेषताओं का उल्लेख करिए।
6. विकसित एवं विकासशील समाज की विशेषताए।

1.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. विकसित एवं विकासशील समाज को परिभाषित कीजिए?
2. विकसित एवं विकासशील देशों में नगरीकरण की प्रक्रिया?
3. विकसित एवं विकासशील देशों में नगरीकरण से उत्पन्न समस्याओं का सविस्तार उल्लेख कीजिए?
4. विकासशील समाज की प्रमुख समस्याओं को अलग–अलग समाजशास्त्रियों के विचारों के अनुसार परिभाषित कीजिए?
5. विकसित समाजों में नगरीकरण की प्रक्रिया का उल्लेख करिए?

इकाई 2: नगर, नगरों का कार्याधारित वर्गीकरण
(The City, Functional Classification of Cities)

इकाई की रुपरेखा

2.0 उद्देश्य
2.1 परिचय
2.2 नगरों के कार्याधारित विभाजन का ऐतिहासिक विकास
2.3 नगरों का कार्याधारित वर्गीकरण
    2.3.1 भारत में वर्गीकरण
    2.3.2 अन्य देशों में वर्गीकरण
2.4 अध्ययनों का समालोचनात्मक विश्लेषण
2.5 निष्कर्ष
2.6 अभ्यास प्रश्न
2.7 भावी अध्ययन

2.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के बाद हम जान सकेंगे कि नगरों को किस तरह वर्गीकृत किया जा सकता है। नगरों के विकास और वर्गीकरण का इतिहास क्या है और वे विद्वान कौन हैं, जिन्होंने कार्यों के आधार पर भारत और अन्य देशों में नगरों का वर्गीकरण किया।

2.1 परिचय (Introduction)

धरती पर विस्तृत कालखंड में विकसित हुये नगर अनंत सौंदर्यस्वरूप हैं। विद्वान शोधकर्ताओं से लेकर कवियों तक हर वर्ग, हर विचार के व्यक्ति को नगरों ने प्रभावित किया है। शोधकर्ताओं ने नगरों को मुख्यतः दो प्रकारों में वर्गीकृत किया है, 1. स्वतः विकसित (Grown) 2. नियोजित (Planned) (Blumenfeld, 1943). आदिकालीन व्यवस्था में आवास सुविधा नियोजित अथवा अनियोजित होती थी। मूल उद्देश्य विविध गतिविधियों के साथ आवास समस्या को हल करना था। प्राचीनकाल में लोग अधिकतर बिखरे हुये गांवों में रहते थे, जहां उनका मुख्य कार्य कृषि गतिविधियां थीं। यही वजह थी कि नगरों और गांवों की पहचान का एक मुख्य माध्यम कृषिकार्य और गैरकृषिकार्य बन गये। बाद में औद्योगिक विकास और आर्थिक गतिविधियों ने नियोजित नगरों का विकास किया। 'विकासशील अर्थव्यवस्थाओं (विशेषकर अफ्रीका में) में औद्योगीकरण के बिना भी शहरीकरण हो रहा है। चूंकि एक शहर गैर व्यापारिक वस्तुओं का उत्पादन कर सकता है साथ ही अंर्तराष्ट्रीय स्तर पर व्यापारयोग्य वस्तुओं का भी (यदि वे पर्याप्त प्रतिस्पर्धी हों), यह लाभ के पैमाने पर निर्भर करता है। कोई शहर व्यापारिक वस्तुओं का उत्पादन कर पाने में तब अक्षम होता है, जब शहर और आंतरिक क्षेत्रों में गैर व्यापारिक वस्तुओं की मांग अधिक हो अथवा शहरी अवस्थापना और निर्माण की लागत बेहद अधिक हो।' (Venables, 2017). नगर मानवजाति के सांस्कृतिक विकास के केन्द्र हैं।

यहां यह तथ्य भी उल्लेखनीय है कि पहली मानवीय आवासीय व्यवस्था का विकास अलग–अलग रुचियों, लक्ष्यों वाले लोगों के एकसाथ आने से हुआ। नगर के केन्द्र का तात्पर्य राजनीतिक शक्तियों और धार्मिक प्राधिकरणों से है, जो राष्ट्रों पर हमले कर जीत हासिल करने की मंशा के कारण बने। (Hoyt, 1962). आकार, अवस्थिति और कार्यों तथा लोगों की आवश्यकताओं, सामाजिक–सांस्कृतिक महत्य आदि के आधार पर नगर विभिन्न प्रकार के होते हैं। विभिन्न शोधकर्ताओं ने नगर को आकार, अवस्थिति, सामाजिक–सांस्कृतिक महत्व आदि कारकों के आधार पर वर्गीकृत करने का प्रयास किया है। इन सबमें कार्यों के आधार पर नगर का वर्गीकरण तब सबसे उपयुक्त प्रतीत होता है, जब हम समरूप सैद्धान्तिक वर्गीकरण चाहते हैं। कस्बों का कार्याधारित विश्लेषण शहरी अध्ययन का अहम हिस्सा बन गया है, क्योंकि इसके जरिये क्षेत्रीय नियोजन को बेहतर आधार मिलता है (velapurgore, Rathod and kalgapur, 2008). स्मिथ (1965) के अनुसार, 'नगर अर्थव्यवस्था और लोगों की संस्कृति में विविध कार्यों को संपन्न करने का माध्यम हैं। सभी नगरों के कुछ कार्य समान होते हैं। सभी नगरों के कुछ कार्य उनकी अवस्थिति और अन्य परिस्थितियों, उनमें रहने वाले लोगों के हिसाब से अलग व विशेष होते हैं। और सभी नगरों के कुछ कार्य उनकी विकास प्रक्रिया तथा इतिहास से जुड़े हुये होते हैं। इस प्रकार नगरों को कार्य को मापदंड मानने के आधार पर वर्गीकृत करना अन्य किसी भी माध्यम से अधिक प्रभावी होता है।'

2.2 नगरों के कार्याधारित विभाजन का ऐतिहासिक विकास (Historical Growth of Functional Division of City)

होमर होइट ने नगरों के कार्यों को कालक्रम में वर्गीकृत किया है। उन्होंने नगरों को प्राचीन और आधुनिक में बांटा, जो निम्नवत हैं:

प्राचीन नगर (Ancient cities: before 100 A.D.)

अधिकतर महान नगर जो शक्तिशाली साम्राज्यों की राजधानियां थीं और जहां महल, मन्दिर आदि थे नक्शे से गायब हो चुकी हैं (जैसे बेबीलोन, निनेवा, मेम्फिस और थीब्स आदि)। अन्य कुछ महान नगरों के अवशेष खुदाई में मिले हैं, जिनमें क्रीट का नॉसस, ग्रीस का कोरिन्थ और भारत का मोहनजो–दारो शामिल हैं। ये सभी नगर ईसा से 3000 वर्ष पूर्व विकसित थे। बायब्लोस, बाल्बेक, सैगुन्तेम, इटालिया, पॉम्पी, पलमाइरा, सीसेरिया और कई अन्य छोटे नगर भी नष्ट हो गये। अन्य महान नगरों, जैसे मैक्सिको (500–1200 ईसवी) के मन्दिर भी जंगलों में दफन मिले। मेक्सिको सिटी के नजदीक ही स्थित तेओतिवाकान के पिरामिड अमेरिका के संरक्षित नगरों में एक हैं। ये सभी महान नगरीय केन्द्रों के उदाहरण हैं, जो नष्ट हो

गये। अब भी अस्तित्वमान प्राचीनतम नगरों में सीरिया का डेमेस्कस, येरूशलम, रूस का कीव और बगदाद शामिल हैं। 1200 से 1000 ईसा पूर्व विकसित वर्तमान नगरों में एथेंस, बीजिंग, रोम शामिल हैं। इसी तरह 300 से 50 ईसा पूर्व ग्रीक या रोमन काल में विकसित हुये नगरों में लंदन, पेरिस, अंकारा, वियेना, मिलान, बार्सिलोना, लिस्बन, कोरदोवा, मार्सिल्स, ब्रुसेल्स, एनीटोक, कैंटन आदि शामिल हैं।

100 से 1000 ईसवी (Period 100 A.D. to 1000 A.D)

रोमन साम्राज्य का विकास मुख्यतः कांस्टेन्टिनोपल नगर के आसपास हुआ, जो बाद में 328 ईसवी में पूर्वी रोमन साम्राज्य की राजधानी बनकर उभरा। वेनिस का उद्‌भव एक गांव के रूप में हुआ, जिसे मत्स्याखेट जैसी गतिविधियों के लिये जाना जाता है। हालांकि, रोमन साम्राज्य के उतार के दौर में इस शहर की जनसंख्या तेजी से गिरी और अगस्टस के काल यानी नवीं सदी तक एक लाख से घटकर महज 17 हजार रह गयी। हालांकि, 800 ईसवी तक इंग्लैंड में मेनचेस्टर सिटी और जर्मनी में हैम्बर्ग जैसे नये शहर विकसित हुये।

1000 से 1500 ईसवी (Period 1000 A.D. to 1500 A.D.)

इस काल में बाल्टिक सागर के तटों पर बसे नगर पश्चिमी व्यापारिक मार्गों के निकट थे। नॉर्वे में 1048 में ओस्लो और 1070 में बर्जेन जबकि 1943 में कोपेनहेगन विकसित हुये। तटवर्ती इलाकों से प्रारंभ हुआ यह नगरीकरण समय के साथ आंतरिक पूर्वी क्षेत्रों तक बढ़ता गया। बाद में ये नगर पूर्वी और मध्य यूरोप की राजधानियां बनीं। बर्लिन, वर्सा, प्राग, ekWLdks, स्टॉकहोम का विकास 1000 से 1250 ईसवी के बीच हुआ। इसी तरह मैड्रिड 1050 ईसवी में विकसित हुआ। जापान में टोक्यो 1200 ईसवी में नगरीकृत हुआ, जबकि इंग्लैंड में भी शहरी विकास 12वीं सदी में ही हुआ। इस दौरान विकसित हुये कुछ प्रमुख नगरों में बुकारेस्ट, रोमानिया–1388 ईसवी, कोरिया–1350 ईसवी, अहमदाबाद– 1411 ईसवी, मेक्सिको–1300 ईसवी शामिल हैं।

1500 से 1699 ईसवी (Period 1500 A.D. to 1699 A.D.)

इस अवधि में कोलंबस ने अमेरिका की खोज की, जबकि सैन जुआन ने कैरीबियन सिटी और प्यूर्टो रिको ने दक्षिण अमेरिका को 1535 में खोजा। बाद के काल में खोजे गये नगर निम्नवत हैं:

- हवाना, क्यूबा– 1514 (स्पेनिश द्वारा)
- लीमा, पेरू– 1535 (स्पेनिश द्वारा)
- ब्यूनस आयर्स, अर्जेन्टीना– 1536 (स्पेनिश द्वारा)
- बगोटा, कोलम्बिया– 1538 (स्पेनिश द्वारा)
- सेन्टियागो, चिली– 1541 (स्पेनिश द्वारा)
- कराकास, वेनेजुएला– 1567 (स्पेनिश द्वारा)
- रियो डि जेनेरियो, ब्राजील– 1506–65 (पुर्तगालियों द्वारा)
- क्यूबेक, मॉन्ट्रियल– 1567 (फ्रेंच द्वारा)
- न्यूयॉर्क– 1615 (डच द्वारा)
- बोस्टन– 1630 (इंग्लैंड द्वारा)
- फिलाडेल्फिया– 1652
- चार्ल्सटन, दक्षिण कैरोलिना– 1670

1700 से 1799 ईसवी तक (Period 1700 A.D. to 1799 A.D.)

18वीं सदी की शुरुआत में रूस में नयी राजधानी पेट्रोग्राद (अब लेनिनग्राद) विकसित हुयी, जिसकी स्थापना पीटर द ग्रेट ने 1704 में की थी। इसी काल में उत्तरी अमेरिकी महाद्वीप में नये नगरों के विकास की प्रक्रिया भी तेज हुयी, जिसने समय के साथ महानगरीय स्वरूप ले लिया। इस दौर में विकसित जो नगर बाद में महानगर के तौर पर विकसित हुये, उनके नाम निम्नवत हैं:

- न्यू ऑर्लेन्स– 1718
- पिट्सबर्ग– 1750
- सेंट लुईस– 1764
- सिनसिनाटी– 1788

- बाल्टीमोर– 1729
- सवाना, जॉर्जिया– 1733
- वाशिंगटन, डीसी– 1791
- टोरंटो, कनाडा– 1798
- ग्रेट लेक्स, क्लीवलैंड– 1796

1800 से 1899 (Period 1800 A.D. to 1899 A.D.)

19वीं सदी में अमेरिका के आंतरिक क्षेत्रों में आबादी की वृद्धि, आवासों और रेलमार्गों के निर्माण में तेजी आयी (Hoyt, 1962). परिवहन और अन्य सुविधाओं में आये इन महत्वपूर्ण परिवर्तनों की वजह से विकसित हुये नगर निम्नवत हैं:

- डेट्रोएट– 1802
- कांसास सिटी– 1821
- शिकागो– 1836
- डलास– 1841
- पोर्टलैंड, ओरेगन और मिनेपोलिस– 1845
- सिएटल– 1852
- डेन्वर– 1857
- साल्ट लेक सिटी– 1847
- जोहान्सबर्ग – 1886 (सोने की खदानों की खोज के बाद)
- मिलामी, फ्लोरिडा– 1896 (फ्लोरिडा ईस्ट कोस्ट रेलमार्ग के निर्माण के बाद)

20वीं सदी में नगर (Cities in 20th Century)

इस दौर में नये नगरों का तेजी से विकास हुआ, लेकिन इन नगरों के विकास का कारण नयी खोज या परिवहन और अन्य सुविधाओं की बढ़ोतरी के बजाय सरकारों की नाकामी रही। ऐसे में राजनीतिक महत्वों के आधार पर नगर विकसित हुये। उदाहरण के लिये इजराइल में 1927 में जाफा नगर के पास अवीव नाम के नये नगर की स्थापना हुयी। इसी तरह ब्राजील में 1960 में ब्राजीलिया नाम के नये नगर का विकास हुआ जो इस देश की राजधानी बना।

2.3 नगरों का कार्याधारित वर्गीकरण (Functional Classification of City)

नगर को सजीव व्यवस्था मान लें तो यह आवश्यक हो जाता है कि नगर यानी इस व्यवस्था के अलग–अलग हिस्से परस्पर समन्वय, संचार और उत्तरदायित्व, लचीलेपन का प्रवाह बनाये रखें। बेहतर व्यवस्था के लिये यह आवश्यक है कि नगर अपने हर नागरिक, हिस्से और समुदाय के लिये समग्र रूप से कार्य करे। डल (1986) ने सक्रिय नगर के लिये आवश्यक कार्यों का प्रस्ताव दिया है, जो निम्नवत हैं:

- अपनी विकास आवश्यकताओं, लोगों और संगठनों के प्रति नगर का उत्तरदायित्व प्रभावी एवं उपयुक्त होना चाहिये
- नगर में यह क्षमता हो कि वह स्वयं को निरंतर परिष्कृत करे और परिवर्तनों के साथ निरंतरता बनाये रखे
- जीवन की आवश्यकताओं के अनुरूप परिवर्तन ताकि यह अपने निवासियों के विकास के लिये सक्षम हो
- नगर अपने नागरिकों के लिये शैक्षिक भूमिका का निर्वहन करे

शोधकर्ताओं और विद्वानों ने विभिन्न लक्ष्यों के अनुसार नगरों के कार्यों को परिभाषित करने का प्रयास किया है। लीबा टॉब ने नगरों के कार्यों को ऐतिहासिक रूप से परिभाषित किया तो जेन एडम्स ने अपने लेख '**The Function of Social settlement**' में बताया कि मानवीय व्यवस्थाओं का कार्य मानवीय ज्ञान के मूल्य को क्रियाओं और अनुभव के आधार पर परीक्षित करता है। प्रख्यात विद्वान वेबर इस बात पर जोर देते हैं कि भारी शहरीकरण की प्रक्रिया ने राजनीतिक सहभागिता के अवसरों को लगातार कम

किया। इस तरह हम पाते हैं कि नगर को कार्याधारित आयाम से देखने के कई विचार और भारत समेत अन्य देशों को भी विभिन्न तरह से वर्गीकृत किया गया है।

2.3.1 भारत में नगरों के कार्य (Function of City in India)

उत्पादन के केन्द्र (Centre of Production): यह ऐतिहासिक तथ्य है कि दुनियाभर में नगरों का विकास उद्योगों और औद्योगिक उत्पादन के विकास से हुआ। आज के दौर में भी औद्योगीकरण की रफ्तार को ही नगरों के विकास और विस्तार का महत्वपूर्ण कारक माना जाता है। वर्तमान युग की औद्योगिक क्रान्ति को हम सिर्फ उद्योगों से ही जोड़कर नहीं देख सकते, बल्कि भारत के परिप्रेक्ष्य में इसे नगरीय क्रान्ति के तौर पर भी देखा जा सकता है। नगरों को औद्योगिक एवं उत्पादन केन्द्र के रूप में देखा जा सकता है। उत्पादन केन्द्रों को हम आगे विभिन्न उपश्रेणियों में भी वर्गीकृत कर सकते हैं, जो निम्नवत हैं–

प्राथमिक एवं द्वितीयक उत्पादन केन्द्र (Primary & Secondary Production Centres)

प्राथमिक उत्पादन केन्द्र का तात्पर्य उन स्थानों से है, जहां से उद्योगों के लिये कच्चा माल और प्राथमिक उत्पाद प्राप्त होते हैं। चूंकि ये नगर मुख्यतः कच्चे माल के आपूर्ति केन्द्र होते हैं, ऐसे में यहां रहने वाली अधिकतर आबादी प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से कच्चे माल के उत्पादन से संबंधित होती है। नेल्लोर, कोलार और बरेली ऐसे नगरों के कुछ उदाहरण हैं। दूसरी ओर, द्वितीयक उत्पादन केन्द्र का अर्थ उन नगरों से है, जहां अंतिम उत्पादन तैयार होता है। अधिकतर द्वितीयक उत्पादन केन्द्र आकार में बेहद बड़े होते हैं, जो दिनबदिन विस्तारित होते जाते हैं।

व्यापार एवं वाणिज्य केन्द्र (Centre of Trade and Commerce)

मध्यकालीन कस्बे और नगर व्यापारिक एवं वाणिज्यिक गतिविधियों के केन्द्र थे। इन नगरों में उत्पादन द्वितीयक गतिविधि थी। व्यापारी और कारोबारियों यहां संगठित संघों के स्वरूप में थे और वस्तुओं एवं सुविधाओं के वितरण के अलावा बैंकिंग प्रणाली के रूप में भी काम करते थे। राजा भी इन संघों की प्रक्रियाओं को मान्यता प्रदान करते थे और पारंपरिक नियमों के अनुरूप इनमें साधारण न्यायालयों का भी संचालन होता था। इसके अलावा उस दौर में उद्यमों में कुशल श्रमिक भी होते थे। आरके मुखर्जी बताते हैं कि मुगलकाल में राजकीय उद्यम की व्यवस्था भी थी। राजकीय उद्यमों के अलावा निजी उद्यम भी इस काल में मौजूद थे। यहां यह तथ्य भी उल्लेखनीय है कि तत्कालीन राज्यों की राजधानियां वाणिज्यिक–व्यापारिक केन्द्रों के तौर पर भी विकसित हुयीं, क्योंकि कारोबारी और व्यापारी राजा के निकट रहकर संरक्षण और अपने कारोबारों, उद्यमों को बढ़ाने के लिये उपयुक्त संसाधन पाना चाहते थे। व्यापारियों को उपयुक्त आंतरिक क्षेत्रों और वहां तक संचार, परिवहन आदि सुविधाओं की आवश्यकता होती थी, ताकि वे अपने संगठन को और अधिक विस्तार दे सकें।

उस काल में राजनीतिक संरक्षण विभिन्न व्यापारिक नगरों, कस्बों और बाजारों के विकास और पतन का साधन था। व्यापारिक और वाणिज्यिक केन्द्र आंतरिक क्षेत्रों में उत्पादित होने वाली वस्तुओं पर भी बड़े पैमाने पर निर्भर थे। इसके अलावा बड़े नगरों तक परिवहन, व्यापार सुविधाएं और नये व्यापारिक समुद्री मार्गों की तलाश भी उनके लिये आवश्यक थी। उदाहरण के लिये वास्कोडिगामा के समुद्री रास्ता तलाशने के बाद कालीकट बड़े व्यापारिक केन्द्र के तौर पर विकसित हुआ। एक अन्य उदाहरण मुंबई का है, जहां व्यापार और वाणिज्यिक गतिविधियों ने इस शहर को बड़े उत्पादक केन्द्र के तौर पर विकसित किया। हालांकि, औपनिवेशिक दौर में भरूच और सूरत जैसे नगरों को मुंबई के विकास के चलते उपेक्षित रहना पड़ा। उन नगरों को व्यापार केन्द्र के रूप में विकसित होने में ज्यादा मदद मिली, जो समुद्री मार्गों से जुड़े हुये थे। हालांकि, भारत में कोझीकोड, कोची, तूतीकोरिन, विशाखापत्तनम, कोलकाता, काकीनाडा और चेन्नई प्रमुख बंदरगाह और सामान्यतः व्यापारिक केन्द्र हैं, लेकिन यह हमेशा आवश्यक नहीं होता है कि बंदरगाह ही व्यापारिक एवं वाणिज्यिक केन्द्र हों।

राजधानी एवं प्रशासनिक केन्द्र (Capital and Administrative Centres)

नगरों के विकास के साथ प्रशासनिक कस्बों और नगरों का विशेष स्थान रहा है जो मुख्यतः केन्द्रीय स्थान पर अवस्थित होते हैं। भारतीय नगरीय इतिहास पर नजर डालें तो विभिन्न साम्राज्यों के उद्भव और विकास के साथ नगरीय केन्द्रों में भी उतार–चढ़ाव सामने आते रहे। उदाहरण के लिये पाटलिपुत्र, विजयनगरम, मदुरै, गोलकुंडा को प्राचीन प्रशासनिक नगरों के तौर पर देखा जाता है, लेकिन वर्तमान के प्रशासनिक नगरों के तौर पर इनकी पहचान नहीं रह गयी है।

2.3.2 भारत में नगरों का कार्याधारित वर्गीकरण (Functional Classification of City in India)

भारतीय विद्वानों ने जनगणना आधारित वर्गीकरण की कमजोरियों को उजागर करते हुये पाया कि वस्तुतः आर्थिक गतिविधियों से ही समूहों का निर्माण होता है। आर्थिक गतिविधियां ही किसी समूह के सामान्य और विशिष्ट होने का निर्धारण करती हैं। पहले, दूसरे और तीसरे क्रम की आर्थिक गतिविधियां नगरों की भूमिकाओं को निर्धारित क़रती हैं। इससे ही तय होता है कि कोई नगर प्रभावी भूमिका में रहेगा या उसे कम अहमियत दी जायगी। वस्तुनिष्ठता की इस समस्या और इसके आधार पर नगरों–कस्बों की कार्य भूमिका के सांख्यिकीय आंकड़ों का विभिन्न विद्वानों ने अपने–अपने तरीके से विश्लेषण किया है। जानकी, अमृत लाई, केएन सिंह, प्रकाश राव, ओपी सिंह, रफीउल्लाह, महामाया मुखर्जी, काजी अहमद, अनन्त पद्मनाभन, अशोक मित्रा और कई अन्य विद्वानों ने अपने–अपने क्षेत्र में नगरों का वर्गीकरण किया है। इनमें से किसी का भी वर्गीकरण न तो दूसरों से कमतर है, न ही बेहतर। लेकिन ये सभी क्षेत्रीय दृष्टिकोण के आधार पर कस्बों की कार्याधारित भूमिकाओं को स्पष्ट करते हैं।

प्रकाश राव ने आंकिक ग्रेडिंग के लिये कस्बों शहरी सुविधाओं और सेवाओं, बस परिवहन सुविधा एवं ग्राहक क्षेत्रों को मानक के रूप में इस्तेमाल किया। रफीउल्लाह ने नगरों की रैंकिंग के लिये वेबर के तरीके को अपनाया। तिवारी ने कुछ आगे बढ़कर मध्य प्रदेश के नगरों–कस्बों को आईबीएम 7044 कंप्यूटर के जरिये विभिन्न मानकों के आधार पर वर्गीकृत किया। ओपी सिंह ने भारत में केन्द्रीय स्थानों के कार्यों के आधार पर विश्लेषण किया। उन्होंने कार्यों की विशेषता और कार्यों के पदानुक्रम के आधार पर अलग–अलग विभाजन किया। पोथाना ने आन्ध्र प्रदेश में आर्थिक आधार पर नगरों का वर्गीकरण किया। महापात्र, त्रिपाठी और सिन्हा ने ओडिशा के छोटे कस्बों के आर्थिक आधार पर कार्यविभाजन किया। रजा, अग्रवाल और मोंदिरा दत्ता ने भारतीय अर्थव्यवस्था में महानगरीय केन्द्रों का परीक्षण कर वर्गीकरण किया।

अशोक मित्रा का कार्याधारित वर्गीकरण (Ashok Mitra’s Functional Classification)

अशोक मित्रा का वर्गीकरण विशुद्ध रूप से 1961 और 1971 की जनगणना में कामगारों के वर्गीकरण पर आधारित है। वर्गीकरण निम्नवत किया गया था:

- कृषि
- कृषि श्रमिक
- पशुधन, वानिकी, मत्स्यपालन, आखेट, पौधरोपण, बागवानी और अन्य संबद्ध गतिविधियां
- खनन एवं चुगान
- घरेलू–कुटीर उद्योग
- उत्पादन से इतर घरेलू उद्यम
- व्यापार एवं वाणिज्य
- परिवहन, भंडारण एवं संचार
- सेवाएं

प्रथम दो श्रेणियां विशुद्ध रूप से कृषि श्रेणी को प्रदर्शित करती हैं। अन्य श्रेणियां औद्योगिक एवं शहरी श्रेणियों की प्रतीक हैं। ऐसे में प्रारंभिक दो श्रेणियों को छोड़कर बाकी सात श्रेणियों के आधार पर नगरों को तीन श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है।

- **उत्पादक नगर (Manufacturing Town)**: तीसरी, चौथी, पांचवीं और छठी श्रेणी में कामगारों की संख्या सातवीं और आठवीं श्रेणी में कामगारों की कुल संख्या से तुलनात्मक रूप से कहीं अधिक है। नवीं श्रेणी में कामगारों की संख्या इन सभी श्रेणियों से काफी कम है।
- **व्यापार एवं परिवहन नगर (Trade and Transport Town)**: इस वर्ग में सातवीं और आठवीं श्रेणी के कामगारों की प्रतिशतता नवीं श्रेणी के कामगारों की प्रतिशतता से अधिक है। तीसरी, चौथी, पांचवीं और छठी श्रेणियों के कामगारों की संख्या से भी सातवीं आठवीं श्रेणी के कामगारों की संख्या बेहद अधिक है।

- **सेवा प्रदाता नगर (Service Town)**: नवीं श्रेणी के कामगारों की संख्या तीसरी, चौथी, पांचवीं और छठी श्रेणियों से कहीं अधिक है, जबकि सातवीं और आठवीं श्रेणी के कामगारों की संख्या तीसरी, चौथी, पांचवीं और छठी श्रेणियों से कम है।

क्या आप जानते हैंः अशोक मित्रा भारतीय मार्क्सवादी अर्थशास्त्री और राजनेता हैं। वह भारत सरकार के मुख्य आर्थिक सलाहकार रहे। मित्रा ने कलकत्ता डायरी और टर्म्स आफ ट्रेड एंड क्लास रिलेशन्स पुस्तकें लिखी हैं। कलकत्ता से प्रकाशित होने वाले अंग्रेजी दैनिक द टेलीग्राफ के लिये वह नियमित रूप से लेख लिखते हैं, जबकि बंगाली में लघु कहानियां भी उन्होंने लिखी हैं। उनके अन्य प्रकाशित लेखन में चाइना इश्यूज इन डेवलपमेंट, फ्रॉम द रैंपर्स, प्रैटलर्स टेलः रिकलेक्शन्स आफ ए कन्ट्रारी मार्क्सिस्ट (इसका बंगाली में अपिला चपला नाम से प्रकाशन हुआ है) शामिल हैं।

वर्ष 1991 में सभी शहरी स्थानों को उनके कार्यों के महत्व के अनुसार श्रेणीबद्ध करने का प्रयास किया गया। इस प्रक्रिया में औद्योगिक श्रेणियों को पांच आर्थिक गतिविधियों के आधार पर निर्धारित किया गया। इसके आधार पर किया गया वर्गीकरण निम्नवत हैः

- **प्राथमिक गतिविधियां (Primary Activities)**: 1. कृषि, 2. कृषि श्रमिक, 3. पशुधन, वानिकी, मत्स्यपालन, आखेट, बागवानी और अन्य गतिविधियां
- **उद्योग (Industry)**: इसमें उत्पादन, प्रसंस्करण, सेवा और मरम्मत शामिल हैं। इसके तहत 1. घरेलू उद्योग और 2. घरेलू उद्योग से इतर उद्योग 3. निर्माण श्रमिक आते हैं
- **व्यापार (Trade)**: व्यापार एवं वाणिज्य
- **परिवहन (Transport)**: परिवहन, भंडारण एवं संचार
- **उद्योग (Services)**: अन्य सेवाएं

यदि भारत के ऐतिहासिक सन्दर्भ में देखा जाये तो स्पष्ट होता है कि यहां 1951 से ही उपजीविका को वर्गीकरण का प्राथमिक आधार माना गया। लेकिन, इस वर्गीकरण की विफलता का मुख्य कारण यह रहा कि यह निर्धारण किसी शोध के आधार पर नहीं, बल्कि जनगणना आंकड़ों के अनुसार किया गया था। 1951 के जनगणना आंकड़ों में श्रमिकों की उपजीविका और व्यावसायिक श्रेणियों में कई खामियां थीं। कृषि और गैर कृषि श्रेणी की इन खामियां को 1961 की जनगणना में दूर किया गया और इन श्रेणियों को भी जनगणना आंकड़ों में शामिल किया गया। इसके आधार पर श्रेणियां निम्नवत हुयींः

- कृषक
- कृषि श्रमिक
- खनन, पशुधन, वानिकी, मत्स्यपालन, आखेट, बागवानी एवं संबद्ध गतिविधियां
- घरेलू उद्यम
- उत्पादन उद्योग
- निर्माण
- व्यापार एवं वाणिज्य
- परिवहन, भंडारण एवं संचार
- अन्य सेवाएं

विकास के पैमाने को ध्यान में रखते हुये 1971 की जनगणना में वानिकी, खनन, पशुधन, मत्स्यपालन, आखेट आदि गतिविधियों को अलग–अलग मानते हुये नयी श्रेणियां शामिल की गयीं। 1981 की जनगणना में इसे और अधिक परिष्कृत किया जा सका, जिसके बाद निम्न श्रेणियां उभरींः

- कृषक
- घरेलू उद्योग
- कृषि श्रमिक
- अन्य कामगार

- सीमांत कामगार

निष्कर्ष (Conclusion): व्यापक विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि कोई भी विशेष सिद्धान्त भारतीय नगरों को पूरी तरह वर्गीकृत करने में सक्षम नहीं है। विविध क्षेत्र, विकास दर, आजीविका श्रेणियों और विभिन्न कार्यों के आधार पर भारतीय नगरों का समान वर्गीकरण संभव नहीं है। इसके चलते कोई भी सीधा सिद्धांत या आधार इस तरह के वर्गीकरण के लिये उपयुक्त नहीं है।

2.3.3 अन्य देशों में नगरों का कार्याधारित वर्गीकरण (Functional Classification of City in Other Countries)

नगरों को उनके कार्यों के आधार पर विभिन्न जोन एवं क्षेत्रों में बांटा गया है। यहां हम इनमें से कुछ पर चर्चा करेंगे, ताकि दुनियाभर में नगरों के वर्गीकरण और इसके लिये अपनाये गये तरीकों को समझ सकें।

ऑरासो मॉडल (Conclusion)

ऑरासो ने वर्ष 1924 में विशेष कार्य सिद्धांत दिया। उन्होंने शहरी नियोजन में शहरी भूगोल के महत्व को देखते हुये इसे शहरी अध्ययन का उपक्षेत्र मानने के बजाय स्वतंत्र क्षेत्र माने जाने पर जोर दिया। हालांकि, शहरी भूगोल द्वितीय विश्व युद्ध के बाद ही प्रमुख सिद्धांत के तौर पर उभरा और शहरी नियोजन व भौगोलिक विकास के लिये आवश्यक कारक बन गया। वर्ष 1921 में एम ऑरासो ने नगरों को छह श्रेणियों में बांटाः

- प्रशासनिक (Administrative)
- सुरक्षा (Defence)
- संस्कृति (Culture)
- उत्पादन (Production)
- संचार (Communication)
- मनोरंजन (Recreation)

उन्होंने नगर को बेहद साधारण स्वरूप में वर्गीकृत किया। शहरीह केन्द्र मानव आबादी के प्रमुख हिस्से के रूप में निश्चित अनिवार्य कार्यों के निष्पादन में अहम भूमिका निभाते हैं। ये कार्य सामान्यतः नगर की समग्र व्यवस्था से प्रभावित होते हैं। प्रशासन इसमें सबसे महत्वपूर्ण भूमिका में होता है, लिहाजा यह सबसे अधिक क्रियाशील भी रहता है। इस तथ्य का प्रमाण इससे भी मिलता है कि प्राचीन काल में राजा अपने प्रशासनिक नगरों को संचार और अन्य सुविधाओं से युक्त स्थानों पर बसाते थे। आज भी राजधानी के रूप में दिल्ली में ही भारत के सभी प्रमुख सरकारी मुख्यालय हैं। इसी तरह सुरक्षा का संबंध नागरिकों से है और ऐसे स्थान देश की सीमाओं पर स्थित होते हैं। सांस्कृतिक स्थानों को राष्ट्रीय संपत्ति के रूप में संरक्षित किया जाता है।

क्या आप जानते हैंः मार्कल ऑरासो आस्ट्रेलियाई भूगोलवेत्ता, अनुवादक, भूगर्भशास्त्री थे। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद उन्होंने आस्ट्रेलियाई इंपीरियल फोर्स में तैनाती ली। भूगोल के क्षेत्र में 50 साल से भी अधिक समय तक मार्कल का योगदान रहा। जनसंख्या समस्या और व्यवस्थागत पैटर्न पर आधारित उनके औपचारिक बौद्धिक लेखन का प्रकाशन 1918 से 1927 तक हुआ। इस अवधि में 1923–24 में वह अमेरिकन ज्योग्राफिकल सोसाइटी ऑफ न्यूयॉर्क में बतौर भूगोलवेत्ता तैनात थे। उन्होंने अमेरिका में करीब चार वर्ष व्यतीत किये और इस दौरान वह आईजे बोमैन, हरलैन बैरोज और मार्क जेफरसन जैसे प्रख्यात अमेरिकी भूगोलवेत्ताओं के संपर्क में आये। 1920 की जीवनी में ऑरासो भूगोलवेत्ता के तौर पर स्वयं का मूल्यांकन करने के साथ तात्कालिक परिस्थितियों की जानकारी देते हैं। उन्होंने महसूस किया कि उनके योगदान को अपेक्षित पहचान नहीं मिली। उनके शब्दों में, मैं उभरता उभरता सितारा था, लेकिन मैं क्षितिज पर अधिक दूर तक नहीं जा सका।

आलोचना (Criticism):यद्यपि ऑरासो ने नगरों को कार्यों के महत्व के आधार पर वर्गीकृत किया (जो वर्गीकरण का सबसे विश्वसनीय आधार है) फिर भी यह आलोचना से मुक्त नहीं है। इसके कारण निम्न हैं:

- विशिष्ट कार्य सिद्धान्त अत्यधिक सामान्यीकृत हो गया
- एक मुख्य श्रेणी में वर्गीकृत नगर में सामान्य तौर पर अन्य वर्गों की भूमिकाओं की अनदेखी की गयी
- किसी वर्ग का 'कट ऑफ प्वाइंट' अनुमानित प्रतिशत के आधार पर निर्धारित किया जाता है ऐसे में यह व्यक्तिपरक हो जाता है
- आर्थिक आयाम को प्रक्रिया में नजरअंदाज किया गया है, जबकि यह बिन्दु इसलिये अहम है कि किसी नगर को अपने दायरे से बाहर रहने वाले लोगों की जरूरतों को भी जुटाना पड़ता है
- ऑरासो द्वारा कार्यों के आधार पर कई श्रेणियों को प्रस्तुत करने से संशय और भ्रम की स्थिति उत्पन्न होती है, इसका तात्पर्य यह है कि यहां कार्य और अवस्थिति दोनों ही मानक मिश्रित हो गये हैं, उदाहरण के लिये– संचार श्रेणी में आने वाले नगर वस्तुओं के परिवहन का कार्य भी करते हैं, लेकिन यह बिन्दु वर्गीकरण में स्पष्ट नहीं किया गया है
- ज्वारीय सीमा में आने वाले, वृक्षपातन वाले और पुलों वाले नगरों के कार्यों में उनके स्थान की विशेषता (ज्वार, वृक्षपातन आदि) का महत्व स्पष्ट होता है, इससे यह स्पष्ट होता है कि ये नगर संचार के लिहाज से महत्वपूर्ण हैं, सिर्फ स्थान के लिये नहीं। इसी तरह तीर्थ केन्द्र वाले नगर सांस्कृतिक रूप से महत्वपूर्ण होते हैं, जबकि वे नदियों, घाटियों, पर्वतीय क्षेत्रों में अवस्थित हो सकते हैं।
- विश्वविद्यालयी नगर भी अनुपयुक्त श्रेणी है, क्योंकि इस तरह के विशेषण कार्यों को स्पष्ट नहीं करते, बल्कि यह नगर के समग्र नगरीय कार्यों में से सिर्फ एक विशेषता को ही स्पष्ट करते हैं

निष्कर्ष (Conclusion): ऑरासो के वर्गीकरण में महत्वपूर्ण श्रेणियों को स्पष्ट किया गया है जो भावी विशिष्ट सिद्धांतों, तरीकों के लिये अवसर प्रदान करते हैं। शहरी गतिविधियों के आधार पर शहरी केन्द्रों के निर्धारण के लिये यह व्यावहारिक रूप से समग्र व्यवस्था है। हालांकि, कार्याधारित विभिन्नताओं और संबंधित गतिविधियों के लिहाज से यह धुंधली तस्वीर पेश करता है। ऐसे में इसे और बेहतर ढंग से निष्पादित करना आवश्यक हो जाता है।

हैरिस का मॉडल (Harris's Model)

पूर्ववर्ती शोधकर्ताओं के वर्गीकरण से असंतुष्ट हैरिस ने व्यक्तिपरक और नगरों के कार्यों के आधार पर अत्यधिक आलोचनात्मक स्थिति के विरोध में तर्क दिये। अपने शोधपत्र "A functional classification of the cities in the united states" में उन्होंने आबादी के कारक को वर्गीकरण का बुनियादी आधार बनाया। उन्होंने दो मुख्य कारकों में इन्हें बांटा, ये थे– रोजगार एवं आजीविका। उन्होंने नगरों को इस आधार पर श्रेणियों में वर्गीकृत किया:

- उत्पादन
- खुदरा बिक्री
- विविधता
- थोक बिक्री
- परिवहन
- खनन
- होटल–रिजॉर्ट और मनोरंजन
- अन्य

क्या आप जानते हैं: हैरिस का कॅरियर नगरों के प्रति उनकी विशेष रुचि से प्रारंभ हुआ। अपने डॉक्टरी शोधपत्र, "Salt Lake City: A Regional Capital" में उन्होंने सेवा संबंधी कार्यों और नगरों पर इनके विस्तृत प्रभाव का विश्लेषण किया। इसके बाद 1941 में हैरिस ने एसोसिएशन ऑफ अमेरिकन ज्योग्राफर्स में शहरों के वर्गीकरण पर अपना पहला शोधपत्र प्रस्तुत किया, जिसे शहरी भूगोल के क्षेत्र में उल्लेखनीय माना जाता है। उपनगरीय क्षेत्रों पर भी उन्होंने 1943 में जर्नल ऑफ सोशियोलॉजी में लेख लिखे। इन शोधपत्रों ने शहरी अध्ययन के क्षेत्र में उन्हें महत्वपूर्ण विद्वान के तौर पर स्थापित किया।

हैरिस मॉडल की धारणा (Assumption of Harris Model): हैरिस द्वारा अपने मॉडल में जिन धारणाओं को शामिल किया गया है, वे निम्नवत हैं:

- जमीन समतल नहीं होती है (बर्गीज मॉडल का सुधार), किसी बड़े नगर में समतल जमीन की तलाश करना बेहद कठिन कार्य होता है। भूखंड की गुणवत्ता नगरीय क्षेत्र की समग्र गतिविधियों, विकास और उन्नति की दिशा को प्रभावित करती है।
- नगर के लोगों के बीच संसाधनों का समान वितरण किया जाता है। विशेषाधिकार या संसाधनों तक विशिष्ट पहुंच का लाभ लेने के दौरान पदानुक्रम को बनाये रखना अनिवार्य नहीं होता है।
- जनसंख्या घनत्व की प्रकृति समरूप होती है। पूरे नगर में लोग समान रूप से रहते हैं, किसी दायरे विशेष में नहीं। यह इसलिये आवश्यक है कि जनसंख्या का असमान वितरण बाजार को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है।
- नगरों में परिवहन लागत भी समान होती है, ग्राहकों पर यात्रा व्यय का अधिक असर नहीं होता है।
- क्षेत्र विशेष में विशिष्ट गतिविधि के संचालन का एकमात्र उद्देश्य लाभ प्राप्त करना होता है। यही वजह है कि उद्योगों की स्थापना मांग पर निर्भर करती है। हालांकि, श्रम लागत, परिवहन लागत, स्थानीय बाजार से निकटता जैसे पहलुओं पर भी विशेष ध्यान देने की जरूरत होती है। स्थान की अवस्थिति का कारक परिवहन लागत और वस्तुओं–सेवाओं की गतिशीलता को भी प्रभावित करता है।

आलोचना (Criticism): गणनात्मक तकनीकों और विभिन्न श्रेणियों के चलते हैरिस के नगरीय वर्गीकरण को उत्तरवर्ती वर्गीकरणों के लिये प्रतिमान माना जाता है। हालांकि, उनका वर्गीकरण भी आलोचना से मुक्त नहीं है। उनके वर्गीकरण को व्यक्तिपरक श्रेणियों और कच्चे आंकड़ों के इस्तेमाल के कारण आलोचना के दायरे में रखा गया है। मोजर और स्कॉट (1961) ने नगरों के वर्गीकरण के लिये कुल 5 श्रेणियां विकसित कीं, जो जनसंख्या आकार और ढांचा, जनसांख्यिकीय परिवर्तन, आवास स्वामित्व आदि पर आधारित थीं।

हॉवर्ड नेल्सन का वर्गीकरण (Howard Nelson's Classification)

नेल्सन ने पूर्ववर्ती वर्गीकरणों में सामने आयी खामियों को दूर करने का प्रयास किया। उन्होंने हैरिस और अन्य विद्वानों के वर्गीकरण के तरीकों का विरोध करते हुये एक निर्दिष्ट प्रक्रिया का उपयोग किया, जिसकी अन्य लोग भी निष्पक्ष जांच कर पाने में संभव हों। उन्होंने अपने वर्गीकरण की बुनियाद विशुद्ध रूप से मुख्य औद्योगिक समूहों पर केन्द्रित रखी। ये समूह 1950 की जनगणना में महानगरीय, नगरीय और ऐसे नगरीय क्षेत्रों के लिये मानक थे, जहां की आबादी 10 हजार या इससे अधिक थी। कृषि, निर्माण जैसे कम महत्व के समूहों को उन्होंने अलग कर दिया और अंतिम रूप से नौ सक्रिय समूहों को निर्धारित किया। हॉवर्ड ने नगर के आकार के अनुसार विभिन्न गतिविधियों में रोजगार की निश्चित प्रतिशतता हासिल की। किसी शहर को कब विशेषीकृत माना जा सकता है, इस सवाल का समाधान उन्होंने खास सांख्यिकीय तकनीक स्टैंडर्ड डिवीजन (Standard Division: SD) के जरिये निकाला।

क्या आप जानते हैं: नेल्सन ने अमेरिका के शहरों के वर्गीकरण के लिये उसी तकनीक का इस्तेमाल किया, जो ओगासावारा ने चीन के नगरों के लिये प्रयोग की थी। हालांकि, वर्गीकरण से पूर्व नगरों के सेवा ढांचे को नगरों के समग्र ढांचे से अलग कर दिया गया था (Alexandersson, 2015)। हॉवर्ड का विख्यात शोधपत्र A Service Classification of American Cities 1955 में जर्नल ज्योग्राफी में प्रकाशित हुआ।

किसी शहर को एक से अधिक गतिविधियों और श्रेणियों के अनुसार विशेषीकृत किया जा सकता है। हॉवर्ड ने नगरों की सभी गतिविधियों को plus 1, plus 2, plus 3 श्रेणियों में बांटा है। निम्न सारिणी हॉवर्ड द्वारा चयनित नौ गतिविधि समूहों के आधार पर प्रतिशतता के अनुसार तैयार की गयी है।

Table 9.2

Nelson's Nine Activity Groups (1950)

	Manufacturing	*Retail Trade*	*Professional Service*	*Transportation and Communication*	*Personal Service*	*Public Administration*	*Wholesale Trade*	*Finances Insurance and Real Estate*	*Mining*
	Mf	*R*	*Pf*	*T*	*Ps*	*Pb*	*W*	*F*	*Mi*
Average	27.07	19.23	11.09	7.12	6.20	4.58	3.85	3.19	1.62
Standard Deviation	16.04	3.63	5.89	4.58	2.07	3.48	2.14	1.25	5.01
Average Plus 1 SD	43.11	22.86	16.98	11.70	8.27	8.06	5.99	4.44	6.63
Average Plus 2 SD	59.15	26.49	22.87	16.28	10.34	11.54	8.13	5.69	11.64
Average Plus 3 SD	75.19	30.12	28.76	20.86	12.41	15.02	10.27	6.94	16.65

मान लें कि कोई नगर Pf 2F श्रेणी में वर्गीकृत है तो इसका अर्थ यह है कि यहां 22.87 प्रतिशत से अधिक लेकिन 28.76 प्रतिशत से कम श्रम बल पेशेवर सेवाओं से जुड़ा है। इसी तरह 4.44 या इससे अधिक लेकिन 5.69 प्रतिशत से कम लोग वित्तीय, बीमा और रियल इस्टेट के काम से जुड़े हैं। सारिणी से यह तय होता है कि कोई शहरी केन्द्र मुख्यतः किस तरह की गतिविधि से संबद्ध किया जा सकता है। यदि कोई नगर इनमें से किसी भी मानक में शामिल नहीं हो पाता है तो नेल्सन के वर्गीकरण के अनुसार वह नगर विविध गतिविधियों का केन्द्र हो सकता है।

निष्कर्ष (Conclusion): विभिन्न शोधकर्ताओं ने हॉवर्ड के मॉडल को नगरों के वर्गीकरण में प्रयोग किया है। महाराष्ट्र के लातूर जिले का वर्गीकरण इस माध्यम से करने पर स्पष्ट हुआ कि जिले का उदगिर कस्बा कृषि कार्यों में सबसे आगे था। इसी तरह लातूर खनन और वानिकी, अहमदपुर और लातूर आवासीय सुविधाओं, उदगिर निर्माण, लातूर और निलंग व्यापार एवं वाणिज्यिक गतिविधियों में आगे थे। वहीं, ऑसा तहसील किसी भी श्रेणी में शामिल नहीं हो सकी (वेलापुरक, राठौड़ और कल्पापुरे, 2001)। इससे स्पष्ट है कि नेल्सन हॉवर्ड का मॉडल अविकसित औद्योगिक क्षेत्रों के लिये उपयुक्त नहीं है।

2.4 ताजा अध्ययनों का समालोचनात्मक विश्लेषण (Critical Analysis of Recent Studies)

संघमित्रा ने महानगरों के कार्याधारित वर्गीकरण के लिये अशोक मित्रा के मॉडल का उपयोग किया। उन्होंने भारत के 12 महानगरों में वर्ष 1901 से 1971 तक कार्याधारित गतिविधियों का अध्ययन किया, जिसके लिये 1961 की जनगणना के आधार पर नौ औद्योगिक श्रेणियों में कामगारों का विश्लेषण किया। यह उस दौर में गैर कृषि कार्यों में कार्यबल के खिसकने के कारणों को जानने का प्रयास था। इसके माध्यम से कार्य, कार्यों में सहभागिता –विशेष रूप से महिलाओं की– की दर को जानने की कोशिश की गयी। इसके तहत तीन बुनियादी वर्गीकरण किये गये

- सेवा प्रदाता क्षेत्र (Service Town Sector)
- औद्योगिक नगर (Industrial Towns)
- व्यापार एवं परिवहन नगर (Trade and Transport Towns)

इसी तरह रेड्डी और राव (1981) नगरीय क्षेत्र में संतुलन की स्थिति का वर्णन करते हैं। उनके अनुसार नगर के अभिकेन्द्रीय कार्य आंतरिक इलाकों और आवृत्त क्षेत्र में उत्पन्न होते हैं, नगरीय कार्यों के इन दोनों पहलुओं से नये संबंध व्युत्पन्न किये जाते हैं। वहीं, सोनी (1981) ने हॉवर्ड नेल्सन के मॉडल के आधार पर लखनऊ के परिनगरों में सेवा केन्द्रों का कार्याधारित वर्गीकरण और विश्लेषण किया। उनके अध्ययन में कुल 67 सेवा केन्द्र चिह्नित किये गये। इनमें से 16 एकल कार्याधारित थे, जबकि 23 युगल

कार्याधारित यानी एक साथ दो कार्यश्रेणियों में शामिल थे। 22 केन्द्र तीन कार्यश्रेणियों में रखे गये, जबकि पांच बहुकार्य आधारित रहे।

सिंह (2014) ने हरियाणा के छोटे और मध्यम कस्बों के आकार, कार्य और अवस्थापना विकास का अध्ययन करते हुये इस राज्य में शहरी विकास, स्थानिक वितरण, कार्यों के गुणों में होने वाले बदलाव को स्पष्ट किया। उनके शोधकार्य में वर्ष 1961 से 1991 तक यानी तीस वर्ष की अवधि में तीन चिह्नित छोटे और मध्यम कस्बों के अंतरसंबंधों और परस्पर अन्य व्यवस्थाओं को भी प्रमुखता से इंगित किया गया। यह स्पष्ट हुआ कि इस अवधि में हरियाणा के अधिकतर कस्बाई नगर आकार में छोटे या मध्यम थे। यह भी साफ हुआ कि छोटे कस्बे दरअसल वे विकसित गांव थे, जहां आबादी सघन थी। शाही (1989) ने शहरी केन्द्रों के कार्यों का अध्ययन किया और उनके कार्याधारित विश्लेषण के लिये उन्होंने आकार की श्रेणी का उपयोग किया। बाद में शहरी केन्द्रों को कार्यों की विशेषता और पदानुक्रम के आधार पर पांच कार्याधारित श्रेणियों में बांटा गया। इसका मकसद जनसंख्या आकार के अनुरूप कार्यों का तुलनात्मक विश्लेषण एवं नगरों की समग्र व्यवस्था के संबंध को समझना था। इसके साथ ही एक छठी श्रेणी विविध नगर (Diversified Town) भी जोड़ी गयी। इसमें उन नगरों को शामिल किया गया, जो पूर्वनिर्धारित विशिष्ट कार्याधारित श्रेणियों में शामिल नहीं हो पाते।

निगम ने लखनऊ का अध्ययन किया और विभिन्न क्षेत्रों में कार्यों के पृथक्कीकरण या विभाजन की प्रवृत्ति को स्पष्ट किया। बताया कि मुख्य व्यावसायिक क्षेत्र नगर के आंतरिक क्षेत्र में स्थित हैं, जबकि आवासीय क्षेत्र परिधीय क्षेत्र में। इसी तरह प्रशासनिक क्षेत्र मुख्यतः मध्य में मिले तो शिक्षण संस्थान मध्य और बाहरी क्षेत्रों में अवस्थित हैं। नगर के दक्षिण–पश्चिमी क्षेत्र का विकास औद्योगिक क्षेत्र के रूप में हुआ है, जबकि बैरक–क्वार्टर के साथ कैंटोन्मेंट दक्षिण की ओर उपनगरीय इलाके में है। अस्पताल मध्य क्षेत्र में पश्चिम की ओर स्थित हैं। कृषि कार्यों ने लगभग पूरे नगर को पश्चिम, उत्तर के उपनगरीय क्षेत्र और दक्षिण की ओर से बाहरी क्षेत्र से चारों ओर से घेरा हुआ है। यहां यह भी उल्लेखनीय है कि लखनऊ में वे सभी कार्य भी पाये गये जो बड़े नगरों में होते हैं। इस तरह लखनऊ को विविध श्रेणी में रखा गया। चूंकि कार्यों के आधार पर यह एक तरफ प्रदेश की राजधानी है तो दूसरी ओर सेना का क्षेत्रीय मुख्यालय भी। यह एक विश्वविद्यालयी नगर भी है तो बड़ा सेवा प्रदाता केन्द्र भी।

2.5 निष्कर्ष (Conclusion)

व्यापक विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि कोई भी विशिष्ट सिद्धांत भारतीय नगरों के वर्गीकरण के लिये पूरी तरह उपयुक्त नहीं है। भारतीय नगरों में विविध क्षेत्र, विकास दर, व्यावसायिक एवं उपजीविका श्रेणियां और कार्यों के अलग–अलग वर्ग–श्रेणी मिलती हैं। ऐसे में कोई एक सीधा फार्मूला यहां श्रेणियां तय कर पाने में पूरी तरह सक्षम नहीं है। नगरीकरण की प्रक्रिया नगरीकरण से जुड़ी कई अन्य प्रक्रियाओं से संबद्ध होती है, जिनमें लगातार बदलाव दर्ज किया जाता है। सामान्यतः यह माना जाता है कि शहरी विकास की प्रक्रिया आर्थिक गतिविधियों के प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रभावों पर निर्भर करती है। इनमें उत्पादक उद्योगों का विस्तार, सेवा केन्द्रों का विकास आदि पहलू शामिल हैं।

2.6 अभ्यास प्रश्न (Model Questions)

- नगरों के कार्याधारित वर्गीकरण से आप क्या समझते हैं? नगर के विकास के विभिन्न चरण क्या हैं?
- भारतीय शोधकर्ताओं द्वारा किये गये नगरों के कार्याधारित वर्गीकरण की विस्तार से जानकारी दें।
- विदेशी शोधकर्ताओं द्वारा किये गये नगरों के वर्गीकरण को विस्तार से समझायें।
- नगरों के कार्याधारित वर्गीकरण को लेकर किये गये ताजा अध्ययनों के बारे में विस्तार से लिखें।
- आप जिस नगर में रहते हैं, उसे ध्यान में रखते हुये वर्गीकृत करने का प्रयास करें। आपके नगर को वर्गीकृत करने के लिये कौन सा सिद्धांत उपयुक्त है और क्यों, विस्तार से समझायें।

2.7 भावी अध्ययन (Further Readings)

- Duhl, leonard, j (1986), “The healthy city: Its function and its future”, Health Promotion International, Volume 1, Issue 1, Pages 55–60,https://doi.org/10.1093/heapro/1.1.55
- Hoyt, Homer (1962), Function Of the Ancient and the Modern City, Land Economics, University Of Wisconsin Press, Vol.3, Pp-241-247
- Hans Blumenfeld (1943), Forms and Function in urban community, “The journal of American of architectural historians”, vol. 3, number ½, the history of city planning, pp.11-21
- Smith, Robert, H.T. (1965), Method and purpose in functional town classification, Annals of the Association of American Geographes,Taylor and
- francis,Vol.55,No.3 ,1965,pp.539-548
- Mitra Ashok (1973), Functional classification of Indian town, Institute of Economic Growth New Delhi
- M.N .Nigam (1964),Functional Regions Of Lucknow ,National Geographical Regions Of India ,Volume X Part-1,Pp 38-52
- Reddy,N.B.K. and Rao, D.S.(1981),“An equilibrium function in a city region”,vol.2,NAGI,1981
- Shahi (I 989), "'Rank-Size Relationship and Hierarchy of Urban Centres"(In Prof. Jagdish Singh Edt. “Urban Analysis Of Gujarat: A Geographical Analysis”), Chapter 5. Pp 122-155, Institute of Rural Development, Gorakhpur
- Singh, Kuldip (2014), “size, functions and infrastructural development in small and medium towns of Haryana”, Ethesis, Shodhaganga, Inflibnet
- Venable, Anthony, J. (2017), “Breaking Into Tradable: Urban Form and Urban Function in A Developing City”, Journal or Urban Economics, Volume 19, Pp.88-97, Https://Doi.Org/10.1016/J.Jue.2017.01.002

इकाई 3: नगरीकरण, नगरीयता एवं नगरवाद
(Urbanization, Urbanism, Urbanity)

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 नगरीकरण की अवधारणा एवं परिभाषा

3.3 नगरीकरण की विशेषताएं

3.4 नगरीकरण से संबंधित समस्यायें

3.5 नगरीकरण का जाति पर प्रभाव

3.6 भारत में नगरीकरण की प्रक्रिया एवं प्रभाव

3.7 नगरीयता का अर्थ एवं परिभाषा

3.8 नगरीयता की विशेषताएं

3.9 नगरीयता एवं नगरीकरण में अन्तर

3.10 नगरवाद का अर्थ एवं परिभाषा

3.11 नगरवाद की विशेषताएँ

3.12 नगरीकरण, नगरीयता एवं नगरवाद में अंतर

3.13 नगरवाद से उत्पन्न समस्याएँ

3.14 सारांश

3.15 अभ्यास/बोध प्रश्नों के उत्तर

3.16 संदर्भ ग्रंथ सूची

3.17 निबंधात्मक प्रश्न

3.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप समझ सकेंगे–

1. नगरीकरण किसे कहते हैं तथा इसकी विशेषतायें।
2. नगरीकरण से उत्पन्न समस्यायें एवं जाति में प्रभाव।
3. भारत में नगरीकरण के पढ़ने वाले प्रभाव।
4. नगरीयता की अवधारणाा एवं इसकी विशेषतायें।
5. नगरीयता एवं नगरीकरण में क्या अन्तर है?
6. नगरवाद की परिभाषा एवं इससे उत्पन्न विभिन्न समस्यायें।
7. नगरीकरण एवं नगरवाद में मुख्य अन्तर।

3.1 प्रस्तावना

नगरीकरण की प्रक्रिया का अभिप्राय उस प्रक्रिया से लगाया जा सकता है। जिसमें कोई भी स्थान नगर से सम्बन्धित अनेकों विशेषताओं का अपनाता है। यद्यपि नगरीयता एव नगरीय वाद को नगरीकरण का ही स्वरूप मान लिया जाता है, जबकि इनमें काफी अन्तर पाया जाता है। वास्तव में नगरीकरण का सीधा सम्बन्ध नगर से लगाया जाता है, जो क्षेत्र विशेष के अनुरूप पृथक–पृथक पाया जाता है। वास्तव में नगरीकरण, नगरीयता एवं नगरवाद, नगरीय जीवन से जुड़ी एक ऐसी अवधारणा है जो नगरीकरण के कारणों एवं परिणामों का विश्लेषण करती है। जो विकासशील देशों में नगरीकरण के कुप्रभावों की तीव्रता को स्पष्ट किया है। अतः इस दृष्टिकोण से नगरीकरण, नगरीयता एवं नगरवाद का अध्ययन अत्यन्त महत्वपूर्ण हो जाता है।

3.2 नगरीकरण की अवधारणा एवं परिभाषा

नगरीकरण का तात्पर्य नगर और नगर से जुड़ी अनेकों ऐसी विशेषताओं से है जो ग्रामीण क्षेत्रों की विशेषताओं से बिल्कुल अलग है। भारत में पिछले कुछ दशकों से नगरीकरण की प्रक्रिया में तीव्रता आयी है। जिसका प्रमुख कारण जनसंख्या वृद्धि से लगाया जा सकता है। ऐसा माना जाता है कि जैसे–जैसे जनसंख्या वृद्धि होती है। वैसे–वैसे ग्रामीण क्षेत्र से नगरीय जीवन की ओर जनता पलायन करती है। नेल्स एण्डरसन ने कहा है कि 'नगरीकरण' प्रायः बड़े नगरों में केन्द्रित है ओर उद्योग की ओर उन्मुख है। इसे प्रायः पाश्चात्य कहा जाता है और एक जीवन के ढंग के रूप में नगरीयता कहा जाता है। भारत में नगरीकरण की प्रक्रिया दो तरीकों से विकसित हुई है। प्रथम औद्योगीकरण के कारण जब किसी स्थान पर उद्योग स्थापित किये जाते हैं तो उन उद्योगों में कार्य करने के लिए आस–पस के लोग निरन्तर आकर वहीं बस जाते हैं और इस प्रकार जनसंख्या बढ़ती है। और वह नगर का रूप ले लेती है। द्वितीय, धार्मिक भावनाओं से नगरों का विकास भारत एक धर्म प्रधान देश है। इसलिए धार्मिक भावनाओं से नगर बसे हैं। जब किसी एक स्थान विशेष पर लोगों की धार्मिक भावनायें जुड़ जाती है, तो लोग दूर दूर से आकर वहां धार्मिक भावनायें प्रकट करते हैं और कुछ वहीं बस जाते हैं। इस प्रकार जनसंख्या की बहुलता नगर का विकास करती है।''1

इस प्रकार कहा जा सकता है कि नगरों के विकास की प्रक्रिया को ही नगरीकरण कहा जाता है। अब यहाँ पर एक प्रश्न उठता है कि वास्तव में नगर या नगरीय क्षेत्र किसे कहा जाता है? नगर की अवधारणा

को प्रायः जनसंख्यात्मक और समाजशास्त्रीय अर्थों में विभक्त किया गया है। कहने का तात्पर्य यह है कि नगर की जनसंख्या, घनत्व तथा नगर की विषयमता, पारस्परिक निर्भरता व जीवन स्तर व गुणवत्ता आदि के आधार पर नगर को परिभाषित किया जा सकता है। सरल शब्दों में कहा जाये तो नगर उस स्थान को कहा जा सकता है। जहाँ जनसंख्या का घनत्व अधिक होता है तथा समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से लोगों के मध्य औपचारिक सम्बन्ध पाये जाते हैं। लुईस बर्थ ने नगरीय समाज का ग्रामीण समाज से अन्तर करते हुए नगर को तीन आधारभूत विशेषताओं के आधार पर परिभाषित किया है—जनसंख्या का आकार, घनत्व और विषयमता। इन विशेषताओं का अर्थ है कि यद्यपि नगर निवासी, ग्रामवासियों की अपेक्षा अधिक मानवीय सम्पर्कों का अनुभव करेगा। किन्तु वह अधिक अकेलापन भी अनुभव करेगा, क्योंकि उन सम्पर्कों की प्रकृति भावनात्मक रूप से शून्य होगी। लुईस बर्थ के अनुसार नगरों में सामाजिक अंतक्रिया जो कि नगरों की विशेषता है।

अवैयक्ति, खण्डीय, दिखावटी, अस्थाई और सामान्यतः विशुद्ध रूप से व्यवहारिक और साधन होती है। इसनको लुईस बर्थ द्वितीयक सम्पर्क कहते हैं, जो ग्रामीण क्षेत्रों के प्राथमिक सम्पर्कों से बिल्कुल भिन्न होते हैं।[2]

इस प्रकार नगरीकरण के सन्दर्भ में कहा जा सकता है कि नगरीकरण एक सामाजिक परिवर्तन की ही प्रक्रिया है। जिसमें ग्रामीण समाज धीरे—धीरे नगरीय समाज में परिवर्तित होने लगता है। नगरीकरण की अवधारणा को स्पष्ट करने के लिए अनेकों विद्वानों ने अलग—अलग परिभाषायें दी हैं। जो निम्नांकित है—

1. बर्जल के अनुसार—''ग्रामीण क्षेत्रों को नगरीय क्षेत्रों में परिवर्तित होने की प्रक्रिया को ही हमें नगरीकरण कहना चाहिए। इस प्रक्रिया का गांव की जनसंख्या की आर्थिक संरचना पर गहरा प्रभाव पड़ता है। जिस अनुपात में ग्रामीण जनसंख्या धरती है। ठीक उसी अनुपात से नगर की जनसंख्या में भी वृद्धि होती है।
2. बर्गेल—''ग्रामीण क्षेत्रों के नगरीय क्षेत्रों में परिवर्तन होने की प्रक्रिया का नाम ही नगरीकरण है।''
3. किग्सले डेविस—''नगरीकरण वह प्रक्रिया है जिसके निर्धारण का महत्वपूर्ण आधार जनसंख्या का एक न्यूनतम स्तर नागरिक प्रशासन तथा मुद्रा अर्थ व्यवस्था है।
4. वारेन थामसन—''नगरीकरण एक प्रक्रिया है। जिसमें कृषि से सम्बन्धित समुदाय के लोग धीरे—धीरे ऐसे बड़े समूहों के रूप में परिवर्तित होने लगते है, जिनकी क्रियायें उद्योग, व्यापार, वाणज्यि तथा सरकारी कार्यालयों से सम्बन्ध होती है।
5. नेल्सन एन्डरसन— ''नगरीकरण का तात्पर्य केवल गाँवों के लोगों का शहरों की ओर बढ़ना अथवा कृषि को छोड़कर व्यापार या नौकरी करना ही नहीं है, बल्कि इस प्रक्रिया में व्यक्तियों के विचारों, व्यवहारों, मनोवृत्तियों और मूल्यों में होने वाला परिवर्तन भी सम्मिलित हैं।
6. थामसन वारन—''एनसाइक्लोपीडिया ऑफ सोशल साइन्सेज में नगरीकरण की परिभाषा को इस प्रकार परिभाषित किया है—यह ऐसे समुदायों के व्यक्तियों का जो प्रमुख रूप से या पूर्णरूप से कृषि से जुड़े हुए है। उन समुदायों में जाना है, जो साधारणतया (आकार में) उनसे बड़े हैं और जिनकी गतिविधियाँ मुख्य रूप से सरकार, व्यापार, उत्पादन या इनसे सम्बद्ध कारोबारों पर केन्द्रित हैं।''
7. एम0 एन0 श्रीनिवास ने लिखा है—नगरीकरण से तात्पर्य केवल सीमित क्षेत्र में अधिक जनसंख्या से ही नहीं है, अपितु सामाजिक आर्थिक सम्बन्धों में परिवर्तन से भी है।
8. गेराल्ड ब्रीज ने नगरीकरण की परिभाषा को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि नगरीकरण एक प्रक्रिया है, जिसके कारण लोग नगरीय कहलाने लगते हैं शहरों में रहने लगते है। खेती के स्थान पर

अन्य पेशों को अपनाने लगते हैं। जो नगरों में उपलब्ध है और व्यवहार प्रतिमान में अपेक्षाकृत परिवर्तन का समावेश करते हैं।

9. उकेक के अनुसार–''अपने अधिक साधारण और जनांकिकीय अर्थों में नगरीकरण को एक ऐसी प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया जा सकता है, जिसके द्वारा जनसंख्या एक निर्दिष्ट आकार से भी अधिक झुण्डों में एकत्रित होने की प्रवृत्ति रखती है।

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर स्पष्ट होता है कि वास्तव में नगरीकरण एक निरन्तर चलने वाली एक ऐसी परिवर्तनशील प्रक्रिया है, जो ग्रामीण एवं नगरीय जीवन में एक प्रकार से विभेद उत्पन्न करती है। जिसमें ग्रामीण क्षेत्रों की जनसंख्या का नगरीय क्षेत्रों में पलायन को भी समझा जा सकता है। इस प्रकार नगरीकरण वह प्रक्रिया है। जिसमें नगरों की जनसंख्या में लगातार वृद्धि होती रहती है तथा व्यक्तियों द्वारा नगरीय जीवन सम्बन्धी व्यवहार को भी अपनाया जाता है। जिसमें नगरीय जीवन शैली मनोवृत्तियों एवं नगरीय व्यवहार एवं दृष्टिकोण आदि हैं।

3.3 नगरीकरण की विशेषतायें

1. **जनसंख्या की अधिकता**– नगरीय क्षेत्रों में जनसंख्या घनत्व ग्रामीण क्षेत्रों की तुलना में अधिक पाया जाता है, जिसमें प्रायः अलग–अलग धर्म एवं जाति के लोग निवास करते हैं।
2. **गैर कृषि व्यवसायों की अधिकता**–जैसा कि सर्वविदित है। नगरों की स्थापना में व्यापार एवं उद्योग–धंधों का एक महत्वपूर्ण स्थान है। व्यापार एवं उद्योग–धंधों के विकास ने नगरीकरण की प्रक्रिया को जन्म दिया। एक प्रकार से नगरीकरण का प्रमुख आधार व्यापार एवं कृषि से अलग व्यवसाय है। अतः एक ओर जहाँ सम्पूर्ण ग्रामीण समाज कृषि अर्थव्यवस्था पर आधारित है। वहीं दूसरी ओर नगरीकरण की अर्थव्यवस्था गैर कृषि व्यवसायों पर आधारित है।
3. **सामाजिक गतिशीलता**– नगरीकरण की प्रमुख विशेषता सामाजिक गतिशीलता है। बेरोजगारी, उच्च जीवन स्तर की लालसा, सामाजिक प्रतिष्ठा, शैक्षणिक स्थिति तथा उच्च आर्थिक स्तर प्राप्त करने के लिए व्यक्ति ग्रामीण समाज से नगरीय समाज की ओर पलायन करता हैं ये सारे आधार ऐसे हैं, जो सामाजिक गतिशीलता को बढ़ावा दते हैं।
4. **सामाजिक विभेदीकरण**– नगरीकरण की दूसरी प्रमुख विशेषता सामाजिक विभेदीकरण है। हम सभी जानते हैं कि नगरों में विभिन्न धर्म, जाति, वर्ग तथा विभिन्न जीवन स्तर के लोग जीवन–यापन करते हैं। अतः प्रत्येक व्यक्ति के मध्य अनेकों सामाजिक विभेदीकरण या अन्तर पाया जाता है। जो अलग–अलग समूहों में विभक्त होता है। यहां पर यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि सामाजिक विभेदीकरण होने के पश्चात ही प्रत्येक व्यक्ति एक दूसरे पर पारस्परिक निर्भर होता है तथा समूह में प्रत्येक कार्यों का निर्वह्न आपस में मिलजुल कर किया जाता है।
5. **द्वितीयक तथा औपचारिक सम्बन्धों की अधिकता**– नगरों में प्रायः व्यक्तियों के मध्य द्वितीयक तथा औपचारिक सम्बन्धों की अधिकता पायी जाती है। प्रत्येक व्यक्ति एक दूसरे के साथ स्वार्थ सम्बन्धों के आधार पर बंधे हुए होते हैं।
6. **सुख–सुविधाओं के साधनों की प्रचुरता**–सुख– सुविधाओं की प्रचुरता भी नगरीकरण की एक प्रमुख विशेषता मानी जा सकती है। वर्तमान समय में प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन में प्रत्येक सुख–सुविधाओं का उपभोग एवं उच्च जीवन स्तर की लालसा रखता है। पग्रति नये–नये आविष्कार, आवागमन के साधनों की प्रचुरता, शैक्षणिक, चिकित्सीय एवं मनोरंजन सम्बन्धी अनेक साधन नगरीकरण की प्रक्रिया को बढ़ावा देते हैं।

7. **भौतिक सभ्यता एवं संस्कृति**– नगरीकरण की एक प्रमुख विशेषता भौतिक संस्कृति एवं आधुनिक सभ्यता है। जिसके आकर्षण में बँध कर मानव नगरों की ओर जाकर वहाँ अपना जीवन–यापन करना अधिक सुलभ एवं सरल मानते हैं।

इस प्रकार उपयुक्त विशेषताओं के आधार पर कहा जा सकता है कि नगरीकरण वास्तव में नगरीय उद्योग–धन्धों, व्यवसाय एवं सुख–सुविधाओं के साधनों की प्रचुरता की ही देन है, जिसमें व्यक्तियों के मध्य द्वितीयक एवं अनौपचारिक सम्बन्ध पाये जाते हैं। यद्यपि व्यक्तियों के मध्य भावनात्मक लगाव का अभाव पाया जाता है। परन्तु प्रत्येक व्यक्ति अपनी विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रत्येक दूसरे व्यक्ति पर निर्भर होता है। आवश्यकताओं, उच्च जीवन स्तर की लालसा तथा महत्वकांक्षाओं एवं अपेक्षाओं के स्तर ने सामाजिक गतिशीलता को बढ़ावा दिया है, जिससे व्यक्ति ग्रामीण समाज से नगरों की ओर पलायन कर रहे हैं।

3.4 नगरीकरण से सम्बंधित समस्यायें

ऐसा माना जाता है कि जब समाज में किसी प्रकार का भी परिवर्तन होता है तो सदैव उसके सकारात्मक एवं नकारात्मक परिणाम दृष्टिगत होते हैं। भारतीय समाज भी इससे अछूता नहीं है। नगरीकरण की वृद्धि ने जहाँ एक ओर नगरीकय समाज को विकसित एवं प्रगतिशील बनाने में अपनी एक विशेष भूमिका का निर्वहन किया है। वहीं दूसरी ओर नगरीकरण की प्रक्रिया ने कई गम्भीर समस्याओं को भी जन्म दिया है। नगरीकरण से उत्पन्न होने वाली कई समस्याओं को निम्नांकित आधार पर समझा जा सकता है–

1–मलिन बस्तियों की समस्या– नगरीकरण की तीव्र वृद्धि के कारण नगरों की जनसंख्या में भी तीव्र गति से वृद्धि हुई है। नगरों में जहाँ एक ओर तीव्र गति से जनसंख्या वृद्धि हुई है उस अनुपात में आवास या मकानों की साथ में वृद्धि नहीं हो पायी है।

अतः परिणामस्वरूप मलिन बस्तियाँ या गंदी बस्तियों का निर्माण होने लगा। 'गन्दी बस्तियाँ नगर के उस भाग अथवा क्षेत्र का नाम है जहाँ घने रूप से बसे हुए अत्यधिक गन्दे और टूटे–फूटे मकानों में निम्न आय वाले गरीब लोग अथवा श्रमिक कम स्थान में जीवन व्यतीत करते हैं।''[3]

ग्रामीण समाज में रोजगार की कमी के कारण बड़ी संख्या में रोजगार पाने के लिए प्रतिदिन नगरों में लाखों की संख्या में श्रमिक वर्ग प्रवेश करता है। नगरों में उन्हें रोजगार तो मिल जाते हैं, परन्तु स्थान का अभाव होने के कारण इन्हें गन्दी तथा अस्वास्थ्यकारी मलिन बस्तियों (कम किराये की छोटी–छोटी कोठरियों) में निवास करना पड़ता है। डॉ0 मुकर्जी ने इस सम्बन्ध में कहा है कि औद्योगिक केन्द्रों की गन्दी बस्तियों की दशा इतनी भयंकर है कि यहां मानवता का नाश हो रहा हैं महिलाओं का जीवन अपमानित है और अबोध शिशुओं का दम घुट रहा है।''[4] मलिन बस्तियाँ नगरीकरण की एक प्रमुख समस्या के रूप में उभर कर सामने आ रहा है। सीलन होने तथा रोशनी के अभाव में ये बस्तियाँ अनेक रोगों को भी जन्म दे रही है। जिसमें प्रमुख रूप से संक्रामक रोग, अस्थमा, डायरिया तथा टी0बी0 है। मलिन बस्तियां एक तरह से अपराधिक गतिविधियों का भी अड्डा बनता जा रहा है। इसके अलावा इन बस्तियों में नशाखोरी, जुआ, वैश्यावृत्ति एवं चोरी जैसे अपराध भी दिन प्रतिदिन बढ़ रहे हैं। इन मलिन बस्तियों में इन सब समस्याओं के अतिरिक्त व्यक्तियों में अवसाद, निराशा तथा कुण्ठा की भावना में भी बढ़ोत्तरी हो रही है। मलिन बस्तियों में प्रमुख रूप से मुम्बई की चोले, कलकत्ता की बस्तयों, तथा चेन्नई में चरियां तथा कानपुर के पुरवा तथा आहाते आदि हैं।

2–विघटन की समस्या– नगरीकरण के कारण एक प्रमुख समस्या व्यक्ति का वैयक्तिक विघटन तथा पारिवारिक विघटन होता है। ग्रामीण समाज से जब एक व्यक्ति नगरीय समाज में प्रवेश करता है, तो

अधिकांशतः नये परिवेश में वह सामंजस्य नहीं बिठा पाते। अतः व्यक्तियों में वैयक्तिक विघटन होने लगता है, जिसके परिणमास्वरूप व्यक्ति तनावग्रस्त एवं निराशा से परिपूर्ण होने लगता है। इन परिस्थितियों से मुक्त होने के लिए व्यक्ति वेश्यागमन तथा नशाखोरी करने लगता है। पारिवारिक नियंत्रण न होने के कारण व्यक्ति आपराधिक गतिविधियों में भी लिप्त हो जाता है। जो कई प्रकार की समस्याओं को उत्पन्न करने लगता है।

इसके साथ ही नगरीकरण की प्रक्रिया ने पारिवारिक विघटन को भी बढ़ा दिया है। इस प्रक्रिया ने परम्परागत संयुक्त परिवार की प्रणाली को पूर्णरूप से विघटित करने दिया है। पति–पत्नी दोनों के कार्यरत् होने के कारण बच्चों को पूर्णरूप से स्वतंत्रता प्राप्त होने से वह आपराधिक गतिविधियों में लिप्त हो जाते हैं माता–पिता के अत्यधिक व्यस्त हो जाने के कारण बच्चों का जीवन अपेक्षापूर्ण एवं निराश एवं तनावग्रस्त हो जाता है।

पारिवारिक विघटन होने के कारण व्यक्ति धीरे–धीरे अपने अन्य पारिवारिक सदस्यों से दूर होने लगता है। जिससे परिणामस्वरूप बीमारी, बेकारी तथा गंभीर दुर्घटना हो जाने पर व्यक्ति को परिवार के अन्य सदस्यों का सहयोग नहीं मिल पाता, जिससे व्यक्ति का जीवन निर्वहन तक दुखदायी एवं कष्टों से परिपूर्ण हो जाता है। अतः कहा जा सकता है। नगरीकरण की प्रक्रिया ने जहां एक ओर विकास को एक नयी दिशा दी है। वहीं दूसरी ओर सामाजिक एवं पारिवारिक विघटन जैसी कई गम्भीर समस्याओं को भी जन्म दिया है।

3–प्रवर्जन या पलायन की समस्या– प्रत्येक व्यक्ति अपने मूल स्थान से प्रवर्जन या पलायन इसलिये करता है, जब व्यक्ति की मूलभूत आवश्यकतायें भी पूर्ण नहीं हो पाती। रोजगार की कमी अच्छे जीवन स्तर की लालसा। ये देनों ही ऐसी चीजें हैं जो व्यक्ति को नगरों की ओर पलायन करने के लिए विवश करता है। भारत में प्रवर्जन के चार स्वरूप हैं–

- ग्रामीण से ग्रामीण
- ग्रामीण से नगरीय
- नगरीय से नगरीय
- नगरीय से ग्रामीण

यद्यपि ग्रामीण से ग्रामीण प्रवर्जन अभी तक सबसे अधिक प्रचलित पलायन का रूप है। परन्तु ग्रामीण से नगरीय और नगरीय से नगरीय प्रवर्जन अभी इतना ही महत्वपूर्ण है।''[5]

ग्रामीण दरिद्रों के शहर में प्रवेश राजस्व के स्रोतों को कम करते हैं दूसरी ओर आजकर धनवान व्यक्ति उपनगरीय क्षेत्रों में रहना अच्छा समझते हैं। धनवान व्यक्तियों के पलायन से नगर की वित्तीय हानि होती है। इस प्रकार का श्हार में प्रवर्जन और शहर से दूर प्रवर्जन से समस्यायें बढ़ती हैं।''[6]

इस प्रकार कहा जा सकता है कि पलायन या प्रवर्जन एक ऐसी मुख्य समस्यायें हैं। जो ग्रामीण समाज को तो खोखला कर ही रही है साथ ही नगरों में भी अनेकों समस्याओं को जन्म देती है।

4– **प्रदूषण की समस्या–** नगरीकरण एवं औद्योगीकरण के कारण एक विश्वस्तरीय प्रमुख समस्या प्रदूषण की समस्या है। उद्योगों एवं कारखानों से उठने वाले प्रदूषित धुंए ने सम्पूर्ण वायुमण्डल की एक तरह से पूरी तरह प्रदूषित कर दिया है। साथ ही इन उद्योग का गन्दा पानी एवं औद्योगिक अपविष्ट नदियों में बहा दिया जाता है। जिससे नदियों का पानी पूरी तरह से प्रदूषित हो गया है। इस प्रकार कहा जा सका

है कि प्रदूषित धुंए एवं अपविष्ट औद्योगिक निकासी ने जल तथा वायु प्रदूषण को जन्म दिया है जिससे अनेकों गम्भीर बीमारियों का सामना जन जीवन को करना पड़ रहा है।

बनार्ड ने चार प्रकार के र्प्यावरण बताए हैं– भौतिक, जैविक, सामाजिक एवं मिश्रित, सामाजिक में शारीरिक मनोवैज्ञानिक तथा मिश्रित में आर्थिक, राजनैतिक एवं शैक्षणिक पर्यावरण को सम्मिलित किया है। नगरीकरण पर्यावरण को अनेक तरह से प्रदूषित किया है। सामाजिक एवं सांस्कृतिक प्रदूषण, जल, हवा एवं ध्ष्वनि प्रदूषण नगर की प्रमुख विशेषता बन गई है। इस तरह जैसे–जैसे नगरीकरण बढ़ रहा है, वैसे–वैसे प्रदूषण भी बढ़ रहा है। शिक्षा के कारण व्यक्ति अविवेकी एवं धर्म निरपेक्ष भी होता जा रहा है।''[7]

5– **सामुदायिक विघटन–** इलियट और मैरिल का कथन है–''सामुदायिक विघटन एक ऐसी जटिल प्रक्रिया है जिसमें उन सभी समूहों, संस्थाओं तथा ऐच्छिक समितियों का आंशिक अथवा पूर्ण विघटन हो जाता है। जिनकी संयुक्त गतिविधियों द्वारा समुदाय की अन्तःक्रियाओं का निर्माण होता है।''[8]

जैसा कि इलियट और मैरिल ने कहा है कि सामुदायिक विघटन सम्पूर्ण समाज को विघटित कर देता है। नगरीकरण के द्वारा संयुक्त परिवार धीरे–धीरे एकल परिवारों में परिवर्तित हो रहे हैं। धार्मिक एवं जातिगत मान्यतायें धीरे–धीरे परिवर्तित हो रही हैं और उनमें शिथिलता आ रही है। मलिन बस्तियों एवं आवास की समस्या ने विकराल रूप ले लिया है। अपराधिक गतिविधियां तीव्र गति से बढ़ रही है। काम की अधिकता तथा मनोरंजन के अपर्याप्त साधनों ने व्यक्ति में अवसाद, कुंठा एवं निराशा को जन्म दिया है। दूसरे अर्थों में कहा जा सकता है कि भारतीय परम्परागत समाज की समाजिकता एक तरह से नगरीकरण के कारण प्रायः विघटित होने लगी है। जिससे परिणामस्वरूप सामाजिज संस्थाओं, सामाजिक संगठनों एवं सामाजिक व्यवस्था में अनेकों परिवर्तन हो रहे हैं जिससे अनकों प्रकार की समस्याओं का भी उदय हो रहा है।

6– **अपराधीकरण को बढ़ावा–** जैसा कि हम सब जानते हैं कि रोजगार के अवसरों की कमी, बेरोजगारी तथा आर्थिक सुदृढ़ीकरण के कारण प्रत्येक व्यक्ति नगरों में जाकर जीवन यापन करना ज्यादा पसंद कर रहा है। किन्तु यह भी वास्तविकता है कि नगरीय जीवन को बेकारी की कम करने के बजाये बढ़ावा दिया है। व्यक्ति अपनी सीमित आय में अपनी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति भी सुगमतापूर्णव नहीं कर पाता। अतः अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वह गलत मार्ग की सहायता लेने लगता है, जिसमें मुख्य रूप से जुआ, अनैतिक कृत्य तथा चोरी करना आदि है। इसके विपरीत एकाकी जीवन होने के कारण व्यक्ति गलत संगत में पड़ कर भी कई प्रकार के अपराध करने लगता है।

7– **बेरोजगारी की समस्या–** औद्योगीकरण की प्रक्रिया नगरीकरण की प्रमुख देन है। औद्योगीकरण की प्रक्रिया में कारखानों में अधिकतर कार्य मशीनों के द्वारा ही किये जाते हैं जिससे अधिक उत्पादन किया जा सके। मशीनीकरण ने एक तरह से उद्योग–धन्धों तथा कुटीर उद्योगों को पूरी तरह से नष्ट कर दिया है। अतः जिससे हजारों की संख्या में लोग बेरोजगार हो गये हैं। अतः सरल शब्दों में कहा जाये तो नगरीकरण की प्रक्रिया ने बेरोजगारी की समस्या को विकसित करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया है।

8– **यातायात की समस्या–** नगरों में जनसंख्या की अधिकता ने यातायात और परिवहन की समस्या को भी बढ़ा दिया है। नगरीकरण के कारण समस्या को भी बढ़ा दिया है। नगरीकरण के कारण जनसमुदाय तो निरन्तर बढ़ता जा रहा है। किन्तु उस दिशा में यातायात के साधनों में तीव्रता नहीं आयी है। यदि यातायात की आपूर्ति को बढ़ाया जाता है, तो वह प्रदूषण को बढ़ावा देता है। अतः नगरीकरण की प्रक्रिया ने यातायात की एक बड़ी समस्या को भी बढ़ावा दिया है।

9– **द्वितीयक समूहों की वृद्धि–** नगरीकरण की प्रक्रिया ने द्वितीयक समूहों में भी वृद्धि की है। जिससे प्राथमिक समूहों में भी विघटन की स्थिति आ गयी है। सरल शब्दों में यदि कहा जाये तो व्यक्तियों के मध्य घनिष्ठ सम्बन्धों का अभाव हो गया है। जिसके स्थान पर औपचारिक सम्बन्धों की वृद्धि हो गयी है। द्वितीयक समूहों में व्यक्ति केवल स्वार्थ के कारण दूसरे व्यक्ति से जुड़ा रहता है। नगरों में तो पड़ोस में भी व्यक्ति एक दूसरे से अच्छे से परिचित नहीं होते हैं।

10– **विवाह का परिवर्तित स्वरूप**– नगर विभिन्न प्रकार के धर्म एवं जाति के लोग निवास करते हैं। अतः धीरे–धीरे वैवाहिक संस्था में भी परिवर्तन होने लगे है। वर्तमान समय में विवाह में जाति एवं धर्म को विशेष महत्व नहीं दिया जाता है। सजातीय विवाह के स्थान पर अन्तजार्तीय विवाह को प्राथमिकता दी जाती है। जातीय तथा धार्मिक बंधन प्रायः शिथिल होने लगे हैं। नगरीकरण के कारण विवाह एक धार्मिक संस्कार न होकर समझौता बन गया है। साथ ही वैवाहिक बन्धनों में भी अब शिथिलता का विकास हो गया है।

उपरोक्त विवेचना के आधार पर काह जा सकता है। कि नगरीकरण की प्रक्रिया ने समाज को जहां एक ओर विकसित एवं प्रगतिशील बनाने में एक महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वह्न किया है। वहीं दूसरी ओर इस प्रक्रिया ने अनेकों समस्याओं को भी जनम दिया है। पलायन के कारण ग्रामीण क्षेत्र धीरे–धीरे खाली होने लगे हैं, जिससे कृषि कार्यों में बूरा प्रभाव पड़ा है। रोजगार एवं उच्च जीवन स्तर पाने की लालसा ने नगरों में जनसंख्या की आशातीत वृद्धि कर दी है। जिससे मलिन बस्तियों एवं आवास की विकाराल समस्या का जन्म हुआ है। एकल परिवार एवं स्वतंत्र जीवन शैली ने जहां एक ओर अपराधीकरण को बढ़ा दिया है, वहीं दूसरी ओर व्यक्तिवादिता, अवसाद, निराशा एवं कुंठित मनोवृत्तियों को भी जन्म दिया है। नगरीकरण से सामुदायिक विघटन तो हुआ है। साथ ही सामाजिक एवं पारिवारिक विघटन भी तीव्र गति से हुआ है। अतः यहाँ पर यह कहना अतिश्योक्ति नहीं होगा कि नगरीकरण ने नगर एवं समाज की विकसित तो किया है, किन्तु कई गम्भीर एवं विकाराल समस्याओं को भी जन्म दिया है।

3.5 नगरीकरण का जाति पर प्रभाव

नगरीकरण ने जाति व्यवस्था पर भी पूर्ण रूप से प्रभाव डाला है। नगरीकरण का जाति पर प्रभाव को निम्नांकित बिन्दुओं द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।

1. नगरों में सभी धर्मों के व्यक्ति साथ–साथ उद्योग–धन्धों में कार्य करते हैं। साथ कार्य करने के कारण प्रत्येक जाति के व्यक्ति एक दूसरे के साथ मिल–बांटकर खाना खाते हैं। इस प्रकार जातीय रूढ़िवादिता, अस्पृयता की भावना व जातीय बंधन धीरे–धीरे ढीले हो रहे हैं।
2. परम्परागत समाज में कार्यात्मक विभाजन होने के कारण व्यक्ति को अपने जाति के आधार पर कुछ निश्चित कार्य करने होते थे। वर्तमान समय में नगरीय जीवन में परम्परागत कार्य धीरे–धीरे लुप्त होते जा रहे हैं उसके स्थान पर व्यक्ति सर्वसुलभ कार्यों तथा रूचि के अनुरूप कार्यों को प्राथमिकता देते हैं। अतः नगरीकरण ने परम्परागत कार्यों में परिवर्तन ला दिया है।
3. नगरीकरण की प्रक्रिया ने सांस्कृतिक को भी परिवर्तित कर दिया है। वास्तव में प्रत्येक जाति की अपनी संस्कृति, भाषा तथा संस्कार होते हैं, जिनका पालन उन्हें अनिवार्य रूप में करना होता है। किन्तु नगरीय जीवन में धीरे–धीरे सांस्कृतिक कट्टरता कम होने लगती है, क्योंकि यहाँ प्रत्येक धर्म, संस्कृति एवं जाति के लोग साथ–साथ मिलजुल कर रहते हैं तथा खान–पान में विशेष कोई पाबंदी नहीं होती। अतः कहा जा सकता है कि नगरीकरण ने सांस्कृतिक व्यवस्था को भी परिवर्तित कर दिया है।
4. प्राचीन समय से ही प्रत्येक जाति की अपनी वैवाहिक संस्था होती थी। विवाह प्रत्येक जाति एवं धर्म के आधार पर निर्धारित होते थे। एक तरह से विवाह नाम संस्था पूर्ण रूप से जाति पर

आधारित थी। वर्तमान समय में नगरीकरण ने इस संस्था को भी पूर्ण रूप से परिवर्तित कर दिया है, क्योंकि नगरों में प्रत्येक जाति एवं धर्म के लड़के एवं लड़कियाँ साथ–साथ मिलजुलकर रहकर एक ही स्थान पर काम करते हैं। इसके अलावा अनेक जाति को मानने वाले आस–पड़ोस में भी साथ–साथ निवास करते हैं जिससे अन्तर्जातीय विवाह को प्रोत्साहन मिला है।

5. परम्परागत भारतीय समाज में जाति प्रथा का एक महत्वपूर्ण स्थान रहा है। जिसमें कई जातियों में महिलाओं को स्वतंत्रता प्राप्त नहीं होती है। महिलायें परिवार के पुरुष सदस्यों के आधीन रहकर कार्य करती थीं। पर्दा प्रथा जाति की एक प्रमुख शर्त थी, जिसमें महिलाओं को पर्दे में रहकर ही प्रत्येक कार्य करने होते हैं। नगरीकरण की प्रक्रिया ने जाति प्रथा की इस परम्परागत रूढ़िवादिता को खत्म करने में मुख्य भूमिका का निर्वह्न किया है। नगरीय समाज में महिलाओं को प्रत्येक क्षेत्र में पूर्ण स्वतंत्रता के साथ–साथ जातिगत रूढिवादिता से भी मुक्ति मिली है। पर्दा प्रथा धीरे–धीरे खत्म हो रही है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि नगरीकरण की प्रक्रिया ने जातिवाद को परिवर्तित करने में अपनी एक महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वह्न किया है। आन्द्रे बिताई ने इस सम्बन्ध में कहा है कि ''पाश्चात्य रंग में रंगे हुए अभिजन वर्ग के बंधन जाति के संबंधों से कहीं अधिक महत्वपूर्ण होते हैं। कुछ जातियों के शिक्षित सदस्य जो आधुनिक व्यवसायों में हैं। कभी–कभी दबाव समूह के रूप में संगठित हो जाते हैं। इस प्रकार एक जाति दूसरे दबाव समूहों के साथ राजनीतिक और आर्थिक संसाधनों के लिए एक सामूहिक इकाई की तरह प्रतिस्पर्द्धा करती हैं इस प्रकार का संगठन एक नई प्रकार की एकात्मकता दर्शाता है। ये प्रतिस्पर्द्धा करने वाली इकाईयां जाति के वर्गों की अपेक्षा सामाजिक वर्ग की तरह अधिक कार्य करती है।''[9]

कोलेन्ड्रा के अनुसार–''रोजगार में और शहर की अपेक्षाकृत नई बस्तियों में विभिन्न उपजातियों और जातियों के व्यक्ति एक दूसरे से मिलते हैं। वे प्रायः लगभग बराबर दर्जे के होते हैं। और इनमें पड़ोस की या कार्यालय समूह को एकता विकसित होती है। इस तरह की चीज बड़े शहरों में सरकारी बस्तियों में आम रूप से पाई जाती है। इसी प्रकार अन्तर उपजातीय विवाह होते है। और इससे उपजातियों के विलयन को प्रोत्साहन मिलता है। यह इस लिए होता है कि कई बार शिक्षित बेटी के लिए अपनी ही उपजाति में पर्याप्त रूप से शिक्षित वर नहीं मिलता। परन्तु करीब की उपजाति में मिल जाता है।''[10]

3.6 भारत में नगरीकरण की प्रक्रिया एवं प्रभाव

ऐसा माना जाता है कि भारत में नगरीकरण की प्रक्रिया ईसा से 3000 वर्ष पूर्व से ही प्रारम्भ हो गयी थी। आज से लगभग 2000 वर्ष पूर्व भारत में मगध, नालन्दा, तक्षशिला, उज्जैन, धारा, पाटलीपुत्र, कन्नौज, काशी और मालवा जैसे बड़े–बड़े नगर अपने अस्तित्व में आ गये थे।

भारत में नगरीकरण की प्रक्रिया मुख्य रूप से औद्योगीकरण के कारण हुई। ऐतिहासिक प्रमाणों के अनुसार व्यापार के लिए जिन स्थानों में कच्चा माल प्रचुर मात्रा में उपलब्ध था। ऐसे स्थानों में उद्योग–धंधों की स्थापना की गयी। जिसके परिणामस्वरूप धीरे–धीरे इन स्थानों में रोजगार के अवसर उपलब्ध होने के कारण जनसंख्या वृद्धि होने लगी तथा बड़े–बड़े नगरों की स्थापना होने लगी। भारत में औद्योगिक विकास के कारण स्थापित नगरों में प्रमुख नगर जमशेदपुर, टाटानगर, मोदीनगर, दुर्गापुर, राउरकेला, भिलाई, विशाखापट्नम और बुरहानपुर आदि हैं। भारत में औद्योगीकरण के कारण विभिन्न स्थानों पर जब बड़े–बड़े उद्योगों की स्थापना हुई तो लघु एवं कुटीर उद्योग–धंधों का पतन होने लगा। इन उद्योगों में लगे लाखों कारीगर औद्योगिक केन्द्रों में रोजगार पाने की मंशा से गांवों को छोड़कर नगरों में आकर बसने लगे।

दूसरी ओर लोगों की बढ़ी हुई आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए उद्योगों में किये जाने वाले उत्पादन की मात्रा में भी वृद्धि होती गई।''[11]

किग्सले डेविस ने इस संदर्भ में कहा है कि ''नगरों की उत्पत्ति और विकास आज केवल कुछ आर्थिक, राजनैतिक, सैनिक, धार्मिक, और मनोरंजन संबंधी आकर्षणों का ही परिणाम नहीं है, बल्कि उन विभिन्न आकर्षणों की मांगों जैसे–उद्योगों की स्थापना, परिवहन, संचार, विशेषीकरण, श्रमविभाजन और आर्थिक सुरक्षा की भावना आदि से ही इतना अधिक प्रभावित है।''[12]

भारत में नगरीकरण ने नगर को विकसित करने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वह्न किया है। वहीं दूसरी ओर भारतीय सामाजिक संरचना को भी परिवर्तित किया है। नगरीकरण ने भारतीय परम्परागत समाज के प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित किया है। नगरीकरण के द्वारा भारतीय समाज में होने वाले प्रभाव को निम्नांकित आधार पर समझा जा सकता है।

अ– समाजिक प्रभाव

1. **पारिवारिक व्यवस्था पर प्रभाव–** ग्रामीण समाज के अधिकांश व्यक्ति बेरोजगारी एवं रोजगार की तलाश में ग्रामीण क्षेत्रों से पलायन करकते नगरों की ओर प्रस्थान कर रहे हैं। अतः नगरीकरण ने पारिवारिक व्यवस्था में परिवर्तन ला दिया। शिक्षा के प्रभाव के कारण महिलायें भी आत्मनिर्भर हो कर अर्थोपार्जन कर रही हैं अतः नगरीकरण के कारण संयुक्त परिवार विघटित होकर एकांकी परिवारों में परिवर्तित हो रहे हैं। जिससे परिवार के सदस्यों के मध्य भी सम्बन्धों में स्पष्ट परिवर्तन दिखाई दे रहा है। इस सम्बन्ध में प्रसिद्ध समाजशास्त्री रास ने अपनी पुस्तकत 'दि हिन्दू फैमली इन इट्स अरबन सेटिंग में बताया कि आने वाले कुछ समय में परिवार के नियमों द्वारा दायित्वों संबंधी विचार भी दुर्बल पड़ते जायेंगे। सदस्यों के बीच पारस्परिक स्नेह कम होता जायेगा तथा परिवार के मुखिया के अधिकार लगभग समाप्त हो जायेंगे। इसी प्रकार एम0 एस0 गोरे ने अपनी पुस्तक 'अरबनाईजेशन एण्ड फैमली चेंज' में बताया है कि नगरीकरण से प्रभावित वर्तमान परिवारों में रहन सहन के स्तर, सदस्यों की संख्या तथा सदस्यों की स्थिति में परिवर्तन आया है। लेकिन सांस्कृतिक रूप से वे आज भी संयुक्त परिवार व्यवस्था से जुड़े हुए हैं।''[13]

2. **मूल्यों में परिवर्तन–** नगरीकरण के परिणाम स्वरूप परम्परागत मूल्यों में धीरे–धीरे परिवर्तन हो रहे हैं। आधुनिकीकरण एवं पश्चिमीकरण सभ्यता ने व्यक्तियों के परम्परागत मूल्यों से जुड़े हुए विचारों एवं धारणाओं को परिवर्तित कर दिया है। परम्परागत रूढिवादिता विचारों का स्थान पर प्रगतिशील विचारों ने ले लिया है।
3. **धार्मिक परिवर्तन–** नगरीकरण ने व्यक्ति के धार्मिक जीवन में भी अनेकों परिवर्तन ला दिया है। धर्म की प्राचनी मान्यतायें अब धीरे–धीरे खत्म हो रही हैं। विभिन्न जाति एवं धर्म को मानने वाले लोगों के साथ–साथ मिलजुल कर रहने तथा साथ–साथ कार्य करने से धार्मिक कट्टरता में धीरे–धीरे कमी आने लगी है। अन्धविश्वास एवं धार्मिक रूढ़ियों का मानव समाज त्याग रहा है, जो वास्तव में नगरीकरण की ही देन माना जा सकता है। छुआछूत एवं अस्पृश्यता की भावना भी धीरे–धीरे खत्म हो रही है।
4. **महिलाओं की स्थिति में परिवर्तन–** नगरीकरण की प्रक्रिया ने महिलाओं को शिक्षित बनाने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वह्न किया है। महिलायें अपनी परम्परागत छवि से बाहर निकल रही हैं। वैचारिक जागरूकता एवं स्वतंत्रता के कारण महिलायें धरे से बाहर निकल कर विभिन्न क्षेत्रों में पुरुषों के समान कार्य कर रही हैं। एक तरह से नगरीकरण ने अर्थोपार्जन के माध्यम से आत्मनिर्भर बनने के कारण अनेकों अवसर मुहिया करवाये हैं नगरीकरण के कारण ही महिलाओं में सामाजिक एवं आर्थिक जागरूकता का तीव्र विकास हुआ है। महिलाओं में स्वतंत्र निर्णय लेने की क्षमता ने महिलाओं की स्थिति

को और सशक्त किया है, जिससे महिलायें अब स्वयं जीवनसाथी का चुनाव कर रही हैं। विवाह की आयु धीरे–धीरे बढ़ने लगी है। साथ ही जीवन साथी से वैचारिक मतभेद होने की स्थिति में विवाह–विच्छेद को भी महिलायें गलत नहीं मानती हैं।

5. **जाति व्यवस्था में परिवर्तन**– ऐसा माना जाता है कि नगरीकरण ने जाति व्यवस्था को सर्वाधिक प्रभावित किया हैं विभिन्न जातियों के एक साथ रहने, मिलजुल कर कार्य करने से जातिगत ऊँच–नीच की भावना लगभग समाप्त हो गयी है। व्यवसाय में जाति को प्रमुखता न देकर व्यक्ति की योग्यता एवं कार्यकुशलता को मुख्य आधार माना जाता है। अस्पृश्यता सम्बन्धी मान्यतायें अब पूर्ण रूप से समाप्त हो गयी हैं इस सम्बन्ध में जी0 एस0 घुरिये ने स्पष्ट किया है कि 'नगरों में जो व्यक्ति ग्रामीण समुदाय से आकर प्रवासी के रूप में रहते हैं, वे आज भी जाति के नियमों से शहरी श्रमिकों की अपेक्षा अधिक प्रभावित हैं। इसी प्रकार एक ही नगर में नई बनी कलौनियों की तुलना में पुराने मोहल्लों में जाति प्रथा का प्रभाव अधिक बना हुआ है। इसी प्रकार नर्मदेश्वर प्रसाद ने बताया है कि ''जिन समूहों पर नगरीकरण के प्रभाव से जाति व्यवस्था का प्रभाव कम हुआ है, वहां भी इस प्रभाव में काफी असमानता है। जैसे नगरीकरण के प्रभाव से जातियों के आनुवंशिक व्यवसाय का विभाजन, खान–पान के नियंत्रणों, जाति पंचायतों के संगठन तथा जाति के आधार पर सामाजिक स्थिति के निर्धारण आदि में बहुत शिथिलता आ गई है।''[14]

ब– राजैनैतिक जीवन पर प्रभाव

1. जागरूकता में वृद्धि–ऐसा देखा गया है कि नगरीय समुदाय में व्यक्ति ग्रामीण समुदाय की तुलना में अपने अधिकारों एवं कर्त्तव्यों के प्रति अधिक जागरूक रहता है। चूंकि व्यक्ति नगर में निवास करता है, तो वहां वह राजनैतिक गतिविधियों के प्रति अधिक जागरूक रहता है। अपने अधिकारों के प्रति व्यक्ति कानूनी लड़ाई तक लड़ने को तैयार हो जाते हैं विभिन्न लोगों के साथ रहने तथा संचार सुविधायें की सुलभता के कारण व्यक्ति राजनैतिक जीवन की प्रत्येक घटना पर नजर रखता है तथा राजनैतिक व्यवस्था में अपने हित तथा अहित को ध्यान में रखकर वह राजनैतिक रूप से सदैव जागरूक रहता है।
2. **स्पष्ट सक्रियता**– नगरीय समुदय में व्यक्ति राजनैतिक क्षेत्र या व्यवस्था में सक्रिय रूप से भागीदारी है। जागरूकता एवं वैचारिक स्वतंत्रता होने के कारण व्यक्ति यह समझने लगता है कि उसके लिए क्या अच्छा है और क्या बुरा। अतः व्यक्ति अपनी सक्रिय भागीदारी के कारण लोकतांत्रिक देश के निर्माण में अपना पूर्ण सहयोग प्रदान करता है।
3. **ग्रामीण समुदाय में परिवर्तन–** नगरीकरण तथा सामाजिक गतिशीलता के कारण ग्रामीण समुदाय में भी स्पष्ट परिवर्तन दिखई़ देते हैं पलायन के कारण जो व्यक्ति ग्रामीण समुदय को छोड़कर नगरों में निवास करने लगता है तथा नगरीय जीवनशैली तथा संस्कृति को ग्रहण कर लेता है। तब ग्रामीण समुदाय के उसके निकट सम्बनधी या रिश्तेदार उसके जैसा बनने का प्रयास करते हैं। जिसके परिणाम स्वरूप ग्रामीण समुदय की परम्परागत जीवनशैली तथा संस्कृति में धीरे–धीरे परितर्वन हओने लगते हैं। शिक्षा की वृद्धि एवं प्रचार–प्रसार तथा यातायात एवं परिवहन के साधनों ने नगरीय सभ्यता एवं संस्कृति को ग्रामीण समुदाय तक पहुंचाने का कार्य तीव्र गति से किया है। जिससे ग्रामीण समुदायय की संरचना में व्यापक परिवर्तन दिखाई देने लगे हैं। डॉ0 राव ने अपनी पुस्तक 'अरबनाईजेशन एण्ड सोशल चंज' में ग्रामीण समुदाय पर नगरीकरण के प्रभावों की विस्तृत व्याख्या की है। उनके अनुसार नगरों के संपर्क में आने से ग्रामीण समुदाय में द्रव्यीकरण का विकास हुआ है तथा खेती में व्यापारीकरण की प्रवृत्ति स्पष्ट होती जा रही है। जो व्यक्ति पहले गांवों में कपड़े धोने, जूता बनाने, बाल काटने, लोहे का काम करने अथवा पुरोहिताई का काम आदि करते थे। वे नई सेवाओं के आकर्षण में नगरों में प्रवेश कर रहे हैं। इससे न केवल आनुवंशिक व्यवसाय की परम्परा समाप्त होने लगी है, बल्कि ग्रामीण समुदाय में जजमानी व्यवस्था का भी विघटन हो गया है। खेती में व्यापारीकरण, नगरीय उद्योग–धंधों में नौकरी तथा परिवहन

की सुविधाओं से जब ग्रामीणों की आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ तो उनमें आत्मर्भिरता भी बढ़ने लगी है। इसके फलस्वरूप उन्होंने भी संचार साधनों तथा रेडियो, टी0वी0 टेपरिकार्डर आदि का उपयोग करना प्रारम्भ कर दिया।[15]

इसी प्रकार डॉ0 इंद्रा शुक्ला ने नगरीकरण के आर्थिक प्रभाव में दो प्रकार के प्रभावें का उल्लेख किया है।

1. **उत्पादन व व्यवसाय के केन्द्र–** आज नगरों में बड़े–बड़े उद्योग स्थापित हो गए हैं जो उत्पादन तथा व्यवसाय के केन्द्र बन चुके हैं। नगर में किसी भी व्यवसाय या उद्योग को प्रारम्भ करने में कठिनाई नहीं होती है। यहां ग्रामीण व्यक्ति आकर अपनी आवश्यकता की वस्तुओं को खरीदते हैं और अपनी उत्पादित वस्तुओं को बेचते हैं।
2. **बैंकिंग व वित्तीय संस्थाओं का विकास–** नगरों में वित्तीय संस्थाओं, बैंक, मुद्रा व साख आदि की सुविधाए उपलब्ध हैं। इसी कारण नगर व्यापार व वाणिज्य के केंद्र बन गए हैं किसी भी नए उद्योग या व्यवसाय को स्थापित करने के लिए बैंक से उचित ब्याज दर पर ऋण मिल जाता है। इन बैंकों में अपनी बचत को जमा करके व्याज दर के रूप में लाभ भी प्राप्त किया जा सकता है।''[16]

इस प्रकार कहा जा सकता है कि नगरीकरण की प्रक्रिया ने भारतीय सामाजिक व्यवस्था, संरचना, परम्परागत समूहों एवं संस्थाओं में अपना व्यापक प्रभाव डाला है।

3.7 नगरीयता का अर्थ एवं परिभाषा

नगरीयता एक ऐसी अवधारणा है जो नगरीय जीवन शैली को परिभाषित करती है। नगरीय जीवन से तात्पर्य नगरीय संगठन, संगठन के प्रकार, मूल्य, व्यवहार करने के तरीके तथा नगरीय संरचना है। कहने का तात्पर्य यह है कि नगरीयताएक प्रकार से एक नगरीय जीवन पद्धति है। जिसमें यह निर्धारित किया जाता है। कि नगर में जीवन–यापन करने वाले लोगों का अन्य लोगों के साथ व्यवहार कैसा कैसा होगा तथा उनके मूल्य कैसे होंगे? वास्तव में सामाजिक मूल्य का स्वरूप पूर्व में ही निर्धारित होता है। जिसका पालन प्रायः नगर में रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति को करना पड़ता है। नगरीता के सन्दर्भ में अनेक विद्वानों एवं समाजशास्त्रियों ने अलग–अलग परिभाषाएँ दी हैं। जिनमें से प्रमुख समाजशास्त्रियों की परिभाषा निम्नांकित है।

लुईस बर्थ–''नगरीयता जीवन के रहन–सहन के ढंग को कहते हैं जो सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक रूप से नगरीय रहन–सहन में जटिलता को लाता है जो जनसंख्या के आकार में परिवर्तन, घनत्व और विषमता को निर्धारित करता है। व्यक्ति के व्यवहार एवं नगरीय परिवेश में सोचने के ढंग आदि में परिवर्तन लाता है। जहां लोग विभिन्न समुदायों के बीच से एक नये नगरीय समुदाय का निर्धारण करते हैं।

थिओडर्स के अनुसार–''नगरीयता एक जीवन पद्धति (way of life) है। यह समाज एक ऐसा संगठन है जिससे श्रम का जटिल विभाजन, प्रौद्योगिकी के ऊँचे स्तर, उच्च गतिशीलता (highmobility), आर्थिक कार्यों को सम्पन्न करने के लिए उसके सदस्यों की पारस्परिक आश्रितता और सामाजिक सम्बन्धों में अवैयक्तिता (impersonality) का समावेश होता है।[17]

एण्डरसन के अनुसार–'' नगरीयता जीवन के रहन–सहन के ढ़ंग के रूप में केवल नगरों एवं शहरों की ही अकेले अपने अन्दर नहीं समेटता, बल्कि वह राजधानी जैसे महानगरों से दृष्टिगोचर होती है कि यह एक व्यवहार करने का तरीका है।

क्वीन एवं कारपेंटर–''नगरीयता नगर निवास की एक प्रघटना है।

सुधाकर प्रसाद तिवारी–''नगरीयता या नगरवाद एक जीवन शैली है। जिसमें सारा कार्य समयबद्ध नियमित यथार्थता से जुड़ा रहता है। यहां व्यक्ति विचारों और वस्तुओं के स्थान पर नयी वस्तुओं को लाता रहता है। पुराने विचारों एवं परम्पराओं से करना चाहता है। हर वस्तु या व्यक्ति को हानि–लाभ के सन्दर्भ में आंकता है।

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि नगरीयता एक जीवन पद्धति है। जो नगरों में रहने वाले लोगों का जीवन जीने का एक तरीका है। नगरीयता के सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि यह एक आधुनिक जीवन शैली से युक्त जीवन जीने का एक ऐसा तरीका है, जो प्राथमिक सम्बन्धों से विपरीत द्वितीयक सम्बन्धों पर आधारित होता है जिसमें एक सामाजिक–सांस्कृतिक आदर्शों एवं मूल्यों की एक समन्वित सामाजिक व्यवस्था समाहित होती है।

3.8 नगरीयता की विशेषताएँ

नगरीयता की विशेषता के सन्दर्भ में अनेकों समाजशास्त्रियों ने अलग–अलग तरीके से अपने विचारों को स्पष्ट किया है। प्रमुख समाजशास्त्रियों द्वारा दिये गये नगरीयता की विशेषताओं को निम्नांकित आधार पर समझा जा सकता है।

1 लुईस बर्थ ने नगरीयता की चार विशेषताएँ बतलायी हैं।[18] स्थायित्व–एक नगर निवासी अपने परिचितों को भूलता रहता है और नये व्यक्तियों से सम्बन्ध बनाता रहता है। उसके अपने पड़ोसियों से एक क्लब आदि जैसे समूहों के सदस्यों से अधिक मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध नहीं होते। इसलिए उनके चले जाने से उसे कोई चिन्ता नहीं होती।

1. सतहीपन– एक नागरिक कुछ ही व्यक्तियों से बातचीत करता है और उनसे भी उसके सम्बनधर अवैयक्तिक और अनौपचारिक होते हैं। व्यक्ति एक दूसरे से अत्यंत अलग–अलग भूमिकाओं से मिलते हैं। वे अपनी जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अधिक व्यक्तियों पर निर्भर होते हैं।
2. गुमनामिता– नगरवासियों के एक दूसरे से घनिष्ठ सम्बन्ध नहीं होते। वैयक्तिक पारस्परिक परिचतता जो आस–पड़ोस के व्यक्तियों में निहित होती है। नगर में नहीं होती।
3. व्यक्तिवाद– व्यक्ति अपने निहित स्वार्थों को अधिक महत्व देते हैं।

रूथ ग्लास ने नगरीयता की निम्नलिखित विशेषताएँ बतलाई हैं।[19]

1. गतिशीलता
2. गुमनामीपन
3. व्यक्तिवाद
4. अवैयक्तिक सम्बन्ध
5. सामाजिक विभेदीकरण
6. अस्थायित्व और यांत्रिक एकता

एन्डर्सन ने नगरीयता की तीन विशेषताओं को सूचीबद्ध किया है[20]–

1- समंजननीयता
2- गतिशीलता
3- प्रसार।

4– मार्शल क्लिनर्ड ने निम्नांकित विशेषतायें को स्पष्ट किया है[21]– द्रुतगामी सामाजिक परिवर्तन

1. प्रतिमानों और मूल्यों के बीच संघर्ष
2. जनसंख्या की बढ़ती हुई गतिशीलता
3. भौतिक वस्तुओं पर बल
4. अभिन्न अंतर–वैयक्तिक सम्प्रेषण में अवनति

5– डेविस ने नगरीय सामाजिक व्यवस्था की आठ विशेषताओं का उल्लेख किया है।[22] सामाजिक विषमता–नगरीय क्षेत्रों में विभिन्न धर्मों, भाषाओं, जातियों और वर्गों के व्यक्ति रहते हैं और वहां पर व्यवसाय में भी विशेषता होती है।

1. दैतीयक संबंध
2. सामाजिक गतिशीलता
3. व्यक्तिवाद
4. स्थान सम्बन्धी पृथक्करण
5. समाजिक सहनशीलता
6. द्वैतीयक नियंत्रण
7. स्वयंसेवी संस्थाएँ

लुईस बर्थ ने नगरीयता की चार विशेषतायें बतलाई हैं।[23] जनसंख्या की विषमता

1. कार्य की विशेषता
2. गुमनामीपन तथा अवैयक्तिकता
3. जीवन और व्यवहार का मानकीकरण

उपरोक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि यद्यपि अनेक विद्वानों ने नगरीयता की अलग–अलग विशेषताओं का उल्लेख किया है। किन्तु विशिष्ट जीवन पद्धति, विविधता, उपयोगितावाद, वर्ग–विभेद, गतिशीलता, व्यक्तिवाद एवं अस्थायित्वता के आधार पर नगरीयता की विशेषताओं को निम्नांकित आधार पर स्पष्ट किया जा सकता है–

1. नगरीयता वास्तव में औद्योगीकरण की देन है। जिसमें परम्परागत धार्मिक नियमों, संस्कृति, मूल्यों एवं आदर्शों का कोई विशेष स्थान नहीं होता है।
2. घनिष्ठता का अभाव होने के कारण नगरीयता में प्राथमिक सम्बन्धों की अपेक्षा द्वैतीयक सम्बनधों को अधिक महत्व दिया जाता है।
3. नगरीयता सदैव व्यक्तिवादी होती है नगरीय जीवन में सदैव व्यक्ति स्वार्थ सम्बन्धों के आधार पर एक दूसरे से जुड़े रहते हैं अर्थात् व्यक्तियों के सम्बन्ध 'हम' के स्थान पर 'मैं' की भावना से जुड़े रहते हैं। व्यक्ति केवल उन्हीं व्यक्तियों से सम्बन्ध रखते हैं जो उनके स्वार्थों को पूरा करने में सक्षम होते हैं।
4. नगरीय जीवनशैली अपनाने के पश्चात् व्यक्ति के व्यक्तित्व में धीरे–धीरे अनेकों परिवर्तन आने लगते हैं अर्थात् नगरीयता एक तरह से सामाजिक एवं वैचारिक गतिशीलता को बढ़ावा देता है। क्योंकि व्यक्ति के विभिन्न लोगों के सम्पर्क एवं वैचारिक स्वतंत्रता बढ़ने के कारण उसके विचारों में तो परिवर्तन आता ही है। साथ ही व्यक्ति दिन प्रतिदिन आने वाली नई–नई परिस्थितियों में भी आसानी पूर्वक सामंजस्य स्थापित कर लेता है।
5. नगरीयता में भौतिक संस्कृति का अपना एक विशेष महत्व होता है। आधुनिकीकरण एवं पश्चिमीकरण के कारण नगरों में निवास करने वाले व्यक्ति सामान्यतः भौतिक संस्कृति को मानने वाले होते हैं। जिससे अभौतिक संस्कृति का धीरे–धीरे ह्रास होने लगता है।

6. नगरीयता एक तरह से विशेषीकरण के विकास को प्रोत्साहित करता है। कार्यों का क्षेत्र विस्तृत होने के कारण व्यक्ति अपनी रूचि के क्षेत्रों में कार्य करने लगता है। जिससे कार्यों में धीरे–धीरे विशेषज्ञता आने लगती है। प्रत्येक कार्य विशेषज्ञ नगरीय समाज को अपनी कार्यकुशलता एवं योग्यता के आधार पर अपना योगदान देता है और इस प्रकार व्यक्तियों के मध्य श्रम विभाजन भी होता है।
7. नगरीय जीवन में अत्यधिक जनसंख्या घनत्व होने के कारण व्यक्ति की वैयक्तिक पहचान धीरे–धीरे खतम होने लगती है। अनौपचारिक सम्बन्धों के कारण व्यक्ति केवल स्वार्थ सम्बन्धों को ही स्थापित करता है। जिससे सामूहिक मनोवेग एवं विशेषज्ञ सम्बन्धों की भावना समाप्त होने लगती है।

3.9 नगरीयता एवं नगरीकरण में अंतर

नगरीयता एवं नगरीकरण के सम्बन्ध में यदि बात की जाए तो प्रायः नगरीयता एवं नगरीकरण को एक ही अर्थ में प्रयोग किया जाता है। जबकि इनमें परस्पर काफी अन्तर पाया जाता है। चूंकि ये दोनों ही प्रक्रियायें नगरों से सम्बन्धित होती हैं। अतः इन्हें समान माना जाता है।

वास्तव में नगरीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जो नगरीय प्रभावों का प्रसार करती है। वास्तव में नगरीकरण सामाजिक गतिशीलता का परिणाम होती है जिसमें ग्रामीण क्षेत्रों से व्यक्ति प्रवर्जन या प्रवास के द्वारा नगरीय केन्द्रों में निवास करने लगता है। नगरीय केन्द्रों तथा नगर में रहकर व्यक्ति जिस जीवन पद्धति को अपनाता है वह पद्धति नगरीयता कहलाती है। कहने का तात्पर्य यह है कि नगरीयता व्यक्ति के जीवन जीने का एक ढंग है जो विशेष नगरीयय सामाजिक व्यवस्था को जन्म देता है। जबकि नगरीकरण नगरीय विशेषताओं को स्थापित करने में अपना विशेष योगदान देता है। अतः कहा जा सकता है कि नगरीकरण के कारण नगरों को निर्माण एवं विकास होता है। जबकि नगरीयता नगरों में निवास करने वाले व्यक्ति के जीवन जीने के तरीके तथा उनमें होने वाले परिवर्तनों को स्पष्ट करता है। नगरीकरण एवं नगरीयता के अंतर को स्पष्ट करने के लिए अनेक समाजशास्त्रियों ने अपने–अपने विचार प्रस्तुत किये हैं जो निम्नांकित हैं–

1. शशि के जैन के अनुसार– नगरीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जो नगरीय प्रभावों का प्रसार करता है। जबकि नगरों में व्यक्ति जिस तरह रहता है या जीवन व्यतीत करता है। उसे नगरीयता कहते हैं। जीवन की यह विधि नगरी या कस्बों तक ही सीमित है।
2. नेल्स एण्डरसन के कथनानुसार–नगरीकरण प्रायः बड़े नगरों में केन्द्रित है और उद्योग की ओर उन्मुख है इसे प्रायः पाश्चात्य कहा जाता है और एक जीवन के ढंग के रूप में नगरीयता कहा जाता है।
3. बर्गेल के अनुसार–''नगरीकरण एक ऐसी प्रक्रिया के रूप में और नगरीयता एक देश या परिस्थितियों के पुंज के रूप में समझे जायेंगे।
4. एम0 एस0 ए0 राव– नगरीकरण जहां एक प्रक्रिया है। वहीं पर नगरीयता जीवन ढंग को व्यक्त करती है।
5. थॉम्पसन एवं लुईस– ''नगरीकरण उस प्रक्रिया को कहते हैं। जिसके अन्तर्गत किसी देश की जनसंख्या बढ़ती दर से शहरों में आकर बसने लगती है। नगरीयता एक ऐसी जीवन–यापन करने की विधि है जो नगरों में अपनायी जाती है।
6. क्वीन एवं कारपेंटर–नगरीयता का प्रयोग हम नगर निवास की घटना को पहचानने के लिए करते हैं नगरीयकरण का प्रयोग एक विशिष्ट जीवन शैली जो अद्भुत रूप से नगर निवास से जुड़ी है। को पहचानने के लिए करते हैं।

अतः उपरोक्त समाजशास्त्रियों की परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि नगरीकरण और नगरीयता दो अलग–अलग अवधारणाएं हैं। जिन्हें प्रायः एक समझने की भूल की जाती है। जिसमें नगरीकरण के अर्न्तत ग्रामों का नगरों के रूप में बदलना तथा नगरीयता का तात्पर्य ऐसी जीवन पद्धति से है जो अनौपचारिक सम्बन्धों पर आधारित, अस्थायितव एवं परिवर्तनशील जैसी विशेषताओं से युक्त होती है।

3.10 नगरवाद का अर्थ एवं परिभाषा

जैसा कि हम सब जानते हैं कि नगरीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसमें कोई भी स्थान नगरीय विशेषताओं को धारण करता है। जबकि नगरवाद नगरीय जीवन ढंग को व्यक्त करने वाली एक ऐसी प्रक्रिया है जो नगरीय जीवन के निर्धारण के ढंग को व्यक्त करता है। वास्तव में नगरवाद व्यक्ति की एक ऐसी जीवन शैली की पद्धति बन गयी है, जो नगरीय जीवन में अनेक जटिल समस्याओं को भी उत्पन्न कर देता है। नगरवाद के सम्बन्ध में दी गई प्रमुख परिभाषायें निम्नांकित हैं–

1. विरेन्द्र सिंह के अनुसार–''नगरीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है। जिससे कोई स्थान नगरीय विशेषताओं को धारण करता है। जबकि नगरवाद जीवन–ढंग को व्यक्त करता है। नगरीय जीवन–ढंग का निर्धारण वे व्यवहार के ढंग, संगठन के प्रकार, मूल्य तथा व्यवहार प्रतिमान तय करते हैं जो पूर्व निश्चित हैं।
2. वीन और कारपेंटर के अनुसार–'' नगरवाद का प्रयोग हम नगर निवास की घटना को पहचानने के लिए करते हैं। नगरीकरण का प्रयोग एक विशिष्ट जीवन शैली, जो अद्भुत रूप से नगर निवास से जुड़ी है, को पहचानने के लिए करते हैं।
3. बर्जल ने नगरवाद को स्पष्ट करते हुए कहा है कि नगरीकरण एक प्रक्रिया के रूप में और नगरवाद एक देश या परिस्थितियों के पुंज के रूप में समझे जायेंगे।
4. प्रो0 राव– ''नगरीकरण जहाँ एक प्रक्रिया है। वहीं पर जीवन ढंग को व्यक्त करता है। ग्रामीण लोग समीपवर्ती कस्बे अथवा नगर से किसी प्रकार का सम्बन्ध रखते हैं। वह नगरीकरण के अध्ययन का एक आधार हो सकता है। इसे अन्य शब्दों में इस प्रकार कहा जा सकता है। प्रथम वह प्रत्यक्ष तरीका जिससे कि ग्रामीणवासी नगर के सामाजिक–सांस्कृतिक जीवन में भाग लेते हैं। इसके लिए यह आवश्यक नहीं है कि ग्रामीणवासी नगरों में जाकर ही रहें। वे गांव में रहते हुए भी नगरीय संस्कृति से प्रभावित हो सकते हैं। दूसरा–अंतर वैयक्तिक सम्बन्ध जो ग्रामीण लोग नगरीय लोगों के साथ रखते हैं। यद्यपि नगरीकरण सामाजिक परिवर्तन का एक कारक है फिर भी वह स्वतः परिवर्तित होता रहता है। भारत में नगरों में रहने वाले लोगों में भी ग्रामीण जीवन ढंग दृष्टिगत होता है। यह भारतीय नगरीकरण की अपनी विशेषता है। इस प्रकार के नगरीकरण को जिसे परम्परागत नगरीकरण कहते हैं।
5. एम0 एम0 ए0 राव– जब ब्रिटिश शासन काल में नगरीकरण की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई तो उसने परम्परागत नगरवाद को प्रभावित किया।
6. रेडफील्ड और सिंगर के अनुसार–''आर्थिक विकास का नगरीय वृद्धि पर प्रभाव पड़ता है। आर्थिक विकास एक प्रक्रिया है जिससे किसी राष्ट्र की वास्तविक रूप में दीर्घकालीन वृद्धि होती है। वास्तव में आर्थिक विकास की प्रक्रिया से न केवल मौद्रिक आय में ही वृद्धि होती है। बल्कि सामाजिक आदतों, शिक्षा, जनस्वास्थ्य, आराम तथा समाजिक, सांस्कृतिक पर्यावरण में सुधार होता है जो एक सुखी जीवन के लिए आवश्यक है। आर्थिक विकास से सामाजिक दशाएँ सुधरती हैं। जिसे सामाजिक प्रगति की ओर एक कदम कहा जा सकता है।

7. क्रीन तथा कारपेंटर ने अपने ग्रथ 'दी अमेरिकन सिटी' में लिखा है कि 'नगर निवास की स्थिति से तादात्म्य स्थापित करने को नगरीयता और नगरीय निवास की विशिष्ट जीवन पद्धति से तादात्मीकरण को नगरीकरण कहते हैं।[24]
8. शशि के जैन– औद्योगीकरण एवं नगरीकरण के परिणमास्वरूप लोगों में नगरीय जीवन–पद्धति के प्रति एक भावना, जागरूकता या चेतना विकसित होती है। जिसे हम नगरवाद के नाम से जानते हैं। यह चेतना एक विशिष्ट वातावरण से प्रभावित होने के कारण और एक विशेष जीवन–पद्धति के जीवन से अथवा उसका निरंतर अनुभव हो जाने के कारण धीरे–धीरे विकसित होती है जो लोगों की यह सोचने पर बाध्य करती है कि जीवन को एक विशेष–पद्धति से जिया जा रहा है। जिसकी अपनी कुछ विशेषताएँ हैं। नगरीय विशेषताओं वाले जीवन में प्रति जागरूकता ही नगरवाद है। या नगरीय जीवन की विशेषताओं से युक्त जीवन व्यतीत करने के प्रति विकसित चेतना ही नगरवाद है।''[25]

इस प्रकार कहा जा सकता है कि नगरवाद नगरों में रहने वाले व्यक्ति की विशिष्ट जीवन शेली की विशेषताओं को व्यक्त करता है। सरल शब्दों में यदि कहा जाए तो नगरीयता जहां एक ओर एक जीवन–पद्धति (way of life) है। जिसमें व्यक्ति नगरीय जीवन को अपनाता है। जबकि व्यक्ति जीवन–यापन के लिए अन्य सदस्यों पर आश्रित रहता है तथा अनौपचारिक सम्बन्धों द्वारा–एक दूसरे से सम्बंधित रहते हैं वहीं दूसरी ओर नगरवाद नगरीयता की विशेषताओं वाले जीवन को स्पष्ट करने में सहायक होता है। आधुनिक युग में नगरीकरणप ने जहां एक ओर जनसंख्या के घनत्व में वृद्धि की है वही अनेक बहुआयामी आर्थिक, सामाजिक, और सांस्कृतिक समस्याओं को भी उत्पन्न किया है। जो नगरवाद के बढ़ते हुए प्रभाव से उत्पन्न होते हैं।

3.11 नगरवाद की विशेषताएँ

नेल्स एण्डरसन एवं के0 ईश्वरन ने नगरवाद की निम्नांकित विशेषताओं का उल्लेख किया है[26]–

1. मुद्रा अर्थव्यवस्था– नगर के वातावरण में लोग अपरिचित तथा धन एवं सम्पत्ति से अधिक मतलब रखते हैं। सभी शारीरिक आवश्यकताओं एवं भौतिक सुविधाओं की पूर्ति मुद्रा से आसानी से सम्भव होती है। वस्तु विनिमय वाली अर्थव्यवस्था आज के विश्व में नहीं रही है। अतः अधिकांश लोग पैसे देकर और लेकर वस्तुएं खरीदते व बेचते हैं। इस प्रकार मुद्रा अर्थव्यवस्था ने भी नगरवाद के प्रसार में अपना योगदान प्रदान किया है।
2. लिखित प्रमाण या दस्तावेज– नगर में कोई भी कार्य या समझौता मौखिक न होकर लिखित होता है। जो कि स्टाम्प पेपर पर गवाहों की उपस्थिति में लिखित रूप में किया जाता है। ताकि कानून सहायक हो सके। पैसे का लेन–देन भी बैंक–चैक या बैंक ड्राफ्ट से किया जा सके तथा उसका रिकार्ड रखा जाता है। नगर के जटिल वातावरण में यह जरूरी भी है, क्योंकि नगर के इस अपरिचिततापूर्ण पर्यावरण में कोई किसी को नहीं जानता। कार्य या समझौते की शर्तों का पालन न करने पर व्यक्ति को नियंत्रण के अनौपचारिक साधनों द्वारा नियंत्रित नहीं किया जा सकता और इसीलिए नियंत्रण के औपचारिक साधन जैसे–पुलिस एवं न्यायालय आदि केवल लिखित प्रमाणों पर ही विश्वास करते हैं। अतः नगरवाद में मौखिक कार्य की कोई उपयोगिता नहीं होती।
3. आविष्कार एवं प्रविधियों की विविधता– नगरों की प्रौद्योगिकी अत्यंन्त उन्नत और विकसित होने के कारण विभिन्न क्षेत्रों में नित्य नए–नए आविष्कार होते है रहते हैं यह नई प्रौद्योगिकी एवं आविष्कार लोगों की आवश्यकताओं की पूर्ति एवं सुविधाओं में वृद्धि ही नहीं कर रहे हैं। बल्कि मानवीय सम्बन्धों को निरंतर जटिल बना रहे हैं जिससे जीवन में नई–नई सामाजिक समस्याएँ

विकसित होती चली जा रही हैं। जिनका समाधान करने के लिए कार्य करने की नई प्रणालियाँ एवं आविष्कार हो रहे हैं। यह ऐसा दुर्दम्य चक्र है, जिससे आधुनिक समाज में बचा भी नहीं जा सकता।

4. संगठित एवं सुदृढ़ प्रशासन– आवास व्यवस्था, भवन निर्माण, सफाई, जल, विद्युत, गन्दी गलियों की सफाई का प्रबन्ध सड़कों का निर्माण, यातायात की देखभाल, सार्वजनिक कल्याण एवं विकास कार्य, अदालतें, कचहरी, सार्वजनिक प्रशासन, शान्ति एवं सुरक्षा व्यवस्था, परिवार नियोजन, वाणिज्य एवं व्यापार नियंत्रण आदि विविध कार्य नगरीय जीवन में हेते हैं इनको सुवयवस्थिति एवं सुचारू रूप से चलाने तथा नगरीय जीवन की विशलता, जटिलता एवं अपरिर्चितता से निपटने के लिए एक स्वच्छ एवं सुदृढ़ प्रशासन आति आवश्यकक होता है, क्योंकि इसके बिना काम ठीक से नहीं चल सकता।
5. सांस्कृतिक आविष्कार– नगरीय समाज में भैतिक परिवर्तन अत्यधिक तीव्र गति से होने के कारण सांस्कृतिक परिवर्तन भी तीव्रता से होता है। नए–नए सांस्कृतिक तत्वों का आविष्कार होता रहता है। जिससे नगरीय संस्कृति का विकास होता चला जाता है। सांस्कृतिक परिवर्तन भौतिक परिवर्तन के समकक्ष तीव्र नहीं होते। जिससे सांस्कृतिक विलम्बन की प्रक्रिया उत्पन्न होती है, जो कई सामाजिक–साँस्कृतिक समस्याएँ उत्पन्न करती हैं। फिर भी भौतिक विकास नगरीय समा में नए सांस्कृतिक तत्वों का समावेश करता चलता है।

3.12 नगरीकरण, नगरीयता एवं नगरवाद में अंतर

1. नगरीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जो किसी स्थान की नगरीय विशेषताओं को धारण करता है जबकि नगरीयता एक जीवन पद्धति (way of life) है। जिसमें व्यक्ति नगरीय जीवन को अपनाता है, जबकि नगरवाद नगरीयता अर्थात् व्यक्ति किन आदतों को अपने व्यवहार में शामिल करता है तथा नगरीयता की विशेषताओं को अपनाता है उसे रेखांकित करता है।
2. नगरीकरण ग्रामीण क्षेत्रों से नगरीय क्षेत्रों ओर जनसंख्या की गतिशीलता को स्पष्ट करता है। जबकि नगरीयता नगर में रहने वाले लोगों की जीवन–पद्धति को प्रदर्शित करता है तथा नगरवाद नगरीयता एवं नगरीकरण की प्रक्रिया के फलस्वरूप उत्पन्न हुई परिस्थितियों को स्पष्ट करता है।
3. नगरीकरण द्वारा नगरों के निर्माण में सहायता मिलती है, जबकि नगरीयता व्यक्ति के व्यवहारों का निर्धारण करता है तथा नगरवाद व्यवहारों की विशेषताओं को स्पष्ट करता है।
4. नगरीकरण जहां एक ओर विकास एवं प्रगति को स्पष्ट करता है। वहीं नगरीयता व्यक्ति के जीवन शैली में परिवर्तन को स्पष्ट करता है तथा नगरवाद उन परिवर्तनों में व्यक्ति के सामन्जस्य स्थापित करने की प्रक्रिया को स्पष्ट करता है।
5. नगरीकरण प्रवर्जन का परिणाम है, जबकि नगरीयता एवं नगरवाद के माध्यम से व्यक्ति नगरीय व्यवहारों एवं जीवनशैली को अपनाता है जो सदैव परिवर्तनशील रहते हैं।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि नगरीकरण नगरीयता एवं नगरवाद ये अलग–अलग अवधारणायें हैं। प्रमुख समाजशास्त्रीय श्रीवास्तव ने नगरीयता एवं नगरवाद के अंतर को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि नगरीयता नगरवासियों की वह स्थिति है जो कि ग्रामवासियों की स्थिति से निभिन्न है। नगरीयता का सन्दर्भ नगर में हरने वाले लोगों की कार्य स्थिति भोजन की आदतों, तनाव के प्रतिमान और जीवन दृष्टिकोण के प्रतिमानों से है। नगरवाद मनोवृत्तियों की एक व्यवस्था है। यह अन्त व्यक्ति के सम्बन्धों के अंतर्गत औपचारिकतावाद, व्यक्तिवाद और गुमनामी के रूप में परिलक्षित होता है। इसी प्रकार श्रीवास्तव जी ने नगरीय लोगों के जीने के ढंग को नगरीयता एवं उनकी मनोवृत्ति को नगरवाद के रूप में रेखांकित किया है। किन्तु जीवन के ढंग और मनोवृत्ति दो

सापेक्ष शब्द हैं मनुष्य की मनोवृत्ति जिस प्रकार की होती है, वह उसी प्रकार का जीवन व्यतीत करता भी है।''[27] नगरीकरणी की प्रक्रिया को अनेक बार नगरवाद से जोड़कर देखा जाता है। जबकि ये दोनों भिन्न है। पॉल मीडोज एवं मिसरूची ने लिखा है कि–''नगरीकरण से उस प्रक्रिया का बोध होता है जिसमें (अ) नगरीय मूल्यों का विस्तारण होता है। (ब) गांवों से नगरों की ओर लोग आते हैं। (स) व्यवहारों के प्रमिान परिवर्तित होते हैं और जिनका तादात्मीकरण नगर में रहने वाले समूहों से तालमेल रखता है।''[28] वस्तुतः नगरीकरण वह प्रक्रिया है जो नगरीयता को समृद्ध कर उसे ठगों को उन तक पहुंचाता है जो अवगत नहीं रहते। नगरीय सांस्कृतिक प्रतिमानों को सुदूर तक पहुंचाती है। लोगों के साथ–साथ रहने की असहिष्णुता का प्रादुर्भाव करती है अनुकूलन की दशाएं सृजित करती है। विभिन्न आस्थाओं, संस्थाओं, भाषाओं, प्रजातियों, क्षेत्रों के लागों को विजातीयता भरे समुदायों के साथ रखने की प्रेरणा देती है। नवीनता को अपनाने की प्रवृत्ति बढ़ाती है। विभिन्न आर्थिक समूहों में लोगों की गतिशलीता उत्पन्न करती है। वर्गीय संरचना को प्रोत्साहन देती है। लोगों में आधुनिकता का भाव भरती है। और सतत् क्रियाशील रह औद्योगीकरण की सहगामी होती है तथा अधि–संरचना का विस्तार करती है।''[29]

3.13 नगरवाद से उत्पन्न समस्याएँ

नगरीकरण के परिणामस्वरूप नगरवाद व्यक्ति की एक जीवनशैली बन गयी है। नगरों एवं नगरवाद के आकर्षण ने जहां ओर गनरों में जनसंख्या के घनत्व में तीव्र गति से बढ़ोत्तरी की है। वहीं दूसरी ओर अनेकों समस्याओं को भी उत्पन्न किया है। जिन्हें निम्नांकित आधार पर समझा जा सकता है।

1. **आवास समस्या–** औद्योगिक नगरों में आजीविका की खोज में बड़ी संस्था में व्यक्ति आता है। रोजगार के सुअवसर होने के कारण व्यक्ति को रोजगार तो आसानी से प्राप्त हो जाता है, किन्तु रहने के लिए स्थान आसानी से प्राप्त नहीं हो पाता। श्रमिक वर्ग एवं कम आय प्राप्त व्यक्ति भूमि क्रय करने मकान भी नहीं बना सकता। अतः नगरों में आवास समस्या एक विकराल समस्या के रूप में सामने आ रही है। आवासीय सुविधा प्राप्त न होने की स्थिति में व्यक्ति अनेक शारीरिक एवं मानसिक रोगों से ग्रस्त होने लगता है।
2. **मलिन बस्तियाँ–** आवासीय सुविधाएं प्राप्त न होने की स्थिति में व्यक्ति झोपड़ी, कोठरी एवं बांस के छप्परों में कुटिया बना कर निवास करता है। मलिन बस्ती का अर्थ जर्जर आवास व्यवस्था एवं गन्दगी युक्त पर्यावरण और वातावरण से होता है। मलिन बस्तियों गम्भीर बीमारियों का केन्द्र बन गया है। यहां शुद्ध ाजल, वायु एवं वातावरण का अभाव पाया जाता है। जिससे क्षय रोग, डायरिया एवं पेचिस एक आम रोग बन गया है। मलिन बस्तियाँ एक तरह से अपराध का केन्द्र बनते जा रहे हैं। कई सर्वेक्षणों से ज्ञात होता है कि यह स्थान चरस, गांजा और कच्ची शराब बेचने का केन्द्र बनते जा रहे हैं। स्थान एवं कमरों की कमी होने के कारण तथा सदस्यों की संख्या ज्यादा होने के कारण यहां गोपनीयता का अभाव पाया जात है जिससे बच्चो ंका नैतिक पतन हो रहा है तथा बाल अपराधियों की संख्या में भी बढ़ोत्तरी हो रही है।
3. **वैयक्तिक एवं परिवारिक विघटन–** नगरवाद के कारण व्यक्ति के व्यक्तित्व और परिवार का विघटन होने लगता है अपनी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु पति और पत्नी दोनों कार्यरत् होते हैं। जिससे वह अपने बच्चों और परिवार को उचित समय व देखभाल नहीं कर पाते। आर्थिक सुदृढ़ता के लिए उचित और अनुचित सभी प्रकार के कार्यों को करते हैं जिसके परिणामस्वरूप धीरे–धीरे वैयक्ति एवं पारिवारिक विघटन होने लगता है।

4. **सामाजिक विघटन–** जैसा कि हम सब जानते हैं कि नगरीय जीवन में द्वितीयक सम्बन्धों की प्रधानता होती है। जिसके फलस्वरूप सामाजिक आदर्श, मूल्य, नैतिकता एवं सहिष्णुता का पूर्ण अभाव पाया जाता है। प्राथमिक सम्बन्धों या घनिष्ठता के अभाव में धीरे–धीरे सामाजिक विघटन होने लगता है।
5. **नगरीय तनाव–** अति आधुनिक भौतिकवादी सम्यता और संस्कृति के कारण नगर आज तनाव का केन्द्र बन रहे हैं। औद्योगिकीकरण, नगरीकरण, नगरीयता एवं नगरवाद ने व्यक्ति के व्यवहारों एवं व्यक्तित्व में अनेकों परिवर्तन ला दिया है। जिससे व्यक्ति स्वार्थों, महत्वाकांक्षी अवसरवादी एवं भ्रष्ट बनता जा रहा है। जिसके परिणामस्वरूप अनेकों प्रकार की प्रतिस्पर्धा और संघर्ष का जन्म होता है। जो विभिन्न प्रकार नगरीय तनाव का कारण बनता है।
6. **पर्यावरण प्रदूषण–** उद्योगों एवं कारखानों से निकलने वाले प्रदूषित जल, दुर्गंध गन्दे नाले तथा कूड़ाघर आदि व्यक्ति के स्वास्थ्य को प्रभावित करता है। जिसका प्रमुख कारण औद्योगिक अपशिष्टों का सही तरीके से निस्तारण न करना, नगर में साफ–सफाई की व्यवस्था का अभाव तथा जनसंख्या के घनत्व में तीव्र वृद्धि नगरीय पर्यावरण को प्रदूषित करता है। जो एक बहुत बड़ी समस्या के रूप में सामने आ रहा है।
7. **मानसिक संतुलन–** नगरीय जीवन में मानसिक असन्तुलन एक प्रमुख समस्या के रूप में सामने आ रहा है। यद्यपि मानसिक असंतुलन की अवधारणा प्रायः व्यक्ति की अपने व्यक्तिगत जीवन से जुड़ी एक घपटना है। किनतु नगरीय जीवन पद्धति तथा नगरीय व्यवहार के अपनाने` प्शत् व्यक्ति में मानसिक असन्तुलन की भावना का तीव्रता से विकास हो रहाहै। ग्रामीण समाज सरल समाज माने जाते हैं जिसमें व्यक्ति अपनी अनिवार्य एवं मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति से ही संतुष्ट रहता था। किन्तु नगरीय जीवन से उनकी अपेक्षायें तथा आकांक्षाओं में तीव्रता से वृद्धि हुई है। आर्थिक सुदृढता, भौतिक संस्कृति के साधनों, दिखावटी जीवन तथा विलासिता पूर्ण जीवन जीने की लालसा ने व्यक्ति की अपेक्षाओं के स्तर की बहुत अधिक बढ़ा दिया है। उसके प्राप्त न होने की स्थिति में व्यक्ति में मानसिक तनाव बढ़ने लगता है तथा मानसिक असन्तुलन की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।
8. **नैतिक पतन–** समाज को व्यवस्थित एवं संगठित बनाये रखने के लिए नैतिक नियमों का अपना एक विशेष महत्व होता है। नैतिक नियम वे आचरण होते हैं जिन्हें समाज व्यक्ति के लिए उचित एवं पवित्र मानता है तथा व्यक्ति इन नियमों को अपनाकर समाज को व्यवस्थित रखने में अ में अपना सहयोग देता है। एक प्रकार से ये नैतिक नियम व्यक्ति को नियन्त्रित करने में प्रमुख भूमिका का निर्वह्न करती है। जैसा कि हम पहले भी स्पष्ट कर चुके हैं कि नगरीय जीवन में व्यक्ति की अपेक्षाओं एवं आकांक्षाओं का स्तर कताफी उच्च हो जाता है जब वह अपने स्वार्थों एवं आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु नैतिकता को त्यागकर अनैतिक एवं भ्रष्ट तरीकों से धनोपार्जन करने लगता है। जिसके परिणामस्वरूप नगरीय जीवन में नैतिक पतन की समस्या विकराल रूप धारण कर रही है।

3.14 सारांश

उपरोक्त विवेचना के आधार पर कहा जा सकता है कि नगरीकरण, नगरीयता एवं नगरवाद का सीधा सम्बन्ध नगर से है। नगरीकरण की प्रक्रिया भारत में पिछले कुछ दशकों से तीव्र गति से बढ़ी है। ऐसा माना जाता है कि भारत में नगरीकरण की प्रक्रिया औद्योगीकरण के कारण विकसित हुई, क्योंकि औद्योगीकरण के कारण जब किसी स्थान पर उद्योगों को स्थापित किया जाता है, तो उन उद्योगों में कार्य करने के लिए उस क्षेत्र के आस–पास वे लोग आकर वहां बस जाते हैं। इस प्रकार जब जनसंख्या का घनत्व बढ़ने लगता है तो वह नगर का रूप धारण कर लेता है। नगरों में व्यक्ति नगरीय विशेषताओं वाली जीवनशैली को अपनाता है या उस जीवन शैली में अपना जीवन व्यतीत करता है तो उसे नगरीयता कहा जाता है। नगरीयता की विशेषताओं को जब व्यक्ति अपने व्यवहार में शामिल करता है तो उसे नगरवाद कहते हैं।

नगरीकरण का समाज पर विशेष प्रभाव पड़ता है। रोजगार की लालसा, अच्छे जीवन स्तर, उच्च जीवन शैली तथा आर्थिक सुदृढ़ता के लिए व्यक्ति नगरों की तरह पलायन करते हैं तथा नगरीय व्यवहार और जीवन–पद्धति को अपनाता जिससे उसके सामाजिक एवं व्यक्तिगत जीवन में अनेकों परिवर्तन आते हैं। जिसके फलस्वरूप उसकी संस्कृति, मूल्य, धर्म, पारम्परिक संस्कृति तथा परिवारिक रीति–रिवाजों में परितर्वन आने लगते हैं यह परिवर्तन अनेकों समस्याओं को भी जन्म देता है। जिससे व्यक्तिगत रूप से व्यक्तित में ईर्ष्या, प्रतिस्पर्धा, प्रतियोगिता तथा घृणा सम्बन्धी व्यवहारों का जन्म होता है। साथ ही सामाजिक रूप से भी अनेकों समस्याओं जैसे मलिन बस्तियाँ, बेकारी, स्वास्थ्य सम्बन्धी परेशानी एवं बीमारियाँ, अनैतिकता, भ्रष्टाचार, अपराध एवं बाल अपराध तथा मानसिक तनाव एवं असन्तुलन का भी जन्म होता है।

3.15 अभ्यास/बोध प्रश्नों के उत्तर

1. बोध प्रश्न–

सत्य/असत्य

1.नगरीकरण ग्रामीण जीवन में परिवर्तन की प्रक्रिया को कहा जाता है– सत्य/असत्य

2.किंग्सले डेविस ने नगरीकरण का निर्धारण जनसंख्या के आधार पर किया है। – सत्य/असत्य

3.नगरवाद जीवन के ढंग को व्यक्त करता है। सत्य/असत्य

4.नगरीयता एक जीवन पद्धति नही है। सत्य/असत्य

5.नगरीकरण प्रवजन का परिणाम है। सत्य/असत्य

2.रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजीए।

1.नगरीकरण, नगरीयता एंव नगरवाद का सीधा सम्बन्ध..........................से है।

2.नगरीयता नगर निवास की .... है।

3.नगरवाद से .... समस्या उत्पन्न होती है।

4.नगर................. तथा व्यवसाय के केन्द्र बन चुके है।

5............... के कारण ग्रामीण नगरों में निवास करने लगते है।

बोध प्रश्नों के उत्तर

1 सत्य/असत्य

1 असत्य 2 सत्य 3 सत्य 4 असत्य 5 सत्य

2.रिक्त स्थानों की पूर्ती

1 नगर 2 प्रघटना 3 आवास 4 उत्पादन 5 पलायन

3.16 संदर्भ ग्रन्थ

1. शशि के जैन, 'नगरीय समाजशास्त्र, 2001, रिसर्च पब्लिकेशन्स, जयपुर, पृ0सं0 228
2. Louis wirth, urbanism as a way of life. 1938
3. शशि के0जैन, 'नगरीय समाजशास्त्र, रिसर्च पब्लिकेशन जयपुर, 2001, पृ0सं0238
4. शशि के0जैन, 'नगरीय समाजशास्त्र, रिसर्च पब्लिकेशन जयपुर, 2001, पृ0सं0238
5. वीरेन्द्र सिंह, विकास का समाजशास्त्र, 2001, मिश्रा ट्रेडिंग कारपोरेशन, वाराणसी–223
6. वीरेन्द्र सिंह, विकास का समाजशास्त्र, 2001, मिश्रा ट्रेडिंग कारपोरेशन, वाराणसी–223
7. शशि के जैन, 'नगरीय समाजशास्त्र, 2001, रिसर्च पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0सं0 230
8. शशि के जैन, नगरीकरण समाजशास्त्र, 2001, रिसर्च पब्लिकेशन्स, जयपुर, पृ0सं0 240

9- Beteille, andre, castes:old and new, essays in social stratification, asia publishing house delhi 1969
10- kalenda, Pauline, caste in contemporary India, Raurat Publication, Jaipur, 1984
11. शशि के जैन, 'नगरीय समाजशास्त्र, 2001, रिसर्च पब्लिकेशन्स, जयपुर, पृ0सं0 232
12. शशि के जैन, 'नगरीय समाजशास्त्र, 2001, रिसर्च पब्लिकेशन्स, जयपुर, पृ0सं0 232
13. शशि के जैन, नगरीय समाजशास्त्र, 2001, रिसर्च पब्लिकेशन्स जयपुर, पृ0सं0 233
14. शशि के जैन, नगरीय समाजशास्त्र, 2001, रिसर्च पब्लिकेशन्स जयपुर, पृ0सं0 234
15. शशि के जैन, नगरीय समाजशास्त्र, 2001, रिसर्च पब्लिकेशन्स जयपुर, पृ0सं0 236–237
16. इंद्रा शुक्ला, ग्रामीण–नगरीय समाजशास्त्र 2014, ओरियंट ब्लैकस्वान प्राइवेट लिमिटेड, पृ0सं0 299
17- Theodorson C.A.and Theodorson a.q, A modern dictionary of sociology, Thomas y crowell co. new York 1969, page no 450
18. Wirth Louis, Urbanization as a way of life, American Journal of sociology, vol. 44. 1938, Page no 49
19. वीरेन्द्र सिंह, विकास का समाजशास्त्र, 2001, मिश्रा टेडिंग कारपोरेशन, वाराणसी,पृ0सं0 213
20. Anderson and iswarn, Urban sociology new York publishing house, 1953
21. वीरेन्द्र सिंह, विकास का समाजशास्त्र,2001,मिश्रा टेडिंग कारपोरेशन, वाराणसी, पेज 213
22- Divies, k, Human society, The macmillan co. Newyork, 1959,
23. Writh Louis, Urbanzitation as a way of life, American journal of sociology, vol. 44,, 1938
24. S.A.Quinn, and D.B.carpenter, the American city, p 29
25. शशि के जैन, नगरीय समाजशास्त्र, 2001, रिसर्च पब्लिकेशन्स जयपुर,पृ0सं0 21
26. Nels Anderson, The Urban Community, p 124
27. ए0आर0 श्रीवास्तव, भारतीय समाज, 2002, पृ0सं0 71
28- Paul Meadows and E.Mizruchi, Urbanism, Urbanization and change compararative, p-02
29. डॉ0 आर0 सी0 पाण्डेय, नगरीय समाजशास्त्र, पृ0सं0 2

3.17 निबन्धात्मक प्रश्न

1. नगरीकरण की अवधारणा एंव परिभाषा को स्पष्ट करें।
2. भारत में नगरीकरण की प्रक्रिया एंव इसके प्रभाव को स्पष्ट करें।
3. नगरीकरण से उत्पन्न समस्याओं को सविस्तार स्पष्ट करें।
4. नगरीयता किसे कहते है? इसकी विशेषतायें तथा नगरीयता एंव नगरीकरण में अन्तर स्पष्ट करें।
5. नगरवाद से आप क्या समझते है? नगरवाद, नगरीयता तथा नगरीकरण में अन्तर स्पष्ट करें।

इकाई 4: उपनगर, महानगर, निगम और प्रतिवेश
Sub-urban, Metropolitan, Corporation and Neighbourhood

4.0 उद्देश्य
4.1 परिचय
4.2 वैश्वीकरण और नगर
4.3 उपनगर
4.4 महानगर
4.5 निगम
4.6 प्रतिवेश या आसपड़ोस
4.7 भारतीय सन्दर्भ में उपनगर, महानगर, निगम और प्रतिवेश
4.8 निष्कर्ष
4.9 अभ्यास प्रश्न
4.10 सहायक अध्ययन

4.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के बादः

- हम यह बेहतर ढंग से जान–समझ सकेंगे कि उपनगर, महानगर, निगम और प्रतिवेश का अर्थ क्या है?
- हम विश्लेषणात्मक तरीके से उपनगर, महानगर, निगम और प्रतिवेश के कार्यों व महत्व को समझ सकेंगे।

4.1 परिचय (Introduction)

नगरों और शहरी जीवन की अवधारणा का जन्म शिकागो स्कूल में हुआ, जिसे लुईस वर्थ (Louis Wirth) के निबंध "Urbanism as a way of life" में सर्वप्रथम स्पष्ट किया गया। लुईस ने शहर को सामाजिक रूप से बहुजातीय और भिन्न व्यक्तियों के बड़े, सघन और स्थायी व्यवस्था के रूप में परिभाषित किया है (Large, dense and permanent settlement of socially heterogenous individuals). शहरीकरण का रुझान त्वरित रूप से विकसित होने का है, जो समुदायों और स्थान के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक रूपांतरण की वजह बनता है। आंकड़े बताते हैं कि वर्ष 2050 तक दुनिया की 70 प्रतिशत आबादी नगरों में रह रही होगी (Dutch government, 2014). इससे स्पष्ट है कि शहरी क्षेत्रों का भावी विकास अधिकतर विकासशील देशों में ही होने वाला है। शहरी के बीच स्थानिक और कार्यसंबंधी अंतर्संबंध, व्यवस्थाएं तथा उनके चारों ओर क्षेत्रों का विकास तथा नगरीय मानकों में बढ़ोतरी एकीकृत शहरी नियोजन के निर्माण और इसे लागू करने को प्रासंगिक बनाते हैं। हाल के वर्षों में शहरी, ग्रामीण और प्रतिवेशी नगरों के बीच बढ़ते अंतर्सम्बन्धों ने वैज्ञानिक, प्रशासनिक, राजनीतिक अभिरुचियों में भी वृद्धि की है। महानगरीय क्षेत्रों का कार्यढांचा संबंधी दृष्टिकोण इस अवधारणा को अन्य स्थानिक नियोजन आयामों से विशिष्ट बनाता है।

4.2 वैश्वीकरण एवं नगर (Globalization and City)

हाल के वर्षों में नगरों में बड़े परिवर्तन हुये हैं और राष्ट्रीय राज्यों को गति मिली है। इन परिवर्तनों को वैश्वीकरण के हालिया चरण से जोड़कर देखा जा सकता है, जिसकी शुरुआत 70 के दशक के मध्य में हुयी (Sassen 1996; Porter 1998; Castells 2000). शहरों की मूल भूमिका को दो चरणों में सन्दर्भित करके देखा जा सकता है। 1. वे न सिर्फ आर्थिक और सामाजिक परिवर्तनों के केन्द्र के तौर पर सकारात्मक प्रतिनिधित्व करते हैं, बल्कि इन परिवर्तनों के लिये आवश्यक उत्प्रेरक की तरह भी काम करते हैं। 2. वैश्वीकरण एवं सूचनाकरण का समन्वय पदानुक्रम में शहरों के महत्व को सर्वोच्च पायदान पर रखने का काम करता है, जिन्हें वैश्विक शहरों (World or Global Cities) के नाम से जाना जाता है। (Hall & Pain ,2006). World City शब्द की परिभाषा सर्वप्रथम Hall (1966) ने दी थी। उन्होंने शहरों की बहुआयामी भूमिकाओं को स्पष्ट किया और उन्हें निम्न कारकों के केन्द्र के रूप में परिभाषित कियाः

- राजनीतिक शक्ति (राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय दोनों) तथा सरकार से संबंधित संगठन
- राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय व्यापार, जहां शहर स्वयं के लिये और कई बार आसपास के शहरों, देशों के लिये बतौर गोदाम (Enterpots) की तरह काम करते हैं
- बैंकिंग, बीमा और अन्य संबंधित वित्तीय सेवाएं
- हर तरह की उन्नत व्यावसायिक गतिविधियां
- सूचनाओं का संग्रहीकरण एवं प्रसार
- विशिष्ट उपयोग–उपभोग
- कला, संस्कृति और मनोरंजन तथा इनसे जुड़ी सभी अधीनस्थ गतिविधियां

बाद में फ्रीडमैन (Friedmann, 1986) ने निम्न सात बिन्दुओं के आधार पर वैश्विक नगरों को स्पष्ट कियाः

- किसी नगर का वैश्विक अर्थव्यवस्था के साथ एकीकरण इसके स्वरूप और अवसरों की उपलब्धता पर आधारित होता है। नगरों में श्रम के स्थानिक विभाजन के नये स्वरूप का निर्धारण और इनका कार्य ही नगर के ढांचागत परिवर्तन में निर्णयात्मक होता है।

- विश्वभर में अधिकतम महत्व वाले नगर वैश्विक राजधानी के मॉडल के तौर पर देखे जाते हैं, जिन्हें स्थानिक संगठन और उत्पादन व विपणन–बाजार के समन्वय व संयोजन का आधार बिन्दु माना जाता है। इस तरह के अंतर्संबंधों का परिणाम वैश्विक नगरों को सघन स्थानिक पदानुक्रम में बदलता है।
- वैश्विक नगरों के कार्यों और तंत्र पर वैश्विक नियंत्रण का प्रभाव प्रत्यक्ष रूप से इनके ढांचागत विकास, रोजगार और उत्पादन क्षेत्र की गतिशीलता में नजर आता है।
- अंतर्राष्ट्रीय राजधानी के रूप में इन्हें महत्वपूर्ण स्थान के तौर पर देखा जाता है।
- ये नगर आंतरिक (राष्ट्रीय) और/अथवा बाह्य (अंतर्राष्ट्रीय) शरणार्थियों या पलायन करने वाले लोगों के लिये रहने, जीवनयापन करने के अवसर पाने का लक्ष्य बिन्दु होते हैं।
- वैश्विक नगरों के ढांचे में कुछ नकारात्मक बिन्दु भी शामिल होते हैं, मौजूदा दौर में औद्योगिक पूंजीवाद, स्थानिक और वर्गीय ध्रुवीकरण जैसे बिन्दु महत्वपूर्ण हैं।
- वैश्विक नगरों का विकास सामाजिक लागतों में बढ़ोतरी करता है, जो राजकोषीय क्षमता की दर से कई बार अधिक होता है

लंबी बहस, वाद–विवाद और विमर्श के बाद फ्रीडमैन ने वैश्विक नगरों के तीन महत्वपूर्ण कार्यों को स्पष्ट किया (see also Derudder et al. 2012):

- मुख्यालय (Headquarter Function)
- वित्तीय केन्द्र (Financial Centres)
- समायोजन वाले नगर, जहां राष्ट्रीय और क्षेत्रीय अर्थव्यवस्था वैश्विक अर्थव्यवस्था से समन्वित होती है (Articulator Cities)

1990 में, सासेन (Sassen, 1991) ने वैश्विक और सांसारिक नगरों (Global and World Cities) में अंतर स्पष्ट करने का प्रयास किया। यहां सांसारिक नगरों से तात्पर्य उन नगरों से है, जिनके विकास के फलस्वरूप ही वैश्विक नगर की अवधारणा उभरी। सासेन के अनुसार तीन महत्वपूर्ण कारक, नयी तकनीक, दूरसंचार और सूचना प्रौद्योगिकी ने दोनों तरह के नगरों को विकेन्द्रीकृत और सामूहिक आर्थिक गतिविधियों के संचालन को प्रेरित किया। स्थानिक लिहाज से इस समन्वय के प्रसार और वैश्विक एकीकरण ने महत्वपूर्ण नगरों को नयी रणनीतिक भूमिका प्रदान की। इसके चलते ये नगर एक नये तरह के नगर के स्वरूप में विकसित हुये, जो प्रारंभिक ऐतिहासिक बैंकिंग और व्यापारिक केन्द्रों से बिल्कुल अलग थे। सासेन के अनुसार वैश्विक नगर आभासी आर्थिक चक्र का निर्माण करते हैं और चार नये तरीकों से काम करते हैं:

- नियंत्रण की मांग शहरों को नियंत्रण बिन्दु (Command Points) के तौर पर विकसित करती है
- इसके चलते वित्तीय और व्यापारिक सेवाओं–सुविधाओं की मांग बढ़ती है और इसके चलते नगर विभिन्न अग्रगामी आर्थिक क्षेत्रों के लिये मूल स्थान (Key Locations) बन जाते हैं
- ये नगर इन आर्थिक क्षेत्रों के लिये उत्पादन और नये आविष्कारों के लिहाज से उपयुक्त स्थान बनते हैं
- नगर मुख्य आर्थिक क्षेत्र के उत्पादन के लिये बाजार को नियंत्रित–नियमित करते हैं

4.3 उपनगर (Sub-urban)

उपनगरीय व्यवस्था को जटिल विषय माना जाता है। एक ओर इन्हें, 'महानगरों का ऐसा क्षेत्र, जहां शहर नहीं है' (Mckee and Mckee,2003) के तौर पर परिभाषित किया जाता है, वहीं दूसरी ओर इन्हें इससे कहीं अधिक माना जाता है। विभिन्न शोधकर्ताओं ने इन्हें जीवन के तरीकों, अमेरिकन स्वप्न, अद्वितीय और वैचारिक–मानसिक स्थिति के तौर पर परिभाषित किया है। उपनगरीय क्षेत्र हमारे इतिहास, संस्कृति में सन्निहित रहे हैं और टेलीविजन, फिल्मों व साहित्य में भी इनका आभासी प्रतिनिधित्व मिलता है, जिसे हमारे बाहरी जीवन का हर हिस्सा माना जा सकता है। इस तरह उपनगर न सिर्फ अतीत का विषय है, बल्कि वर्तमान का मॉडल भी है। यह एक ऐसा स्थान है, जिसका लगातार विघटन हो रहा है, फिर भी कहीं न कहीं इसका अस्तित्व बना रहता है।

भौगोलिक रूप से देखें तो उपनगर सम्मिश्रित उपयोग अथवा आवासों वाला क्षेत्र है जो या तो नगर और शहरी क्षेत्र का ही एक हिस्सा होता है अथवा शहर से अलग कुछ दूरी पर आवासीय समुदाय होता है (Hema Kumar and Rainis, 2015). अधिकतर देशों (जहां अंग्रेजी बोली जाती है) में उपनगरों को शहर के केन्द्रीय क्षेत्र या आंतरिक शहरी क्षेत्र के विपरीत माना जाता है, लेकिन आस्ट्रेलिया और दक्षिणी अफ्रीका में इन्हें प्रतिवेश यानी पड़ोसी (Neighbourhood) कहा गया है। आस्ट्रेलिया, चीन, न्यूजीलैंड, ब्रिटेन और अमेरिका के कुछ राज्यों में नये उपनगर किसी बड़े शहर से जुड़े हुये होते हैं। सऊदी अरब, कनाडा, फ्रांस और अमेरिका के अधिकतर राज्यों में उपनगर अलग निकाय माने जाते हैं और यहां स्थानीय शासन ही किसी देश की तरह नियंत्रण करता है।

ऐतिहासिक रूप से उपनगर सबसे पहले 19वीं और 20वीं सदी में बड़े पैमाने पर उभरे, जिसका कारण रेल और सड़क परिवहन सुविधा में सुधार रहा, जिसने परिर्वन को बढ़ावा दिया (Mathew,2011). उपनगरों में महानगरों के आंतरिक क्षेत्रों के मुकाबले जनसंख्या घनत्व और व्यापारिक–व्यावसायिक केन्द्र कम होते हैं। हालांकि, ऐसे भी कई अपवाद हैं, जो औद्योगिक उपनगर, नियोजित समुदाय और कृत्रिम शहर होते हैं। उपनगर सामान्यतः नगरों के चारों ओर उन क्षेत्रों में विस्तारित होते हैं, जहां समतल भूमि का अभाव होता है (www.Wikipedia.com).

आमतौर पर माना जाता है कि उपनगरों में रहने वाली आबादी का सामाजिक–आर्थिक स्तर नगरों में रहने वाली आबादी के मुकाबले ऊंचा होता है। 1960 में अमेरिका के 200 शहरीकृत क्षेत्रों की जनगणना से यह तथ्य उजागर हुआ कि यह बड़े और पुराने क्षेत्रों से जुड़े व उपेक्षित इलाके हैं, लेकिन आकार में छोटे ये नये शहर आय, शिक्षा और व्यवसाय के लिहाज से संयोजित क्षेत्र से अधिक आगे हैं। बार–बार किये गये विश्लेषणों ने स्पष्ट किया कि आयु का कारक (Age Factor) शहरों के उपनगरीय क्षेत्रों में अंतर जानने का सबसे उपयुक्त माध्यम है। परिणामों ने स्पष्ट किया कि अमेरिकी शहरो का विभिन्न सामाजिक वर्गों के आवासीय वितरण के आधार पर निश्चित और पूर्वानुमानित दिशा में विकास हुआ है, जैसाकि बर्गीज मॉडल में भी स्पष्ट किया गया है।

बीते तीन दशकों में विमर्श का मसला शहरी उपनगरीय परिधि (Urban Periphery) के उदाहरण से वैश्विक उपनगरवाद (Global Suburbanism) एवं उत्तर उपनगरीय परिस्थितिवाद (Post Suburbia) में बदल गया है। यह हेनरी लीफेवर (Henry Lefebvre) के त्रिपदीय सिद्धांत, कल्पना, अनुभव और आवासस्थल (Conceived, Perceived and Lived Space) को बल देता है, जिसके जरिये वास्तविक शहरी रूपांतरण का विश्लेषण आसान होता है। वह बताते हैं कि नये मानकों की स्थापना शासन के नये स्वरूप, व्यवस्थाओं, विभिन्न निकायों के बीच सीमापार समन्वय के सशक्तीकरण की स्थिति को लागू करने और इनके विश्लेषण के लिये मापदंड का काम करते हैं। यह नये शहरी ढांचे की स्थापना में मदद करता है जो अधिक सघन तथा शहरीवाद को और अधिक ढंग से आत्मसात किये हुये होता है। इसकी शुरुआत आर्थिक मुख्यालयों और मध्यम वर्ग के लिये आवास उपलब्ध कराने से होती है। धीरे–धीरे इनमें नये सार्वजनिक स्थल जुड़ते जाते हैं और इन सबसे मिलकर नया शहरी वातावरण व छवि जन्म लेते हैं। इस तरह के प्रयास आंशिक रूप से सफल भी हुये। इस सन्दर्भ में पुरानी शहरी परिधि को विशिष्ट नगर के तौर पर परिभाषित किया जा सकता है। पारंपरिक परिभाषाओं और अवधारणाओं के जरिये शहरी स्वरूप को पूरी तरह समझ पाने में नाकाम रहे, इससे यह निष्कर्ष निकला कि नगरीय और उपनगरीय दुनिया का विभाजन शहरीकरण या नगरीकरण के विश्लेषण का उपयुक्त साधन नहीं रह गया है।

उपनगरों की स्थानिक उपस्थिति को किसी परजीवी (Parasite) की तरह भी देखा जाता है, जो मूल नगर की सामाजिक–आर्थिक गतिविधियों को अपनी ओर खींचने लगता है। उपनगरवाद की वैचारिक उपस्थिति ने बड़े पैमाने पर ऐसे अकादमिक साहित्य को भी आकार दिया है, जो उपनगरीय संक्रमण की निंदा करता है (Baxandall and Ewen,2000). आधुनिक शोधकर्ताओं ने इस अभियान को बढ़ावा दिया है हालांकि शहर के समुदायवादी पहलू को ध्यान में रखते हुये वे कई मामलों में उभयभावी (Ambivalent) भी नजर आते हैं। उपनगरीय क्षेत्रों में आवासीय सुविधा के विकास ने भी सामाजिक परिस्थितियों को स्थायित्व के बजाय गतिशील बने रहने पर जोर दिया। औद्योगिक उत्पादन, उपभोक्तावादी संस्कृति और उपनगरीय सामुदायिक विकास ने अमेरिका के लोगों को समुदाय के निर्माण के बजाय समुदाय के चयन को प्रेरित किया। सामुदायिक स्थायित्व को ऐसी चीज माना गया, जिसे देखा–अनुभव किया जा सकता है, चयन किया जा सकता है और इसमें शामिल हुआ जा सकता है। पूर्व व्यवस्थित और

लिपटे (Packaged) हुये ये समुदाय अन्यों को बेहतर अवसर और संभावनाओं के लिहाज से लुभाते हैं। मौजूदा अमेरिका में उपनगरों का अपने आसपास के नगरों से वियोजित होना एक ऐसी घटना है, जिसे शोधकर्ताओं ने अमेरिका का उपनगरीकरण (Suburbanization of United States) कहा है।
कई शोधकर्ता इस वियोजन या अलगाव को नये तेज और उग्र शहरी स्वरूप के विकास के तौर पर देखते हैं। हालांकि, यह वियोजन स्पष्ट करता है कि संबंधित उपनगर हाल में महत्वपूर्ण रूपांतरणों (Trnsformation) के दौर से गुजरा है। कई विमर्शों में यह भी बताया गया है कि उपनगरों का विकास असल में युद्धोपरांत अमेरिका में उपजी विशिष्ट परिस्थितियों का परिणाम था। उदाहरण के लिये, 1950 में यह माना जाता था कि घरों को गिरवी रखने की संघीय शासन की नीति उपनगरीकरण की जिम्मेदार थी। 1960 में अंतर्राज्यीय राजमार्गों और जातीय तनावों को विकेन्द्रीकरण का जिम्मेदार माना गया। लेकिन, वे सभी कारक जिन्होंने उपनगरीकरण को प्रेरित किया, युद्धोपरांत के घटनाक्रम थे और यह समस्या सिर्फ अमेरिका तक सीमित थी। वास्तव में उपनगरीकरण की प्रक्रिया युद्धपूर्व भी मौजूद थी और युद्धोपरांत भी साथ ही अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर इसे देखा जा सकता था।

4.4 महानगर (Metropolitan)

महानगरीय क्षेत्र (Metropolitan Region) स्पष्ट परिभाषित अवधारणा नहीं है। अंतर्राष्ट्रीय (OECD, World Bank, etc.), यूरोपीयन (Sellers et al. 2013; Salet et al. 2003; Herrschel & Newman 2002; etc.) और जर्मन सन्दर्भों (Zimmermann & Heinelt 2012; BBSR 2010; Knieling 2009; etc.) में महानगरीय क्षेत्र को उच्च शहरीकृत, नगरीय इलाके के तौर पर वर्णित किया गया है, जहां जनसंख्या घनत्व उच्च होता है और आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियां यहां केन्द्रित होती हैं। यही नहीं, महानगरीय क्षेत्र वैश्विक नगरों के नेटवर्क का स्वरूप भी रखते हैं। विशिष्ट शासन ढांचा यहां की पहचान है जो केन्द्रीय नगरों और इसके आसपास के क्षेत्रों के बीच समन्वय, आंतरिक अधिकार क्षेत्र संबंधी तंत्र को नियंत्रित करता है। महानगरीय क्षेत्रों पर फोकस के लिये जरूरी है कि विश्लेषणात्मक और मानकीय दृष्टिकोण में विशेषज्ञता के साथ विभेद को समझा जाये। यहां यह उल्लेखनीय है कि इनमें से पहला पहलू जहां महानगरीय क्षेत्रों की परिभाषा और कार्यशैली को स्पष्ट करता है, वहीं दूसरा वस्तु, पूंजी, सूचना, पलायन प्रवाह आदि बिन्दुओं के लिहाज से उन केन्द्रों की पहचान करता है जो महानगरीय क्षेत्र हो सकते हैं और जो वैश्विक नेटवर्क में बुनियादी बिन्दु की तरह काम कर सकते हैं। यह वैश्विक क्रियाकलापों और स्थानीय आर्थिक एवं सामाजिक गतिविधियों के बीच समन्वय का काम करते हैं। महानगरीय क्षेत्रों को अन्य क्षेत्रों से अलग समझने के लिये स्थानिक नियोजन के निम्न चार पहलुओं को अहम माना जाता है:

- नवोन्मेषण एवं प्रतिस्पर्धा (Innovation and Competition)
- निर्णय क्षमता एवं नियंत्रण (decision-making and Control)
- मुख्य प्रवेशद्वार (Gateway)
- प्रतीक (Symbol)

इन पहलुओं के आधार पर महानगरीय क्षेत्रों के गुण और मापदंड तय किये गये हैं, जो विभिन्न श्रेणियों में अंतर करने में भी उपयोगी हैं।
वहीं, मानकीय दृष्टिकोण उन बिन्दुओं पर ध्यान केन्द्रित करता है, जिनसे स्पष्ट हो कि स्थानिक विकास की चुनौतियों और मौजूद समस्याओं के समाधान के लिये महानगरीय क्षेत्र को किस तरह और क्या काम करना चाहिये। उदाहरण के लिये यूरोपियन देशों में महानगरों को स्थानिक विकास नीतियों के आधार पर परिभाषित किया गया है। इसका मकसद न सिर्फ उनमें स्वायत्त संगठन की स्थापना है, बल्कि राष्ट्रीय स्तर पर प्रतिस्पर्धा भाव को सशक्त करना और राष्ट्रीय विकास में उनके योगदान की भूमिका तय करते हुये देश को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर बेहतर छवि प्रदान करने में मदद करना भी है। लेकिन, मानकीय दृष्टिकोण की एक बुनियादी दिक्कत यह है कि यह विषय के तौर पर सिर्फ महानगरीय क्षेत्र के दायरे तक ही सीमित रह जाता है। इससे अवधारणा के गैरजरूरी उपयोग की संभावना बढ़ती है, जिसमें नकारात्मक प्रभावों की अनदेखी की जाती है। फ्रीडमैन (1986) ने इस दृष्टिकोण के आधार पर वैश्विक नगरों के तीन मुख्य कार्य बताये हैं (see also Derudder et al. 2012):

- मुख्यालय (Headquarters)

- आर्थिक–वित्तीय केन्द्र (Financial Centres)
- संयोजन क्षमता जो राष्ट्रीय या क्षेत्रीय अर्थव्यवस्था को वैश्विक अर्थव्यवस्था से जोड़े (Articulator cities that link national or regional economy to the global economy)

महानगरीय प्रदेश (Metropolitan Region)

नगरीय शब्दावली और अवधारणाओं में अब तक महानगरीय प्रदेश को अंतर्राष्ट्रीय संवाद में पर्याप्त स्थान नहीं मिला है। इसके बजाय वृहद महानगरों और क्षेत्रों (Mega Cities and Mega Regions) के त्वरित विकास और इनसे जुड़ी समस्याओं के समाधान पर ध्यान अधिक केन्द्रित किया गया है। इसके परिणाम क्षेत्रीय, स्थानिक और राजनीतिक ढांचे में नजर आते हैं, जहां नगरीय और क्षेत्रीय अवस्थापना विकास के साथ आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और पर्यावरणीय क्षेत्रों में कई चुनौतियां सामने आती हैं। महानगरीय प्रदेशों को सामान्यतः उन क्षेत्रों के तौर पर जाना जाता है, जो औपचारिक तौर पर स्थानीय शासन के अधिकार क्षेत्र में आने वाले नगरीय इलाके हों। सामान्यतः ये नगर सघन आबादी वाले होते हैं (कम से कम एक लाख आबादी)।

महानगरीय प्रदेश में आसपास के क्षेत्र भी शामिल हो जाते हैं, इनमें नजदीक के नगरीकृत आवासीय क्षेत्र और कम जनसंख्या घनत्व वाले वे क्षेत्र भी आते हैं, जो सड़कों, परिवहन आदि सुविधाओं से नगरों से जुड़ते हैं। महानगरीय प्रदेशों के उदाहरणों में ग्रेटर लंदन और मेट्रो मनीला शामिल हैं (UNICEF, 2012). यह परिभाषा पूर्ववर्ती नगर क्षेत्र वर्णन से मिलती–जुलती है (Neuman & Hull ,2011) जिसका फोकस मूल नगर और इसके आसपास के क्षेत्रों के कार्य संबंधों से है, जो एक से दस लाख तक की आबादी के नगर समूहों से संबद्ध हो। फिर भी महानगरीय प्रदेश (Metropolitan Region) शब्द का इस्तेमाल शायद ही कभी यूरोप से बाहर कहीं किया जाता है। इसके बजाय महानगरीय क्षेत्र (Metropolitan Areas) शब्द का अधिक इस्तेमाल किया जाता है (e.g. Demographia.com 2013) जो अर्जेंटीना, ब्राजील, कनाडा, अमेरिका जैसे देशों में पहले विकसित हुये हैं। यहां कनाडा का उदाहरण यह भी स्पष्ट करता है कि महानगरीय क्षेत्रों के संबंध में सोच–समझ में समय के साथ खासा अंतर–परिवर्तन भी आया है (see excursus). सामाजिक लिहाज से देखें तो महानगरीय क्षेत्रों के गुण–विशिष्टताओं को निम्न चार आयामों के आधार पर स्पष्ट किया जा सकता है:

- विश्लेषणात्मक तरीके से देखें तो महानगरीय क्षेत्रों को महानगरीय सार्वजनिक एवं निजी सुविधाओं–सेवाओं के संग्रहीत स्वरूप के तौर पर परिभाषित किया जा सकता है
- कारकों और क्रियाओं के आधार पर देखें तो महानगरीय क्षेत्र क्षेत्रीय उद्देश्यों, रणनीति और आवश्यक संगठनात्मक ढांचे की पूर्ति के लिये बुनियादी क्षेत्रीय हितधारकों के साथ संयुक्त जानकारी–ज्ञान का आदान–प्रदान करते हैं
- स्थानिक विकास के सन्दर्भ में महानगरीय क्षेत्रों को मानकीय माना जाता है जो अन्वेषण, रचनात्मकता और आर्थिक विकास की दिशा में मार्गदर्शक का काम करते हैं
- नगरीय और क्षेत्रीय विकास के प्रतीक के तौर पर महानगरीय क्षेत्र उन नियमों, मानकों और मूल्यों के प्रतीकचिह्न हैं जो महानगरीकरण एवं नगरीकरण की प्रकिया के विभिन्न पहलुओं से संबद्ध होते हैं

महानगरीय प्रदेशों में ढांचागत अंतर (Structural Differentiation of Metropolitan regions)

उपरोक्त अवधारणाओं को ध्यान में रखते हुये गहन विश्लेषण से ज्ञात होता है कि महानगरीय क्षेत्रों में न सिर्फ आकार, बल्कि सामाजिक स्थिति, क्षेत्रीय हितधारकों की भूमिका और महानगरीय शासन के अस्तित्व जैसे पहलू भी शामिल होते हैं। इस आधार पर महानगरीय क्षेत्रों में अंतर के निम्न बिन्दु हो सकते हैं:

- केन्द्रीयता, जो महानगरीय क्षेत्र के बहुकेन्द्रीय स्थानिक ढांचे से एककेन्द्रीयता को अलग करती है
- बहुकेन्द्रीयता की विशिष्टता जो बहुकेन्द्रीय अंतर्नगरीय आकार के अंतर को स्पष्ट करती है
- कारकसमूहों के सन्दर्भ में महानगरीय क्षेत्रों की स्व अवधारणा, यह सार्वजनिक नीति दृष्टिकोण से समन्वित क्षेत्रीय कार्यसंबंधों तक विस्तृत हो सकती है, जिससे निजी व्यवसाय से सहयोग के तरीके विकसित किये जाते हैं जो क्षेत्र को व्यावसायिक स्थान की पहचान दिलाता है
- प्रोत्साहन, संचार आधारित औपचारिक क्षेत्रीय संचालक साधन और सहायक अनौपचारिक साधन

- महानगरीय प्रदेशों में बहुकेन्द्रीय ढांचे की उपलब्धता विकास और प्रबंधन के लिये जटिल प्रयासों की जरूरत की वजह बनती है, ऐसे में आंतरिक तकनीकी और राजनीतिक संगठन को खासी चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। तकनीकी रूप से देखें तो नीति निर्माताओं के आंतरिक मतभेद और विविधताएं बहुकेन्द्रित ढांचे की सबसे बड़ी चुनौती हैं। वहीं, राजनीतिक लिहाज से देखें तो शासन व्यवस्था की चुनौती तब बढ़ जाती है, जब प्रतिस्पर्धी शहर संयुक्त महानगरीय व्यवस्था चला रहे हों। फिर भी, बहुकेन्द्रीयता हमेशा समस्या भरी नहीं होती है। असल में यह स्थानिक विकास और कार्यसंबंधों का नियंत्रण करती है। इस लिहाज से बहुकेन्द्रीयता की विश्लेषणात्मक अवधारणा महानगरीय प्रदेशों में विकास प्रक्रिया के विश्लेषण का बेहतर ढांचा उपलब्ध कराने के साथ भावी आवश्यकताओं और विकास उद्देश्यों की पूर्ति का जरिया भी बनती है (उदाहरण के लिये सार्वजनिक परिवहन, तकनीकी अवस्थापना विकास या नगरों के मध्य श्रम विभाजन आदि)

नगरीय समूह अपेक्षाकृत नयी घटना है। 1950 में सिर्फ न्यूयॉर्क और टोक्यो ही ऐसे नगर थे, जहां 10 लाख के करीब आबादी रहती थी। 1970 के दशक तक शंघाई, मेक्सिको सिटी जैसे शहर भी इसमें जुड़ गये, जिसके बाद त्वरित नगरीय विकास देखा गया। 2004 तक दुनिया की करीब नौ प्रतिशत आबादी दुनिया के 22 मेगासिटी में रहने लगी थी (U.N.,2014). वर्ष 2020 तक मुंबई, दिल्ली, मेक्सिको, साओपाओलो, ढाका, जकार्ता और लागोस जैसे शहरों में 20 लाख से अधिक आबादी के रहने की संभावना है। विभिन्न देशों में इस विकास ने नगरीय प्रबंधन के लिये अहम चुनौतियां पेश की हैं (Du,2016). इन परिवर्तनों को निम्नवत समझा जा सकता है:

- यदि केन्द्रीय नगर का विकास क्षेत्रीय स्तर के नगरों पर निर्भर करता है तो परिदृश्य जटिल हो जाता है। विभिन्न विकासशील नगरीय समूहों में बहुकेन्द्रित महानगरों (जिन्हें वृहद् क्षेत्र यानी मेगा रीजन के नाम से भी जाना जाता है) ने बहुत विशाल प्रादेशिक अस्तित्व का निर्माण किया है। उदाहरण के लिये अमेरिका में बॉसवाश स्ट्रेच (Boston, Washington and New York) और चीन में चोंगचिन (Chongqing) (Yang 2009).
- महानगरीय प्रदेश मेगासिटी और मेगारीजन के लिये सहायक पैमानों का नियंत्रण करते हैं। दुनियाभर में नगरीय समूह राजनीतिक रुचि का विषय रहे हैं। मूल केन्द्रीय नगर और आसपास के क्षेत्रों के बीच आंतरिक कार्यसंबंधों के कारण पर्याप्त समन्वय और सहयोग के लिये विभिन्न समाधान तलाशे गये हैं। स्थान विशेष के विशिष्ट सन्दर्भों और कार्यढांचों के लिहाज से महानगरीय प्रदेशों में अंतर देखा जा सकता है। विभिनन देशों में महानगरीय क्षेत्रों को आर्थिक और राजनीतिक रूप से निर्णायक महत्व दिये जाने के बावजूद अकसर यह प्रश्न उठता है कि महानगरीय प्रदेशों को मूल प्रासंगिकता के अनुरूप किस तरह व्यवस्थित किया जाये। महानगरीय क्षेत्र सामाजिक और सांस्कृतिक नवोन्मेषण के केन्द्र बनकर उभरते हैं।
- कुछ देशों में महानगरीय प्रदेशों–क्षेत्रों से जुड़ी विशिष्ट नीतियां तय की गयी हैं। उदाहरण के लिये यूरोप में यूरोपीयन यूनियन रिसर्च प्रोग्राम ऑन स्पाशियल डेवलपमेंट (ESPON) महानगरीय क्षेत्रों से जुड़े विभिन्न पहलुओं पर शोध का काम कर रहा है। इसका आधार यूरोपीयन स्पाशियल डेवलपमेंट पर्सपेक्टिव (ESDP) है, जिसकी स्थापना वर्ष 1999 में हुयी थी। यूरोपीयन यूनियन से जुड़े कुछ देशों (जैसे फ्रांस, जर्मनी और पोलैंड) ने महानगरीय क्षेत्रों को उनकी अपनी स्थानिक विकास नीतियों के हिसाब से एकीकृत किया है। दुनिया के अन्य क्षेत्रों, जैसे ब्राजील, भारत, दक्षिण अफ्रीका, तुर्की आदि में भी महानगरीय क्षेत्रों के लिये यह प्रासंगिक हो गया है।

4.5 निगम (Corporations)

भारत में नगरीय प्रशासन के सन्दर्भ में देखें तो सर्वाधिक बोझ नगर निकायों पर ही रहता है। यदि हम किसी महानगर में रहते हैं तो ये निगम खासे सशक्त और आर्थिक रूप से सक्षम दिखते हैं और उनके पास पर्याप्त बजट की भी व्यवस्था होती है। गलियों की सफाई करने वाले स्वच्छकारों से लेकर नगर निगम के मुख्य अधिकारी तक कर्मचारियों की लंबी श्रृंखला वहां होती है। भारत में मुंबई स्थित बृहन्मुंबई नगर निगम (बीएमसी) को देश का सबसे अमीर निगम माना जाता है।

नगर निगमों की स्थापना दिल्ली, मुंबई, चेन्नई, कोलकाता और इन जैसे बड़े नगरों में बेहतर प्रशासनिक प्रक्रियाओं के संचालन के लिये की जाती है। संबंधित राज्य की विधानसभा से प्रस्ताव पारित करने के

बाद इनकी स्थापना की जाती है। केन्द्रशासित राज्यों में भारतीय संसद द्वारा पारित प्रस्तावों से निगम स्थापित होते हैं। नगर निगमों में तीन अधिकरण मुख्य होते हैं, परिषद (Council), स्थायी समिति (Standing Committee) और आयुक्त (Commissioner)। परिषद का गठन पार्षदों के समूह से होता है, जिनका सीधा निर्वाचन जनता करती है। परिषद के मुखिया को महापौर (Mayor) कहा जाता है। मेयर की सहायता के लिये उपमहापौर (Deputy Mayor) की भी व्यवस्था दी जाती है। परिषद की सभी बैठकों की अध्यक्षता मेयर ही करते हैं।

चूंकि पार्षदों की संख्या के लिहाज से परिषद का आकार बेहद बड़ा होता है, परिषदीय कार्यों के संचालन के लिये स्थायी समिति का गठन किया जाता है। स्थायी समिति ि"ाक्षा, स्वास्थ्य, कर व्यवस्था, सार्वजनिक कार्य आदि के संबंध में निर्णय ले सकती है। नगर आयुक्त (Municipal Commissioner) निगम के मुख्य कार्यकारी अधिकारी होते हैं और वह स्थायी समिति व परिषद द्वारा लिये जाने वाले फैसलों को लागू करवाने का काम करते हैं। नगर आयुक्त की नियुक्ति राज्य सरकार द्वारा की जाती है। सामान्यतः आईएएस अफसर को नगर आयुक्त के पद पर नियुक्ति दी जाती है।

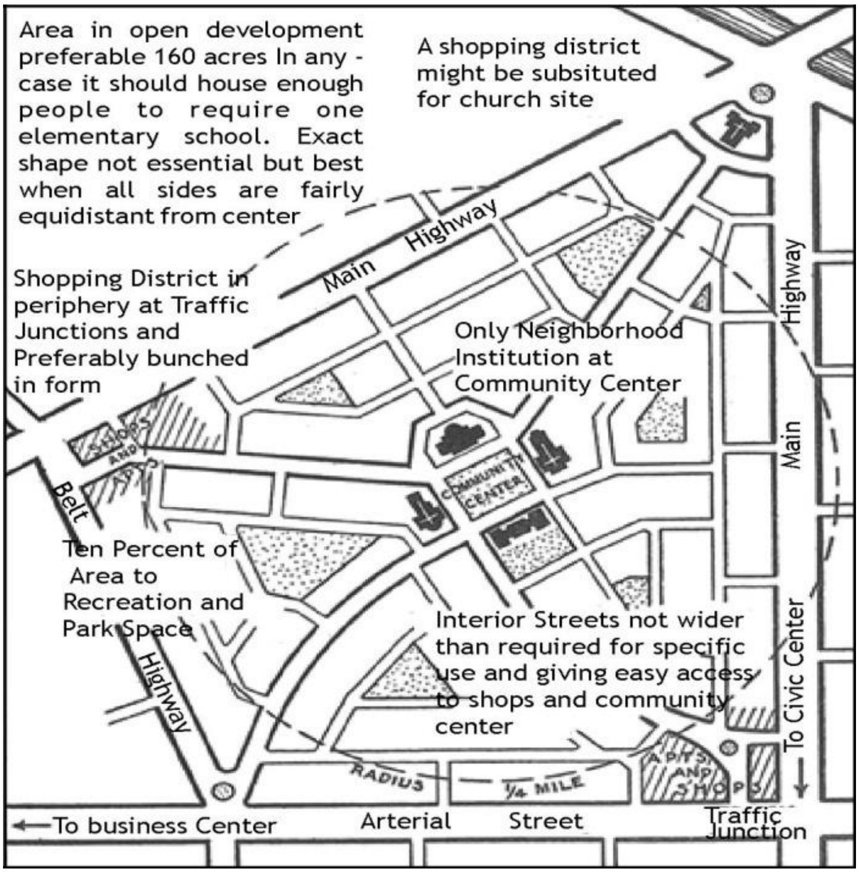

4.6 प्रतिवेष या आसपड़ोस (Neighborhood)

प्रतिवेश या पड़ोस शब्द का सामान्य अर्थ पारंपरिक और सामयिक आवासीय विकास के सन्दर्भ में लिया जाता है। वर्ष 1929 में सबसे पहले क्लेरेंस ए. पेरी ने प्रतिवेशी इकाई (Neighborhood Unit) शब्द का इस्तेमाल किया था, तब से यह नगरों के नियोजन का अहम हिस्सा बन गया है। विकास एवं नियोजन के प्रयासों के बेहतर परिणाम हासिल करने के लिये यह आवश्यक है कि प्रतिवेश या पड़ोस के सामाजिक और भौतिक अर्थों को बेहतर ढंग से समझा जाये। सामान्यतः पड़ोस का अर्थ नगरों से सटे उपभागों और ग्रामीण क्षेत्रों से लगाया जा सकता है। साधारण परिभाषा यह है कि प्रतिवेश किसी नगर के पड़ोस का वह स्थान है, जहां लोग रहते हैं। लुईस मम्फोर्ड ने प्रतिवेश को ऐसा प्राकृतिक तथ्य माना है, जो तब अस्तित्व में आता है जब कोई जनसमूह किसी क्षेत्र में रहने लगता है। मानवता के प्रारंभिक दौर से ही व्यावहारिक, आर्थिक, सामाजिक और मनोवैज्ञानिक कारणों से लोग एक–दूसरे के समीप क्षेत्रों में रहते और समुदायों की स्थापना करते रहे हैं। इन वर्गों में कुछ विशेष भौतिक और सामाजिक गुण मिलते हैं जो इन्हें व्यवस्था के अन्य हिस्सों से अलग करते हैं। प्रतिवेशों के इन समूहों ने ही गांवों, नगरों और कस्बों का निर्माण किया। प्रतिवेश हर नगरीय या गैरनगरीय क्षेत्र में होने वाली देशव्यापी घटनाओं की एक इकाई है। अर्नोल्ड विटिक (1974) प्रतिवेश को नियोजित और एकीकृत नगरीय क्षेत्र के तौर पर परिभाषित करते

हैं, जो विस्तृत समुदाय का हिस्सा होता है और जहां आवासीय क्षेत्र, एक या अधिक स्कूल, बाजार, धार्मिक भवन, खुले स्थान और कई बार बेहतर सेवा—सुविधाएं भी हासिल होती हैं।

नियोजन अवधारणा में प्रतिवेशी इकाई का उभार 1900 के बाद प्रारंभिक दशकों में तब हुआ, जब औद्योगिक क्रान्ति के कारण पर्यावरण और सामाजिक परिस्थितियों को होने वाले नुकसान सामने आये। न्यूयॉर्क की नियोजन प्रक्रिया में शामिल रहे क्लेरेंस आर्थर पेरी (1872-1944) बताते हैं कि प्रतिवेशी इकाइयों की स्थापना की शुरुआत समुद्र से होने वाले नुकसानों से समुदाय को बचाने के साधन के तौर पर हुयी। पेरी ने अपनी इस अवधारणा को 1929 में लिखी पुस्तक 'Regional Plan of New York and Its Environs' में सर्वप्रथम स्पष्ट किया, जिसने बाद में इस दृष्टिकोण को नियोजन का उपयोगी और अहम साधन बना दिया। पेरी ने जनसंख्या के विशिष्ट आकार के हिसाब से प्रतिवेश की स्थापना की जरूरत और स्थापना के तरीकों का ठोस डायग्राम पेश किया। इस मॉडल ने नगरों और प्रतिवेशों में आवासों, सामुदायिक सेवाओं, गलियों, व्यवसायों आदि की स्थापना के संबंध में गाइडलाइन का काम किया।

क्लेरेंस पेरी की अवधारणा (Clarence A. Perry's Conception)

पेरी ने प्रतिवेशी इकाई को आबादी वाला क्षेत्र बताया है, जिसे प्राथमिक स्कूल की आवश्यकता होती है, जिसमें 1000 से 1200 तक छात्र पढ़ सकें। इस लिहाज से प्रतिवेश की आबादी छह हजार से अधिक होनी चाहिये। निम्न सघन आवासीय क्षेत्र के तौर पर विकसित इस क्षेत्र में प्रति एकड़ दस परिवार रहते हैं, इस लिहाज से प्रतिवेश की स्थापना 160 एकड़ के कुल क्षेत्र में की जानी चाहिये। यहां यह ध्यान रखना भी आवश्यक है कि इसे इस तरह आकार दिया जाये कि बच्चों को स्कूल तक पहुंचने के लिये चौथाई मील से अधिक नहीं चलना पड़े। कुल क्षेत्र का दस फीसदी मनोरंजन गतिविधियों के लिये तय होना चाहिये। परिवहन सुविधाओं के लिये चारों ओर गलियां, आंतरिक सड़कें इस तरह हों कि यहां रहने वालों को बेहतर सुविधा मिल सकें। इकाई में बाजार, धर्मस्थल, पुस्तकालय, सामुदायिक केन्द्र होने चाहिये। सामुदायिक केन्द्रों की स्थापना स्कूलों के ही आसपास की जानी चाहिये। (Gallion, 1984).

पेरी ने अच्छे प्रतिवेश के डिजाइन के छह बुनियादी सिद्धान्त बताये हैं। विभिन्न संस्थानों, सामाजिक कार्यों में इन सिद्धान्तों का इस्तेमाल किया गया हैः

- मुख्य मार्ग और इन पर होने वाला यातायात प्रतिवेश के आवासीय क्षेत्र से नहीं गुजरना चाहिये, इसके बजाय इन मार्गों को प्रतिवेश की सीमाओं की तरह काम करना चाहिये अर्थात मुख्य मार्ग प्रतिवेश के बाहर से निकलने चाहिये
- प्रतिवेश के भीतर आंतरिक गलियों का निर्माण किया जाना चाहिये, डिजाइन इस तरह होना चाहिये कि यहां शांत, सुरक्षित और कम मात्रा का यातायात हो, जो आवासीय क्षेत्र के परिवेश को संरक्षित करने में मददगार हों
- प्रतिवेश की आबादी इतनी होनी चाहिये कि वह प्राथमिक स्कूल की स्थापना के लिये आवश्यक संख्या के अनुकूल हो
- प्रतिवेश का केन्द्र बिन्दु प्राथमिक स्कूल होना चाहिये जो प्रतिवेश के बीच स्थित हो, इसके अलावा अन्य सेवा प्रदाता संस्थान भी प्रतिवेश की चहारदीवारी के भीतर होने चाहिये
- प्रतिवेश की त्रिज्या अधिकतम चौथाई मील होनी चाहिये, ताकि प्राथमिक स्कूल में पढ़ने के लिये चारों ओर से आने वाले बच्चे आसानी से चलकर यहां तक पहुंच सकें
- बाजारों की स्थापना प्रतिवेश के किनारों पर की जानी चाहिये, मुख्य सड़कों की क्रॉसिंग वाला स्थान इसके लिये सर्वथा उपयुक्त हो सकता है

प्रतिवेशी इकाइयों में हाईस्कूल और एक या दो बड़े व्यावसायिक केन्द्र होने चाहिये, जो प्रतिवेश के चारों ओर से अधिकतम एक मील त्रिज्या की दूरी पर अवस्थित हों। नियोजन की प्रक्रिया में प्रतिवेश को कई बार परिभाषित किया जाता रहा है। संशोधनों, सुधारों के बावजूद प्रतिवेश का सिद्धान्त किसी नगर के सामाजिक, राजनीतिक और भौतिक संगठन में अहम बना रहता है। यह आबादी की ऐसी इकाई का प्रतिनिधित्व करता है, जिसे शिक्षा, मनोरंजन और अन्य सेवाओं—सुविधाओं की आवश्यकता होती है और इन सुविधाओं के मानकों के हिसाब से ही प्रतिवेश का आकार और डिजाइन तय होता है।

प्रतिवेश की अवधारणा की खासी आलोचना भी हुयी है। कुछ आलोचकों ने यह तर्क दिया है कि प्रतिवेशों की स्थापना लोगों के समूहों की स्थापना करती है, जो आगे चलकर वर्गीय पहचान में बदल जाती है।

कुछ का मानना है कि प्रतिवेश का सिद्धान्त इतना अधिक आदर्शवादी और कल्पनाधारित है कि आधुनिक शहरी जीवन में इसका व्यावहारिक होना संभव नहीं। प्रतिवेश के केन्द्र में स्कूल को रखे जाने की भी यह कहकर आलोचना की गयी है कि यह अव्यावहारिक और सिर्फ बच्चों पर केन्द्रित है, जबकि समुदाय के लिये जरूरी सुविधाओं की असमान अवस्थिति पर ध्यान नहीं दिया गया है जो समुदाय के कई लोगों के लिये बेहद दूर होते हैं। पार्कों और अन्य सार्वजनिक स्थानों की स्थापना में निर्माण और देखभाल–मरम्मत के लिहाज से खर्चीला हो सकता है। आलोचक पेरी के सार्वजनिक मिलन केन्द्र की स्थापना की अवधारणा पर भी सवाल खड़े करते हैं, उनका कहना है कि नगरीय क्षेत्रों में आमतौर पर अलग–अलग तरह के लोग–समुदाय होते हैं, ऐसे में इस तरह के केन्द्र औचित्यपूर्ण नहीं हैं। आलोचक यह भी सवाल उठाते हैं कि शहरी सुविधा और सेवा केन्द्र के तौर प्रतिवेशी इकाई किस तरह आर्थिक क्षमतावान हो सकती है? और यह भी कि प्रतिवेशी क्षेत्रों के स्कूल आकार में इतने छोटे होंगे कि वहां विशिष्ट गतिविधियों का संचालन कर पाना संभव नहीं होगा।

4.7 भारतीय सन्दर्भ में प्रतिवेश (Neighborhood in Indian Context)

पारंपरिक पर्यावरण एवं ग्रामीण व्यवस्थाओं में प्रतिवेशी इकाई की अवधारणा ने संबद्धता, पहचान, स्वीकार्यता की सशक्त भावना को विकसित किया। अधिकतर सामुदायिक सेवाओं और व्यापारिक गतिविधियों की यहां रहने वाले लोगों से समीपता ने सामाजिक संवाद को बढ़ावा दिया। लेकिन, नगरीय सन्दर्भ में देखें तो सामयिक नगरीय पर्यावरण में प्रतिवेशी भावना आम भागीदारी पर आधारित नहीं है। नगरीकरण के प्रभाव के चलते आधुनिकीकरण हुआ और समुदायों की संख्या में भी बढ़ोतरी हुयी साथ ही आंतरिक संयोजन में भी वृद्धि हुयी। इसके चलते प्रतिवेश में स्थानिक समुदाय की गतिशीलता में बढ़ोतरी ने प्रतिवेश को नुकसान पहुंचाया। गतिशीलता और परिवहन सुविधाओं में बढ़ोतरी के चलते प्रतिवेश में रहने वाले लोग नये अवसरों के लिये खुल गये, जिससे प्रतिवेश को मिलने वाले लाभों में कमी देखी गयी। ऐसे में बुनियादी गतिविधियां और निवासरत लोगों के जीवनस्तर में बदलाव ही सामाजिक पर्यावरण के निर्माण के अहम कारक बन गये (Berk, 2005). यह मुद्दा सामाजिक पर्यावरण को मौजूदा भौतिक पर्यावरण से अलग करने का कारण बनता है। स्वतंत्र भारत में विकास नियोजन प्रक्रिया की स्थापना और विस्तार का विचार प्रथम प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने दिया। भारत की पुरानी सामाजिक परंपराओं के चलते प्रतिवेशी इकाई की अवधारणा काफी हद तक भारतीय सन्दर्भ के लिये उपयुक्त रही। चंडीगढ़, भुवनेश्वर, गांधीनगर जैसे प्रतिवेशी इकाइयों की स्थापना में सफलता के बाद यह भारतीय नियोजन का अहम हिस्सा बन गया। नये नगरों और नगरीय विस्तारों की योजना के लिये यह उदाहरण के तौर पर उभरा। इसका बुनियादी सिद्धान्त नये नगरों की स्थापना के साथ संबद्ध प्रतिवेशी इकाई की भी स्थापना का रहा।

सामयिक भारत में महानगर (Metropolis in contemporary india)

नगरीय भारत किस दिशा में जा रहा है? इस सवाल का विश्लेषण करते हुये दीपांकर गुप्ता ने 2011 के जनसांख्यिकीय आंकड़ों का गहन अध्ययन किया है। वह बताते हैं कि ये आंकड़े शहरी विकास, रुझान, तरीकों और विशिष्ट गतिविधियों की जानकारी देते हैं। गुप्ता के अनुसार, 'नगरीकरण के अलावा हमें इस तथ्य पर भी ध्यान देना चाहिये कि भारत की 70 फीसदी शहरी आबादी एक लाख या इससे अधिक आबादी वाले कस्बों में रहती है।' आंकड़े बताते हैं कि वर्ष 2001 में दस लाख से अधिक आबादी वाले शहरों में ही भारत की 68.7 प्रतिशत आबादी रहती थी, लेकिन वर्ष 2011 के आंकड़े स्पष्ट करते हैं कि अब यह प्रतिशतता 42.6 प्रतिशत रह गयी है, जो पिछली जनगणना के मुकाबले 26 प्रतिशत की गिरावट है। यह प्रतिशतता साफ करती है कि शहरी विकास अब कहां हो रहा है और यह भी कि इसकी निरंतरता भी बनी हुयी है।

उदाहरण के लिये दिल्ली भारत का सबसे सघन आबादी वाला महानगर है। यहां रहने वाले लोग बेहद संकुचित स्थान में रहते हैं, लेकिन इसका तात्पर्य यह नहीं है कि दूसरे नगरों में स्थिति इससे बेहतर है। जनसंख्या रिपोर्ट शहरी भारत के कई अव्यवस्थित सत्यों को भी उभारती है। यह स्पष्ट करती है कि नगरीकरण की प्रक्रिया में नगरीय, महानगरीय मूल्यों को प्रोत्साहित नहीं किया गया। गुप्ता बताते हैं, 'भारत के वर्तमान में अतीत का प्रतिबिंब नजर आता है। इसका उदाहरण भारतीय नगरों में लिंगानुपात है। वर्ष 2011 का जनसंख्या आंकड़ा बताता है कि भारतीय नगरों, जिसमें देश की राजधानी दिल्ली भी शामिल है, प्रति एक हजार पुरुषों पर सिर्फ 868 महिलाएं ही हैं।' (Gupta,2012). दूसरी ओर, यह भी तथ्य है कि ग्रामीण आबादी आज भी अधिक है और पिछली जनगणना के मुकाबले 2011 की जनगणना में इसमें वृद्धि भी दर्ज की गयी है। ताजा आंकड़े बताते हैं कि 72.2 प्रतिशत भारतीय आबादी आज भी

6,41,000 गांवों में रह रही है (Bhagat,2012). ऐसे में जब यह सवाल उठता है कि कई ग्रामीण क्षेत्रों में शहरीकरण की होड़ लगी है, तब इसके जवाब में आंकड़ों की हकीकत से यह सवाल उठता है कि ऐसा है तो भारत में आज भी इतनी संख्या में ग्रामीण क्यों हैं?
भावी संभावनाओं को ध्यान में रखते हुए गुप्ता कुछ बुनियादी सवाल उठाते हैं– क्या सभी लोगों का शहर से कस्बों और फिर वहां से गांव तक तेजी से लौट पाना संभव है? लेकिन, असल में ऐसा संभव नहीं है, क्योंकि नगरों से गांवों की ओर पलायन बेहद नगण्य है। 2001 के जनसंख्या आंकड़े बताते हैं कि सिर्फ 8.6 प्रतिशत पुरुषों का अंतर्राज्यीय पलायन दर्ज किया गया, इसमें भी सिर्फ 6.1 प्रतिशत लोग ही शहरों से गांवों की ओर लौटे। यहां ग्रामीण लघु–कुटीर उद्योगों की स्थिति का विश्लेषण भी करना जरूरी है। यह बताता है कि गांवों से गांवों की ओर पुरुषों का पलायन अंतर्राज्यीय (एक से दूसरे राज्य में) और आंतरिकराज्यीय (राज्य के ही भीतर) काफी अधिक है, यह क्रमशः 20.7 प्रतिशत और 41.6 प्रतिशत दर्ज किया गया (desinghkar and ferrington , 2009). दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि पलायन करने वाले का पलायनस्थान हमेशा शहर हो यह आवश्यक नहीं है। इस तरह यह कहा जा सकता है कि भारत महानगर की दिशा से भी कहीं आगे बढ़ रहा है।

4.8 निष्कर्ष (Conclusion)

विश्व बैंक की प्रख्यात अर्थशास्त्री तारा विश्वनाथ और उनकी टीम ने ***"Urbanization beyond Municipal Boundaries: Nurturing Metropolitan Economies and Connecting Peri-Urban Areas in India"*** में पाया कि भारत में अधिकतर विकास महानगरीय क्षेत्रों से बाहर हो रहा है। उनका शोध बताता है कि उपनगरीकरण वैश्विक घटनाक्रम है जो आमतौर पर विकास के मध्यवर्ती चरण में उभरता है। भारत में यह अपेक्षित काल से पहले ही तेजी से उभरा है। विश्वनाथ कहती हैं, 'समयपूर्व उपनगरीकरण सकारात्मक हो सकता है, क्योंकि इससे नीतियों के प्रभाव के अध्ययन और इनमें सुधार की गुंजाइश बनी रहती है। इसके जरिये विकासशील नगरों को पूरा लाभ दिलाने की दिशा में काम किया जा सकता है।'
बीते दो वर्षों से विश्व बैंक की टीम भारत में सरकार, अकादमिक क्षेत्रों से जुड़े विद्वानों के साथ काम कर रही है, जो शहरी विकास में विशेषज्ञता रखते हैं। साथ ही निजी सेक्टर भी इनके साथ जुड़े हैं, जो भूमिसुधार, अवस्थापना विकास, परिवहन सुविधा आदि के विकास में गहरा प्रभाव डालते हैं।
कई अन्य शोधकर्ताओं ने भी इस विषय पर काम किया है। कुमार (2002) ने भारत में महानगरीय प्रक्रिया और शहरी समूहों पर विस्तृत अध्ययन किया है। वह बताते हैं कि भारत में नगरीकरण नगरों से बाहर तेजी से उभर रहा है। वह इसे परिवर्तनकारी घटनाक्रम मानते हैं और बताते हैं कि नगरीकरण की प्रक्रिया में शामिल हो चुके गांवों को शहरी गांव कहा जाना चाहिये। वह इन्हें भारतीय शहरी समूह का ही हिस्सा मानते हैं।

4.9 अभ्यास प्रश्न (Model Questions)

- उपनगर, महानगर, निगम और प्रतिवेश की अवधारणा को विस्तार से समझाएं।
- वैश्विक परिदृश्य में उपनगर, महानगर, निगम और प्रतिवेश की अवधारणा को परस्पर समन्वित करते हुये समझाएं।
- उपनगर, महानगर, प्रतिवेश और निगमों के भारतीय सन्दर्भ में आंतरिक संबंधों को स्पष्ट करें।

4.10 सहायक अध्ययन (Suggested Readings)

- David L. McKee , Yosra A. McKee(2003), "Edge Cities and the Viability of Metropolitan Economies: Contributions to Flexibility and External Linkages by New Urban Service Environments",https://doi.org/10.1111/1536-7150.00059
- Hemakumara, GPTS, & Rainis, Ruslan. (2015). Geo-statistical modeling to evaluate the socio-economic impacts of households in the context of low-lying areas conversion in Colombo metropolitan region-Sri Lanka.
- Hollow ,Matthew(2011).Suburban Ideals on England's Interwar council Estates",Retrieved 2012-12-29
- Rahel Nüssli ,Christian Schmid(2016),Beyond the Urban–Suburban Divide: Urbanization and the Production of the Urban in Zurich North, https://doi.org/10.1111/1468-2427.12390

- Locating the Suburb, Harvard Law Review, Vol. 117, No. 6 (Apr., 2004), pp. 2003-2022, The Harvard Law Review Association
- RongDu(2016),Urban growth: Changes, management, and problems in large cities of Southeast China,Frontiers of artichectual research ,vol.5,issue-3,p.229-300
- *Census of India* 2011 (provisional); R.P. Bhagat, 'Emerging Pattern of Urbanization in India', *Economic and Political Weekly* XLVI, 2011, p. 12.
- Priya Deshingkar and John Farrington (eds.), *Circulation, Migration and Multilocational Livelihood Strategies in Rural India*, Oxford University Press, Delhi, 2009, p. 15.

इकाई- 5
नगरीकरण के सिद्धांत

इकाई की संरचना

5.0 उद्देश्य
5.1 परिचय
5.2 प्रमुख सिद्धांत
5.2.1 पारिस्थितिकीय विशिष्टता
5.2.2 नवीकृत
5.3.3 नेटवर्क
5.3 निष्कर्ष
5.4 अभ्यास प्रश्न
5.5 सहायक अध्ययन

5.0 उद्देश्य

इस अध्ययन के बाद हम इन बातों से परिचित हो सकेंगेः

1. नगरीकरण के कुछ प्रमुख सिद्धांत
2. संबंधित क्षेत्र के कुछ महत्वपूर्ण सैद्धांतिक पहलू

5.2 परिचय

नगरीकरण और शहरीवाद वे दो महत्वपूर्ण केन्द्र हैं, जिन पर शहरी सामाजिक सिद्धांत टिके होते हैं और नगरों के विकास का रास्ता तय करते हैं। नगरों के अध्ययन की जरूरत दो अहम विचारों से सामने आयी है। पहला यह कि शुरुआत में नगरीकरण को न सिर्फ सामंतवादी व्यवस्था के समापन बल्कि तीसरी दुनिया के उद्भव के चलते आर्थिक विकास और सामाजिक परिवर्तन के सूचक () के तौर पर देखा गया। और दूसरा यह कि शहरी अध्ययन सभ्यता से गहराई से जुड़ा हुआ है। यहां नगरीकरण को किसी नगर में रहने वाले लोगों की संस्कृति के तौर पर ही नहीं देखा जाता है, बल्कि सामान्य रूप से यह एक सामाजिक विस्तार है जो मनोदशा में भी अवस्थित होता है। ;ब्ीादकंअंतांत ए **2009**द्ध्ण् यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो स्थित द शिकागो स्कूल ने समाजशास्त्रियों का एक समूह गठित किया था, जिन्होंने शिकागो नगर के अध्ययन पर ध्यान केन्द्रित किया और पाया कि नगर दरअसल एक सामाजिक प्रयोगशाला हैं, जहां मानव की वास्तविक प्रवृत्ति उभरकर सामने आती है एवं अस्तित्व का विकास करती है। रॉबर्ट एजरा पार्क, अर्नेस्ट बर्गीज, लुईस वर्थ शिकागो स्कूल के प्रख्यात शहरी विशेषज्ञ रहे, जिन्होंने शहर के विभिन्न कार्यों, उद्देश्यों, इसकी प्रकृति-प्रवृत्ति को स्पष्ट किया। पुस्तक श्ज्ीम ब्पजलरू ैनहहमेजपवदे वित प्दअमेजपहंजपवद व िभ्नउंद ठमींअपवनत पद जीम न्तइंद म्दअपतवदउमदजश्ए के प्रकाशन के साथ शहरी घटनाक्रमों को समझने की शुरुआत हुई और इसके साथ ही इस विचार को आगे बढ़ाने के लिये विशेष स्कूल की स्थापना की भी जरूरत महसूस की गयी ;क्मंतए2005द्ध्ण् अभूतपूर्व एवं त्वरित रूप से विकसित होते शहर के रूप में शिकागो नगर शिकागो स्कूल के लिये आधुनिक शहरी विकास के पहलुओं को समझने और परीक्षण करने का माध्यम बना। जैसाकि उस वक्त प्रचलित था, शिकागो स्कूल ने समग्र एवं संयुक्त रूप में नगर का आधुनिक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया। स्कूल ने उन शहरी घटनाक्रमों और परिस्थितियों पर अध्ययन किया, जो नगरीय संस्कृति के विकास का जरिया थीं। माइकल डियर ;2002द्ध शिकागो स्कूल के विशेषज्ञों के बारे में लिखते हैं, 'उनका अध्ययन मूलतः शहरी लोगों के आत्मवाद (ैनइरमबजपअपजल) पर आधारित था, जिसमें स्थानीय संस्कृति, अपराध, निर्धनता, जातिवाद भी समाविष्ट किये गये।' स्कूल ने कई विचार दिये जो नगर के समग्र परिदृश्य को स्पष्ट करते थे और जिनकी मदद से शहरी सामाजिक क्षेत्रों तथा शहरी जीवन के तरीकों के विकास व इन्हें समझने के लिये जरूरी अवधारणा की बुनियाद मिली।

रॉबर्ट ई पार्क ने सबसे पहले मानवीय पारिस्थितिकी (भ्नउंद म्बवसवहल) शब्द का इस्तेमाल किया, जिसका तात्पर्य सामाजिक क्षेत्र में जैविक प्रक्रियाओं और अवधारणाओं को लागू करने से

था और इससे यह विचार विकसित हुआ कि शहर और शहरी जीवन दरअसल प्राकृतिक दुनिया की प्रतिस्पर्धा का परिणाम हैं। शिकागो स्कूल ने नगरों के ढांचागत स्वरूप और इस ढांचे में मानव समुदाय के समायोजन (।करनेजउमदज) के अध्ययन पर ध्यान केन्द्रित किया। शहरी समाजशास्त्र की अवधारणा का विकास शिकागो स्कूल में वर्ष 1914 में पार्क के जुड़ने और बर्गीज के साथ उनके संयुक्त कार्यों से हुआ। इन दोनों ने ही नगर के सामाजिक शोध की प्रयोगशाला होने का विचार सबसे पहले दिया था। 20वीं सदी के पहले दशक में हेंडरसन ने नगरों के व्यवस्थित अध्ययन के लिये फंड की व्यवस्था की, जिसके बाद थॉमस ने वर्ष 1908 में यूरोप और अमेरिका में पोलिश किसानों (ज्ीम च्वसपेी च्मंेंदजे) पर अपना शोध कार्य प्रारंभ किया। अमेरिकन जर्नल ऑफ सोशियोलॉजी के 1902 में प्रस्तुत एक जर्नल में कहा गयाः 'शिकागो नगर दुनिया की सबसे संपूर्ण सामाजिक प्रयोगशाालाओं में से एक है। यद्यपि समाजशास्त्र के तत्वों का अध्ययन छोटे समुदायों से भी किया जा सकता है, लेकिन आधुनिक समाज की गंभीर समस्याओं का प्रतिनिधित्व बड़े शहर ही करते हैं और इनका अध्ययन इसलिये अत्यावश्यक है कि बहुत बड़ी आबादी हर रोज इन समस्याओं से जूझती है। मौजूदा दौर में दुनिया का कोई शहर सामाजिक समस्याओं को उतना परिलक्षित नहीं करता, जितना कि शिकागो नगर।'

समाजशास्त्र को विज्ञान के स्वरूप में स्थापित करने के लिये शोधकर्ताओं, शिक्षकों ने अनुभव आधारित शोध पर ध्यान केन्द्रित किया, जिसमें उन्होंने मात्रात्मक (फनंदजपजंजपअम) और गुणवत्तात्मक (फनंसपजंजपअम) तरीकों का इस्तेमाल किया। पार्क ने बिल्कुल नया सैद्धांतिक मॉडल पेश किया, जिसमें उन्होंने अपने अनुभवों के आधार पर बताया कि नगर सिर्फ भौगोलिक परिस्थितियों तक ही सीमित नहीं है, बल्कि मानवीय पारिस्थितिकी की मूल अवधारणा प्रकृति विज्ञान पर आधारित हैं। प्रतिस्पर्धा और विभाजन प्राकृतिक क्षेत्रों के अद्वितीय, भिन्न एवं सीमांकित गठन का आधार बनते हैं। 'शहर, दरअसल छोटी-छोटी दुनियाओं का एक समूह है, जो एक-दूसरे को छूते जरूर हैं, लेकिन एक-दूसरे में समाहित नहीं होते।' ;च्ंताए 1977द्धण् शहरों के विकास को लेकर बर्गीज ने सघन क्षेत्र सिद्धांत (ब्वदबमदजतपब वदम ज्ीमवतल) पेश किया। इसमें उन्होंने सेंट्रल बिजनेस डिस्ट्रिक्ट (ब्ठक्) की अवधारणा दी, जिसके चारों ओर उन्होंने कामकाजी लोगों के आवास, आवासीय क्षेत्र, परिवर्तनशील क्षेत्र आदि के अवस्थित होने का मॉडल दिया। रॉड्रिक मॅकेंजी ने बाद में महानगरीय समुदायों का अध्ययन करते हुए मानव पारिस्थितिकी के बुनियादी सिद्धांत को और आगे बढ़ाया। शिकागो स्कूल का शोध एवं प्रकाशन कार्यक्रम का जिम्मा स्थानीय समुदाय शोध समिति, शिक्षकों व समाजशास्त्र, राजनीति विज्ञान (चार्ल्स मरियम) व मानवविज्ञान (रॉबर्ट रेडफील्ड) विषय के छात्रों के समूह पर था। लॉरा स्पेलमैन रॉकफेलर मेमोरियल ने वर्ष 1924 से 1934 तक शिकागो स्कूल को छह लाख डॉलर से अधिक की मदद दी। इस दौरान बर्गीज एवं पार्क के मार्गदर्शन में स्कूल के छात्रों ने स्थानीय सामुदायिक क्षेत्रों की मैपिंग के अलावा वहां नगर में बाल अपराध, पारिवारिक अव्यवस्थाओं, सांस्कृतिक जीवन आदि पहलुओं पर शोध किये। इन शोध कार्यक्रमों ने अध्ययन के विविध

पहलुओं को विभिन्न शहरी संस्थानों (होटल, डांस हॉल आदि), सामाजिक अव्यवस्थाओं (बाल अपराध, आवासहीन लोग आदि) और प्राकृतिक क्षेत्रों पर व्यवस्थित तरीके से केन्द्रित किया। शिकागो स्कूल के कुछ उल्लेखनीय अध्ययनों में फ्रेडरिक थ्रेशर, ज्ीम ळंदह ;1926द्ध लुईस वर्थ, ज्ीम ळीमजजव ;1928द्ध हार्वे डब्ल्यू जोरबॉ, ज्ीम ळवसक ब्वेंज ंदक जीम ैसनउ ;1929द्ध क्लिफोर्ड एस शॉ, ज्ीम श्रंबातवससमत ;1930द्ध ई फ्रैंकलिन फ्रेजर, ज्ीम छमहतव थ्ंउपसल पद ब्ीपबंहव ;1932द्ध पॉल जी क्रेसी, ज्ीम ज्ंगप क्ंदबम भ्ंसस ;1932द्ध वॉल्टर सी रेकल्स, टपबम पद ब्ीपबंहव ;1933द्ध शामिल हैं।

जानने योग्य तथ्य

20वीं सदी के प्रारंभिक आधे समय तक **शिकागो स्कूल समाजशास्त्र एवं शहरी समाजशास्त्र के क्षेत्र में अगुआ रहा। 1950 तक दो सौ छात्र यहां से शोधकार्य कर चुके थे। इनमें से अधिकतर ने देशभर में समाजशास्त्र के अध्ययन को विस्तार दिया। अमेरिकन सोशियोलॉजिकल एसोसिएशन के आधे से अधिक अध्यक्ष भी शिकागो के छात्र अथवा शिक्षक रह चुके थे। 1895 में बेहद छोटे स्वरूप में प्रारंभ हुआ द अमेरिकन जर्नल ऑफ सोशियोलॉजी 1906 से 1935 तक द अमेरिकन सोशियोलॉजिकल एसोसिएशन का आधिकारिक जर्नल रहा। शिकागो स्कूल के एकाधिकार एवं प्रभुत्व ने 1935 के वार्षिक सम्मेलन में विरोध के स्वरों को मुखर किया, जिसका परिणाम एक नये जर्नल द अमेरिकन सोशियोलॉजिकल रिव्यू के तौर पर सामने आया। इसके बाद से शिकागो के प्रभुत्व में उतार आता गया।**

अपमानको वाले थे और यहां शरणार्थी आबादी की बहुतायत थी, लेकिन शिकागो स्कूल के सघन क्षेत्र मॉडल में इन बिंदुओं को शामिल नहीं किया गया था। बर्गीज का सघन क्षेत्र मॉडल भी जल्द ही बहुल केन्द्र, विकेन्द्रीकरण के मॉडलों से पुनर्स्थापित किया गया। अब भी शहरी पारिस्थितिकी (न्तइंद म्बवसवहल) का मॉडल शहरी समाजशास्त्रियों के मध्य सबसे अधिक प्रचलित है।

हालिया शोधकार्यों में लैंगिक समानता के मसले पर ध्यान केन्द्रित किया गया है, जिसमें शिकागो स्कूल में भी महिलाओं की भूमिका को उभारा गया है। डीगेन (1986) का तर्क है कि शिकागो स्कूल में पार्क और अन्य पुरुष शिक्षकों ने महिलाओं के योगदान को हाशिये पर रखा। जेन एडम्स ने हल हाउस (भ्नसस भ्वनेम) में प्रारंभिक समुदायों का अध्ययन किया। एडिथ एबॉट विभाग में अल्पकालिक निरीक्षक रहे, इसी तरह एडमस को भी अल्पकालिक पद दिया गया था। शिकागो के कई शिक्षक हल हाउस और अन्य सामाजिक सुधार आंदोलनों में सहभागी बने। ग्राहम टेलर विभाग के प्रारंभिक सदस्यों में से एक थे। बर्गीज ने भी बाद में पाया कि शिकागो स्कूल में व्यवस्थित शोधकार्य वर्ष 1908 में एबॉट और सोफोंसिया ब्रेकरिंज द्वारा हल हाउस अध्ययन से प्रारंभ हुआ। यद्यपि अधिकतर शोध छात्रों ने अपने शोध में सहायता के मकसद से स्वयं को सामाजिक सुधार कार्यक्रमों से इतर दिखाने का प्रयास किया, जिसकी वजह यह भी थी कि सामाजिक कार्यों का यह उभरता क्षेत्र शिकागो स्कूल के प्रारंभिक अध्ययनों के प्रति उनकी अनिच्छा को भी जाहिर कर सकता था।

शिकागो स्कूल से हुई इस शुरुआत का असर आगे चलकर सेंट क्लेयर ड्रेक और होरास केटन के ठसंबा डमजतवचवसपे ;1945द्ध एवं मॉरिस जेनोविज के निर्देशन में वर्ष 1970 में विभिन्न समुदायों के अध्ययनों में साफ नजर आता है। 1980-85 में विलियम जूलियस विल्सन के प्रतिवेशों में निर्धनता पर किये शोधकार्यों ने एक बार फिर बेहद बेहतर तरीके से नगरों को सामाजिक प्रयोशाला के रूप में स्थापित किया। उन्होंने शिकागो स्कूल में शोध छात्रों के लिये सतत प्रशिक्षण कार्यक्रम प्रारंभ किया, लेकिन इसका उद्देश्य पूर्ण होने से पहले ही वह हार्वर्ड चले गये। हालांकि, इसके बाद भ द शिकागो स्कूल ऑफ अर्बन सोशियोलॉजी का प्रभाव बना रहा। शहरी समाजशास्त्र के अलावा पारंपरिक अध्ययन, अपराध आदि क्षेत्रों में भी शिकागो स्कूल ने बेहतरीन काम किया है। शिकागो स्कूल ऑफ अर्बन सोशियोलॉजी में सामान्यतः जीएच मीड (1930) एवं डब्ल्यू लॉयड वार्नर (1940) का नाम उभरकर नहीं आता, लेकिन दोनों इस विभाग में महत्वपूर्ण स्थान रखते थे। लुईस वर्थ बताते हैं कि शिकागो स्कूल ने विभिन्न सैद्धांतिक मॉडलों को एकीकृत कर व्यक्तिगत दस्तावेजों से लेकर मानवजाति विज्ञान तक की विस्तृत शृंखला तक विस्तृत विश्लेषण किया है। पार्क मानते हैं कि थॉमस के कार्यों ने विभाग की बुनियाद रखी, लेकिन वही नहीं जानते थे कि वह एक स्कूल या मत का निर्माण कर रहे हैं। शहरी भूगोल पर हाल में हुए शोधकार्य बताते हैं कि शिकागो स्कूल बीसवीं सदी में शहरी सिद्धांतों की बुनियाद था तो लॉस एंजेलिस शहरी सिद्धांतों का भविष्य है। यहां उल्लेखनीय है कि लॉस एंजेलिस स्कूल (शिकागो स्कूल के एकाधिकार के विरोध में 1980 में शुरू हुए शोध कार्यक्रमों का प्रतीक नाम) ने शहरी समाजशास्त्र के बजाय समग्र शहरी अध्ययन पर व्यापक रूप से ध्यान केन्द्रित किया है।

5.2 प्रमुख सिद्धांत (प्उचवतजंदज ज्ीमवतपमे)

1- शहरी घटनाक्रमों और शहरी जीवन को स्पष्ट तौर पर समझने-जानने के लिये नगरीकरण की प्रक्रिया ने शोधकर्ताओं का ध्यानाकर्षित किया। विभिन्न काल-परिस्थितियों में इसे स्पष्ट करने के लिये कई शोध हुए हैं। इन शोधकार्यों में विश्लेषण के जरिये शहरी घटनाक्रमों के कुछ सिद्धांत स्पष्ट हुए।

5.2.1 पारिस्थितिकीय विशिष्टता

बीसवीं सदी के पहले चरण में समाजशास्त्र विभाग के प्रारंभिक शैक्षिक विभाग स्थापित हो चुके थे। शिकागो विश्वविद्यालय के नये वैचारिक स्कूल की स्थापना समाजशास्त्रियों के छोटे समूह द्वारा की गयी थी। पारिस्थितिकीय विशेषज्ञों ने नैतिक आधार नगरों के स्वरूप के निर्धारण के प्रयासों और तरीकों का विरोध किया। पारिस्थितिकीय विशेषज्ञों ने प्रारंभ में शहरी पर्यावरण एवं वस्तुनिष्ठता के दृष्टिकोण से तथ्यों का अध्ययन पर ध्यान केन्द्रित किया। इस दृष्टिकोण के विकास को लेकर पार्क अपने छात्रों को कहते थे कि यह अनुभवहीन और मार्गदर्शनहीन प्रयास है, वह इसके लिये अकसर अंग्रेजी कहावत ष्ेमंजे व िजीमपत चंदजे कपतजलष् का इस्तेमाल करते थे। दूसरी ओर, वेबर, मार्क्स

और सिमेल जैसे यूरोपीय विचारकों ने तर्क दिया कि नगर एक ऐसा पर्यावरण है, जहां पूंजीवादी व्यवस्था की प्रभुत्ववादी ताकत मानव जीवन के हर पहलू को प्रभावित करती है। शिकागो स्कूल ने पंूंजीवाद पर अध्ययन से किनारा कर लिया, लेकिन जैविक आधार पर शहरी जीवन की अवधारणा का प्रयास किया। शहरी समाजशास्त्र में पारिस्थितिकीय दृष्टिकोण का विकास शिकागो विचार स्कूल (ब्ीपबंहव ैबीववस व िज्ीवनहीजे) में हुआ, जहां भौतिक और भौगोलिक कारकों को सामाजिक जीवन एवं मानव व्यवहार को प्रभावित करने वाला माना गया। यहां विद्वानों ने नगरीकरण को निम्नवत व्याख्यायित किया हैः

2- रॉबर्ट पार्क (त्वइमतज च्ंता)

3- पार्क मानते थे कि एक-दूसरे पर हमारी आर्थिक निर्भरता व्यक्तिगत संबंधों से अधिक महत्वपूर्ण है। उन्होंने नगर के पारिस्थितिकीय सिद्धांत का सामान्य ढांचा पेश किया। पार्क की शुरुआत एक पत्रकार के रूप में हुई, जहां उन्होंने भ्रष्टाचार, शरणार्थी समुदाय, अपराध आदि शहरी मुद्दों को करीब से देखा, लेकिन सवालों के जवाब तलाशने की उनकी रुचि उन्हें वापस विश्वविद्यालय ले आयी। उन्होंने हार्वर्ड से दर्शनशास्त्र की पढ़ाई की, बर्लिन में सिमेल के सहपाठी रहते हुए सामाजिक विचार का अध्ययन पूरा किया और फिर हीडलबर्ग से पीएचडी किया। **1913** से उन्होंने शिकागो विश्वविद्यालय में अध्यापन प्रारंभ किया। समाजशास्त्र में रॉबर्ट पार्क का सबसे महत्वपूर्ण योगदान मानवीय पारिस्थितिकी (भ्नउंद म्बवसवहल) रहा, जिसने डार्विन के प्रकृति के जीवनचक्र सिद्धांत को मानवीय सामाजिक व्यवस्था से जोड़ दिया। पार्क ने पाया कि पौधों और जन्तुओं के संबंधों में कई ऐसे गुण हैं, जिन्हें सामुदायिक संबंधों पर आसानी से लागू किया जा सकता है। पार्क किसी समुदाय के तीन आवश्यक गुण बताते हैं। **1.** वह आबादी जो विशेष सीमाओं में व्यवस्थित है और जिसकी जड़ें संबंधित क्षेत्र में गहरी हैं, **2.** व्यक्ति (प्दकपअपकनंस) की इकाइयां इसमें सहजीविता (ैलउइपवजपब) अंतर्निर्भरता को पोषित करती हैं। **3.** समुदाय की स्पर्धा संख्या को नियंत्रित करती है और प्रतिस्पर्धियों के बीच संतुलन बनाये रखती है।

4- पार्क मानते हैं कि समाज पारिस्थितिकीय स्तरों के अलावा भी कई बातों से विकसित होता है। इसके लिये वह आर्थिक, राजनीतिक, नैतिक क्रमों को सामने रखते हैं, जिन्हें पदानुक्रम (भ्पमतंतबीपबंस) में पिरामिड स्वरूप में व्यवस्थित किया गया हो। यहां पारिस्थितिकीय क्रम बुनियाद का काम करता है, जबकि नैतिक क्रम सर्वोच्च स्तर पर होता है। वह तर्क देते हैं कि समाज को बांधे रखने वाले बंधन रूढ़ियां और नैतिकता के बजाय भौतिक एवं जीवनप्रद होते हैं। शिकागो के समाजशास्त्रियों ने शहर के विश्लेषण के लिये पारिस्थितिकीय अवधारणा का प्रयोग किया। इसी अवधि में कई पशु पारिस्थितिकी विशेषज्ञ बदली हुई सघन परिस्थितियों में चूहों के व्यवहार पर शोध कर रहे थे। अधिक सघनता के चलते नवजात चूहों के प्रति वयस्कों की अनदेखी, हिंसात्मक

व्यवहार और कई अन्य तरह के बदलाव सामने आये। इन शोधकर्ताओं ने बताया कि मानवीय पारिस्थितिकीय विशेषज्ञों ने मानव व्यवहार पर भौतिक परिस्थितियों के असर का अध्ययन करने का प्रयास किया और मनुष्यों ने पशुओं से बिल्कुल अलग तरीके से व्यवहार किया।

5- मानव पारिस्थितिकी समाजशास्त्र की एक शाखा हैै जो मानव समुदाय और इसके पर्यावरण के संबंधों का अध्ययन करती है। पार्क ने पारिस्थितिकी को उपयोगी दृष्टिकोण माना, क्योंकि नगरों में मानव एक क्षेत्रविशेष में अलग-अलग परिस्थितियों के अनुरूप रहते हैं। पार्क ने तर्क दिया कि नगर पारिस्थितिकीय समुदाय का रचनात्मक तत्व है, जिसके गुण अनजाने (न्दबवदेबपवनेदमेे) में तभी विकसित हो गये थे, जब मनुष्य अस्तित्व के लिये जैविक संघर्ष की प्रक्रिया से गुजर रहा था। इस क्षमता ने मनुष्य को क्रियात्मक रूप से स्वयं और पर्यावरण के अनुकूल बनने योग्य बनाया। इन प्रक्रियाओं की व्याख्या मानव पारिस्थितिकी के जरिये ही संभव है। पार्क मानते हैं कि नगर में प्राकृतिक वास या उत्पत्तिस्थल निहित हैं, जो स्वयं के नियमों का पालन करते हैं और इनमें किसी तरह के बदलाव की गुंजाइश उसी सीमा तक है, जहां तक संभव हो। इसे दूसरे शब्दों में कहें तो समुदाय विभिन्न परिस्थितियों के लिये तयशुदा निश्चित दृष्टिकोण का ही अनुसरण करते हैं। इस तरह मानव पारिस्थितिकी का अर्थ मानव समूह के पर्यावरण में व्यवस्थित होने की प्रक्रिया और विभिन्न समूहों के अंतर्संबंधों का अध्ययन करने से है। ‘समान पंखों वाली चिड़िया एक झुंड में रहती हैं‘ यह तर्क यद्यपि मनुष्यों पर पूरी तरह लागू नहीं होता, फिर भी ऐसा देखा जाता है। किसी क्षेत्रविशेष में सजातीय सामाजिक संगठन पाये जाते हैं। अंतर सिर्फ यह होता है कि मनुष्य तकनीकी साधनों के इस्तेमाल से पर्यावरण से जूझता है।

6- पार्क ने इस विचार को पूर्ण सहमति दी कि आर्थिक प्रतिस्पर्धा अस्तित्व के संघर्ष का अहम पहलू है ;ब्ींतसमे क्तूपद व्द जीम व्तपहपद व िैचमबपमेए **1859**द्धण् पार्क ने नगर को एक सामाजिक व्यवस्था के रूप में रेखांकित किया, जहां विभिन्न समूह आंतरिक प्रक्रियाओं के बूते एक-दूसरे से संबद्ध हैं। शहरी जीवन अव्यवस्थित एवं अक्रियाशील नहीं था, बल्कि इसका झुकाव अपनी आबादी और संस्थानों का क्रमानुसार समूह बनाने की ओर था। पार्क के अनुसार शहरी जीवन दो विभिन्न स्तरों पर व्यवस्थित था, **1.** जैविक (ठपवजपब) और **2.** सांस्कृतिक (ब्नसजनतंस)। वह बताते हैं कि जैविक या निर्धारित समुदायों का आधार प्रतिस्पर्धा होता है, जबकि सांस्कृतिक समुदाय संचार और समान विचार पर आधारित होते हैं। पार्क का तर्क है कि ये दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। वास्तव में इन दोनों के बीच बड़ा जटिल संबंध है। जैविक स्तर पर प्रतिस्पर्धा है, लेकिन समाज में समझौतों, सामूहिकता, नियमों के चलते यह प्रतिबंधित है।

7- वॉल्टर फायरी ने भावनाओं (ैमदजपउमदजे) एवं प्रतीकवाद (ैलउइवसपेउ) को पारिस्थितिकीय मानक माना है। इसके आधार पर पारिस्थितिकीय सिद्धांत दो चीजों,

स्थान के गुण और अवस्थिति (स्वबंजपवद) में गतिविधियों की प्रकृति पर निर्भर करता है। यह इसका अनुसरण करता हैः

13. स्थान और स्थानिक गतिविधियों का एकमात्र संबंध खर्चीला एवं लागत थोपने की प्रकृति वाला होता है

14. स्थानिक गतिविविधियां राजकोषीय कारकों को कम खर्चीला बनाने का प्रयास करती हैं

लुईस वर्थ

लुईस का मत है कि नगरीकरण जीवन जीने का तरीका है। उन्होंने शहरी और ग्रामीण परिवेश में अंतर के विषय में जॉर्ज सिमेल के समान ही मत रखा है। वर्थ तर्क देते हैं कि घुमंतू सभ्यता से सामयिक सभ्यता की ओर और सर्वाधिक प्रभावी ग्रामीण समाज से सर्वाधिक प्रभावी शहरी समाज की ओर परिवर्तन की वजह कृषि से औद्योगीकरण की ओर परिवर्तन है। औद्योगिकीकृत समाज की ओर इस गतिशीलता ने ही सामाजिक जीवन को नाटकीय रूप से परिवर्तित किया है। वह कहते हैं, ‘शहरों का विकास और दुनिया का नगरीकरण आधुनिक दौर के सबसे प्रभावी तथ्यों में से एक है। इस प्रक्रिया ने जीवन के तरीकों, इन परिवर्तनों के अध्ययन और नगरीकरण की प्रक्रिया को नया आकार दिया है।‘ यद्यपि विभिन्न विद्वानों ने नगर को निर्धारित परिभाषा देने का प्रयास किया है, लेकिन वर्थ ने शहरी जीवन के सामाजिक गुणों को समझने के लिये समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण को अपनाने पर जोर दिया। वह मानते हैं कि सघनता, अवस्थिति के मात्रात्मक विश्लेषण के बजाय शहरी लोगों के जीवन में आने वाले बदलाव, परिवर्तन की प्रक्रिया जैसे गुणों का अध्ययन शहरी सामाजिक व्यवस्था को आसानी से समझा सकता है। मात्रात्मक रूप से अकेले शोधकर्ता के लिये सामान्यतः सघन आबादी वाले क्षेत्रों और और बड़ी सदस्यता वाले समुदायों की सामाजिक गतिविधियों को सामान्यीकृत करना मुश्किल होता है। समाजशास्त्रियों के बीच एक सामान्य मतैक्य है कि शहरों में औद्योगीकरण की प्रक्रिया ओर अमेरिका के कदम बढ़ने के बाद जो परिवेश उत्पन्न हुआ, वही नगरीकरण है। वर्थ के परीक्षणों के अनुसार, ‘नगर पारिवारिक इकाइयों के बजाय एकल अभिभावकों, अल्पसंख्यक समुदायों को अधिक संख्या में आकर्षित करते हैं, जो अपने घर लेने के बजाय किराये पर रहना पसंद करते है। ऐसे में शहरी परिवेश को और संयोजित बनाने की दिशा में यह समाधान अपनाया जा सकता है कि घर खरीदने की संभावनाओं और अवसरों को अधिक बढ़ाया जाये। खुद की जिम्मेदारी पर घर देना यानी ष्त्मदज.जव.वूदष् कार्यक्रम इसका विकल्प हो सकता है। इससे लोगों को जोड़ने के लिये शहरों में किराये पर रहने वालों को प्रेरित करना चाहिये और आवास पर स्वामित्व रखने वालों को टैक्स में छूट जैसे प्रोत्साहन दिये जाने चाहिये। एक अन्य समाधान यह भी है कि समुदायों के भीतर ही रोजगार के अवसर सुनिश्चित किये जायें, ताकि घर और रोजगार के क्षेत्र अलग-अलग न हों। ऐसा होने से सामुदायिक एवं एकजुटता का भाव विकसित होगा।‘

5.2.2 नव विशिष्ट

नगर आकार सिद्धांत और विशिष्ट सिद्धांत में सामने आयी कमियों को जिन सिद्धांतों ने दूर किया है, उन्हें सामान्यतः दो अलग अवधारणात्मक उदाहरणों में श्रेणीबद्ध किया जा सकता है। ये निम्न हैंः

1. वे शहर जिन्हें क्रिस्टेलर मॉडल के तर्कों पर व्याख्यायित किया गया है
2. नेटवर्क सिटी

नवविशिष्ट एवं क्रिस्टेलर मॉडल पर किसी शहर की व्याख्या पूर्ववर्ती विशिष्ट उदाहरणों (ब्सं्ेपबंस च्तंकपहउ) की कमियां दूर करने का साधन बनीं। पहला उदाहृण नगर आकार सिद्धांत की कमियों को दूर करता है। इसे इस तरह समझा जा सकता हैः

1. शहरी आकार का अर्थ ऐसी अवस्था से है, जहां उत्पादन लाभ एवं अवस्थिति मूल्य के बीच संतुलन की स्थिति बनी रहे
2. सभी नगर समान नहीं होते, लेकिन वे अपने आकार के अनुरूप विभिन्न सामानों का उत्पादन करते हैं

इस दृष्टिकोण के माध्यम से शहरी अवस्थिति सिद्धांत (न्तइंद स्वबंजपवद ज्ीमवतल) में सुधार आया और नव शहरी आर्थिकी को समझना आसान हो सका। वॉन थुनेन और अलोंसो मूथ के कार्यों को विस्तार देकर और इनमें संशोधन से यह भी स्पष्ट हुआ कि उत्पादन लाभ और अवस्थिति मूल्य के बीच संतुलन की अवस्था 'अंतर शहरी संतुलन' संभव है। उन्होंने दावा किया था कि विकेन्द्रीकरण से किराये में मामूली गिरावट को यात्रा खर्च में मामूली बढ़ोतरी से पूरा करना संभव है। इस मॉडल का निष्कर्ष यह बताता है कि सभी संभावित अवस्थितियों में सर्वश्रेष्ठ का चयन किस तरह किया जा सकता है ;जीम ंिउवने ष्डनजी बवदकपजपवदष्द्धए यानी केन्द्र तक कम पहुंच का लाभ कम किराये और उच्चतर पर्यावरणीय गुणवत्ता के तौर पर मिलता है। उदाहरण के लिये, यदि हम दिल्ली के किसी हाईप्रोफाइल एरिया में किराये पर रहना चाहते हैं तो हमारे पास इसके लिये बड़ा बजट होना जरिये है और यह क्षेत्र लोगों की अधिक आबादी के कारण काफी सघन भी होगा। यही स्थिति अंतर शहरी संतुलन पर भी लागू होती है। यदि किसी शहर में किराया अधिक हो और वहां लाभ की संभावनायें इसके मुकाबले कम हों तो वहां न तो लोग ही रहना पसंद करेंगे, न ही उद्यम। ऐसे में बाजार की शक्तियां शहर के आकार को उपयोगिता के उच्चतम स्तर पर ले जाती हैं, जिससे वहां रहने वाले लोगों और वहां के उद्यमियों को लाभ मिले। यही नव शहरी आर्थिकी का दृष्टिकोण है। समान उत्पादन प्रक्रियाएं अपरिहार्य रूप से एकसमान आकार के शहरों को विकसित करती हैं ;ब्ंउंहदपए 1992द्धण् हेंडरसन (1985) के अनुसार इस प्रत्यक्ष विरोधाभास से निपटने के लिये या तो हर शहर में अलग-अलग उत्पादन को बढ़ावा देने की अवधारणा पर काम करना होगा (यानी हर शहर के लिये एक निश्चित उत्पादन) या फिर क्रिस्टेलर मॉडल के उपयोग से नवविशिष्ट तर्क का इस्तेमाल करना होगा। यह मॉडल बताता है कि शहरी पदानुक्रम के अनुरूप शहरी तंत्र स्वयं कुछ ही अनुक्रमों के इर्द-गिर्द व्यवस्थित होता है। हर उच्च क्रम अपने पद के अनुरूप ही वस्तुओं, सेवाओं का उत्पादन करता है, लेकिन वहां अपने से नीचे के क्रम के भी उत्पादन मिलते हैं। ऐसे में शहर

को कार्य के अनुरूप विशिष्टता दिये जाने पर बल दिया जाता है। क्रिस्टेलर मॉडल पर नव विशिष्ट तर्क को लागू करने पर पदानुक्रम आधारित शहरी व्यवस्था परिभाषित होती है, जिसमें नगरों के आकार के अंतर को वहां उपलब्ध लाभ और उच्च शहरी किराये से देखा जा सकता है।

हालिया शोधों में शहरी पदानुक्रम व्यवस्था को नव आर्थिक भूगोल दृष्टिकोण से विश्लेषित किया गया है। विशुद्ध रूप से आर्थिक परिस्थितियों को लागू करने पर पता चलता है कि शहरी व्यवस्था का पदानुक्रम विकास परिवहन लागत, उत्पादन की विविधता, प्रतिस्पर्धा, वित्तीय व्यवस्था, अवस्थिति आदि के संतुलन से हुआ है। इस तर्क के अनुसार छोटे शहर यानी जहां आर्थिक रूप से कम संसाधन उपलब्ध हैं, या वे शहर जो भौगोलिक रूप से गौण हैं यानी जहां उत्पादन कम और जीवनमूल्य कहीं अधिक है, भी छोटे बाजारी क्षेत्रों को विकसित कर सकते हैं, जिनमें परिवहन की लागत कम हो और जहां अवस्थिति के अनुरूप लाभ लिया जा सके। ये मॉडल बताते हैं कि किस तरह क्रिस्टेलर के तर्क पर आधारित पदानुक्रम आर्थिक विकास के लिये प्राकृतिक हो सकते हैं साथ ही यह भी समझाते हैं कि किस तरह उत्पाद को पूरी क्षमता के साथ बेच पाना संभव हो सकता है। इस तरह ये स्पष्ट करते हैं कि भले ही नगरों का आकार समान हो, लेकिन वहां अलग-अलग तरह की आर्थिक गतिविधियां संभव हैं।

नेटवर्क सिटी (छमजूवता ब्पजल)

नेटवर्क सिटी हालिया शोधकार्यों से उभरा उदाहरण है, यह नगर आकार सिद्धांत के अलावा नव विशिष्ट, क्रिस्टेलर दृष्टिकोण की कमियों का समाधान बताता है। इस उदाहरण का सबसे अहम पहलू यह है कि इसकी मदद से क्रिस्टेलर के तर्क पर आधारित शहरी आकार और शहरी क्रियाओं के जुड़ाव को तोड़कर देखा जा सकता है। क्रिस्टेलर के दृष्टिकोण से यह समझाना मुश्किल है कि महज तीन लाख आबादी वाला शहर ज्यूरिख कैसे टोक्यो और न्यूयॉर्क जैसे बड़े शहरों के ही समान अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का विशिष्ट हिस्सा बन गया है? दरअसल, वास्तविक दुनिया में यह जरूरी नहीं कि शहर का आकार उसके कार्यों को विशिष्टता प्रदान करे। शहरी आकार और शहरी क्रियाओं के अंतर को स्पष्ट करना ही ैव्न्क्ल् ;ैनचचसल व्तपमदजमक क्लदंउपब ।चचतवंबीद्ध मॉडल का महत्वपूर्ण गुण है ;बंउंहदप मज ंसण्ए 1986द्धए यह बताता है कि नगरों के आकार का अंतर हर नगर के पदानुक्रम के लिये अलग होता है और यह उसके विशेष आर्थिक गतिविधियों से जुड़ा होता है। यह मॉडल निम्न अवधारणा पर आधारित हैः

उच्च क्रम की आर्थिक गतिविधियों को नगर में अस्तित्वमान करने के लिये उच्च संभावनाओं की आवश्यकता होती है (शहरी आबादी के संदर्भ में) ताकि उत्पादन को क्षमतापूर्ण परिस्थितियों में किया जा सके, जैसा कि क्रिस्टेलर के मॉडल में भी बताया गया था।

उप सांस्कृतिक सिद्धांत

इस सिद्धांत का वर्णन लुईस वर्थ ने 1938 के अपने निबंध इसमें लुईस ने सामाजिक विघटन एवं व्यक्ति के हस्तांतरण को नगरीकरण का वजह बताया है। हालांकि, हर्बर्ट गेन ने अपने

शोधपत्र। गेन्स और अन्य मानते हैं कि किसी विशेष सामाजिक प्रभाव को नगरीकरण का जिम्मेदार नहीं माना जा सकता है। वह कहते हैं कि इससे दोनों ही स्थितियों के लिये समस्या खड़ी हो जाती है और तीसरे विकल्प की जरूरत महसूस होती है। यहां यह ध्यान रखना जरूरी है कि जो सवाल इस शोधपत्र से संबंध रखता है, वह विश्लेषणात्मक है। यह सघन आबादी के व्यक्ति पर पड़ने वाले प्रभावों पर ध्यान केन्द्रित करने के साथ इन सवालों का जवाब तलाशता हैः नगरीकरण में अलग समुदायों के बीच रहने और सघन आबादी से व्यक्ति पर सांस्कृतिक और व्यावहारिक रूप से क्या परिवर्तन सामने आते हैं? जवाब में यह बात सामने आती है कि आबादी में संयोजित छोटे और बड़े समुदायों के बीच स्पष्ट अंतर होते हैं, जो आयु, परंपराओं, शैक्षिक स्तर, उनमें रहने वाले लोगों आदि के आधार पर अलग-अलग हो सकते हैं। आर्थिक अवसर और राजनीतिक ढांचा भी इस तरह के अंतरों को विकसित करने के लिये कुछ हद तक जिम्मेदार है। यहां यह भी स्पष्ट होता है कि सांस्कृतिक एवं व्यावहारिक दृष्टिकोण को विभिन्न स्तरों पर परीक्षण करने की जरूरत होती है। इसके कारणों पर विचार करते हुए नगरीकरण अधिक प्रभावी नजर नहीं आता है (वर्ग, जाति, लिंग आदि कारकों की तुलना में)। हालांकि, यदि प्राथमिक कारण नहीं होने के बावजूद नगरीकरण इस तरह की घटनाओं के लिये स्वायत्त कारण के तौर पर सामने आता है तो यह नगरीकरण की प्रकृति को समझने के लिये महत्वपूर्ण तथ्य हो सकता है। इससे इस सवाल का जवाब भी मिल सकेगा- नगरीकरण के सामाजिक प्रभाव क्या हैं?

1. प्रस्थापना
2. शहरी स्थारनों की बढ़ती संख्या के साथ उप सांस्कृतिक विविधताओं की भी संख्या बढ़ती है
3. आबादी की सघनता अलग-अलग उप संस्कृतियों को जन्म देती है
4. आबादी का आकार ढांचागत विभेद को गतिशील सघनता) की प्रक्रिया के जरिये बढ़ावा देता है
5. प्रतिस्पर्धा, तुलनात्मक लाभ और संबद्ध चयन जैसे बल विशिष्ट आंतरिक उपव्यवस्थाओं को बढ़ावा देते हैं, जो अलग-अलग व्यवस्थाओं से जुड़े होने के कारण संस्कृतियों को अलग करते हैं। परिणामस्वरूप विभिन्न सामाजिक वर्गों में व्यवसाय, समान रुचियों वाले समूह, जीवनस्तर आदि के आधार पर उपसंस्कृतियां भी उभरती हैं। नगरीकरण एवं सांस्कृतिक विभेद का यह संबंध ऐतिहासिक और सामयिक दोनों व्यवस्थाओं के अध्ययन में सामने आया है। अधिकतर मामलों में आर्थिक विशेषीकरण इसकी सबसे बड़ी वजह पायी जाती है ;भ्ूसमल **1971**य ळपइइ ंदक डंतजपद **1962**य व्हइनतद ंदक क्नदबंद **1964**य डमंकम **1972**य ठमज्र **1972**य ब्समउमदजम ंदक ैजनतहपे **1972**य ब्तवूसमल **1973**द्धण् श्रम का विभाजन पूर्ववर्ती ही रहता है या नगरीकरण के हिसाब से बदलता है ;भ्ूसमल **1971**ए चण् **328**य ज्ञमउचमत **1972**द्धए यह प्रश्न भी प्रासंगिक है। सूक्ष्म स्तर पर कई ऐसे तथ्य भी उपलब्ध हैं जो आकार के स्वतंत्र

कारणत्व को भी स्पष्ट करते हैं ;बण् िस्पजमतंजनतम वद वतहंदप्रंजपवदंस ेप्रम ंदक कपि िमतमदजपंजपवदद्धण्

6. भारतीय इतिहास में नगरों या कस्बों के विशेष निशान मिलते हैं। प्राचीन ग्रंथों में हमें ऐसे अकेले क्षेत्रों की भी जानकारी मिलती है, जहां सभी जातियों के लोग रहते थे। यह नगरों में ही संभव था कि ब्राह्मण, ज्योतिषी जैसे धार्मिक अनुष्ठान करने वाली जातियां और दैनंदिन उपयोग की वस्तुओं का निर्माण करने वाले कारीगर एक साथ रहते थे।
7. नगरीकरण में उप संस्कृतियों के विकास का एक अन्य कारण पलायन भी है। इसके कारण एक ही केन्द्र वाले क्षेत्र में कई आंतरिक इलाके विकसित हो जाते हैं। यानी भौगोलिक रूप से एक ही दिखने वाले क्षेत्र में कई अलग-अलग समूह उपस्थित रहते हैं। इसे इस तरह भी समझ सकते हैं कि शरणार्थियों को नगर में जितना अधिक क्षेत्र व्यवस्थाओं के लिये दिया जायेगा, उतने ही उप-सांस्कृतिक विविधतायें सामने आयेंगी। छोटे क्षेत्र में इसकी संभावना कम रहती है। इस तरह शहर के आकार पर भी यह निर्भर करता है। ;मण्हण्ए ैबीदवतम **1963**य भ्ंददं ंदक भ्ंददं **1971**एचण् **109**द्धण्
8. प्रस्थापना
9. कोई क्षेत्र जितना अधिक शहरीकृत होता है, वहां उपसंस्कृतियों की श्रेणियों का विकास भी उतना ही तीव्र होगा।
10. पहली प्रस्थापना अहम समूहों की समान धारणा पर आधारित है। किसी उपसंस्कृति को मानने वाली आबादी जितनी अधिक होगी, सांस्थानिक संपूर्णता भी उतनी ही अधिक होगी ;ठतमजवद **1964**द्धण् यह अंतर्निहित मूल तंत्र है कि नगरीकरण से समूहों का आकार बढ़ता है और यह आकार सामाजिक उपव्यवस्थाओं व समर्थक संस्थानों या प्रतीकों को जन्म देता है, जो उपसंस्कृति का ढांचा तैयार करते हैैं और इसे पुष्ट करते हैं। ये संस्थान-प्रतीक जिनमें वेशभूषा, संगठन आदि होते हैं, अधिकरण के स्रोतों और समूहों की स्थापना करते हैं और सामाजिक सीमाओं को बांध देते हैं। संख्या बढ़ाने के सामान्य उद्देश्य की पूर्ति के लिये वे समूह के भीतर ही विवाह संबंधों को मान्यता देते हैं, प्रोत्साहित करते है।
11. एक अन्य परिदृश्य आपराधिक उप समुदायों का है। बड़े शहरों में पेशेवर आपराधिक समूह समान ऐतिहासिक समस्या रही है। इन लोगों का अपना अलग आवासीय क्षेत्र होता है और उनके मुलाकातों के स्थान भी अलग होते हैं। ऐसे समूहों से जुड़े लोग परस्पर सुरक्षा, प्रशिक्षण का भी काम करते हैं। ;मण्हण्ए ज्वइपंे **1972**य स्ंचपकने **1966**ए चचण् **153.63**द्धण् इसी तरह के उदाहरण कारीगरों के उप समुदायों, छात्रों की उपसंस्कृति, अकेले रहने वाले युवाओं और अन्य समूहों में भी मिलते हैं। हालांकि, ये सभी उदाहरण हैं।
12. ऐसे तथ्य विभिन्न शोधों में सामने आये हैं कि शहर जितना बड़ा होगा, वहां उतने ही अधिक संस्थान और सेवाएं उपलब्ध होंगी और कोई एक विशेष सेवा तो वहां की पहचान

होगी **;ज्ञमलमे 1958य व्हइनतद ंदक क्नदबंद 1964य ज्ीवउचेवद 1965य** **।इतंीेंउेवद 1974द्धण्** विशेष सामुदायिक संस्थानों की मौजूदगी आंतरिक विवाह संबंधों, संयोजन, उप संस्कृति की मान्यताओं को बढ़ावा देती हैं, जिन्हें शहरी शरणार्थियों मण्हण्ए ठतमजवद **1964**य क्वनहीजल **1970**य स्पजजसम **1965**द्ध और व्यावसायिक समूहों भी समर्थन मिलता है ;मण्हण्ए स्पचेमज मज ंसण् **1962**ए चचण् **170.208**द्धण्

13. अंतर सामूहिक संबंध भी उप संस्कृति को बढ़ावा देते हैं। किसी क्षेत्र में जितनी अधिक उपसंस्कृतियां विकसित होंगी, वहां इनके मध्य उतना ही अधिक द्वंद्व उत्पन्न होगा और इसके परिणामस्वरूप और नयी उपसंस्कृतियां सामने आयेंगी। सामूहिक स्तर पर प्रतिस्पर्धा और संघर्ष की भावना समूह में ही संयुक्त रहती है ;ैपउउमस 1951य ब्वेमत 1956य ैीमतप ि1956द्धण् व्यक्ति के स्तर पर देखें तो उसका भिन्न समूह से संपर्क उसे अपने समूह के मानकों, मूल्यों की ओर खींचता है (कम से कम प्रारंभिक तौर पर तो यह होता ही है)। क्लाइड क्लकहोन ;1960ए चण् 78द्ध कहते हैं, आबादी के विस्तार का प्रत्यक्ष परिणाम विभिन्न नैतिक मूल्यों के परस्पर विरोधाभासी दृष्टिकोण के तौर पर सामने आता है। ऐसी स्थिति में मौजूदा अस्तित्वमान नैतिक क्रम को सही ठहराने के कारण तलाशे जाने जरूरी हो जाते हैं, अन्यथा या तो वह नकार दिया जायेगा अथवा समन्वय के जरिये उसे नया स्वरूप दे दिया जायेगा। नैतिक क्रम पहली बार में समस्या के तौर पर उभरता है, लेकिन विचार समय के साथ समूहों के बीच और मनोवैज्ञानिक रूप से अपना स्थान बना लेते हैं। इसका कारण यह है कि ग्रामीण और अशहरी क्षेत्रों में मिलने वाले विशेष उपसमूह उपसंस्कृति पर होने वाले नगरीकरण के प्रभावों में मध्यस्थता का काम करते हैं।

5.3 निष्कर्ष

विशिष्ट से लेकर नवविशिष्ट और उपसांस्कृतिक सिद्धांत तक सबने अपने-अपने तरीके से शहरों की व्याख्या की है। आबादी की बढ़ती सघनता के हिसाब से शहरों की संख्या और लोगों का नव शहरी पर्यावरण के प्रति अनुकूलन भी बढ़ता जा रहा है।

5.4 अभ्यास प्रश्न

1. नगरीकरण के विशिष्ट सिद्धांतों का वर्णन करें।
2. नगरीकरण के नव विशिष्ट सिद्धांत की व्याख्या करें।
3. नगरीकरण का उप सांस्कृतिक सिद्धांत क्या है? विस्तार से बतायें
4. नगरीकरण के विभिन्न सिद्धांतों का तुलनात्मक विश्लेषण करें। इसे सारिणी से भी समझायें।

5.5 सहायक अध्ययन

1.k~ Sociology.iresearchnet.com › Urban Sociology

2.k~ Abbott, A.k~ (1999) Department and Discipline: Chicago Sociology at One Hundred.k~ University of Chicago Press, Chicago.

3.k~ Becker, H.k~ S.k~ (1999).k~ The Chicago School, so-called.k~ Qualitative Sociology 2.1, 2:3-12.

4.k~ Blumer, M.k~ (1984) The Chicago School of Sociology: Institutionalçation, Diversity, and the Rise of Socio logical Research.k~ University of Chicago Press, Chicago.

5.k~ Deegan, M.k~ J.k~ (1986) Jane Addams and the Men of the Chicago School, 1892-1918.k~ Transaction Books, New Brunswick, NJ.

6.k~ Faris, R.k~ E.k~ L.k~ (1970) Chicago Sociology, 1920-32.k~ University of Chicago Press, Chicago.

7.k~ Kurtz, L.k~ R.k~ (1984) Evaluating Chicago Sociology: A Guide to the Literature, with an Annotated Bibliography.k~ University of Chicago Press, Chicago.

8.k~ Matthews, F.k~ H.k~ (1977) Quest for an American Sociology: Robert E.k~ Park and the Chicago School.k~ McGill-Queen"s University Press, Montreal.

9.Short, J.k~ F.k~ (Ed.) (1971) The Social Fabric of the Metropolis: Contributions of the Chicago School of Urban Sociology.k~ University of Chicago Press, Chicago.

10.The University and the City: A Centennial View of the University of Chicago: The Urban Laboratory.

Online.k~

http:èèwww.lib.uchicago.eduèprojectsècentcatècentcatsècityècitych3_01.html

इकाई -6 अनौपचारिक बस्तियां एवं शहरी गरीब
(Informal settlements and the urban poor)

इकाई की रूपरेखा

6.1 परिचय

6.2 उद्देश्य

6.3 अनौपचारिक बस्तियाँ

6.4 शहरी गरीबी के प्रमुख कारण

6.5 शहरी गरीबों के सामने विद्यमान प्रमुख चुनौतियाँ

6.6 शहरी गरीबी की स्थिति में सुधार के उपाय

6.7 शहरी गरीबी उन्मूलन हेतु सरकार की प्रमुख पहलें

6.8 भविष्य हेतु दिशा निर्देश

6.9 सार संक्षेप

6.10 अभ्यास प्रश्न

6.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची

6.1 परिचय

प्रिय शिक्षार्थियों अध्ययन की इस इकाई में हम शहरी गरीबी और इससे उपजी असमानता पर चर्चा करेंगे । यदि भारत के सन्दर्भ में इस विषय पर चर्चा की जाये तो पाया गया है कि दो दशकों से भारत सबसे तेजी से विकसित होती हुई अर्थव्यवस्था के रूप में उभर रहा है , और इस आर्थिकी संवर्धन में शहरों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण हैं । इसके साथ ही तेजी से शहरों का विकास भी हो रहा है । सहरों के तेजी से होते विस्तारीकरण ने गावों को भी इसमें समेत लिया है ।

इस स्थिति में रोजगार सृजन के भी विभिन्न अयं शहरों में उपस्थित है ,जिस कारण से ग्रामीण आबादी का शहरों की ओर पलायन में भी वृद्धि देखी गयी है । इसके साथ ही बेहतर शिक्षा ,स्वास्थ्य सुविधाएँ और अनेक ऐसे कारन हैं कि एक बड़ी जनसँख्या ने शहरों की ओर रुख किया है ।

विनिर्माण एवं सेवा क्षेत्रों के विकास के साथ शहरों पर जनसँख्या का अतिरिक्त दबाव भी बाधा है । इस सन्दर्भ में संयुक्त राष्ट्र विश्व जनसंख्या स्थिति पर आधारित एक रिपोर्ट द्वारा यह कहा गया है कि वर्ष 2030 तक भारत की 40.76 प्रतिशत आबादी शहरों में निवास कर रही होगी ।अब यदि वर्त्तमान स्थिति पर दृष्टि डाली जाये तो हम पाते है कि जहाँ एक ओर शहरी जनसँख्या में वृद्धि हुई है वहीँ दूसरी ओर शहरी गरीबी में कमी देखी जा रही है ।

भारत रोज़गार रिपोर्ट 2024

वर्ष	शहरी गरीबी दर	बेरोजगारी का प्रतिशत
2012	13.7 %	8.5
2022	12.55 %	10.5

भारत सरकार रोजगार की रिपोर्ट 2024 जो दर्शाती है कि जहाँ वर्ष 2012 में शहरी गरीबी दर 13.7 प्रतिशत थी वह 2022 में 12.55 प्रतिशत हुई ।किन्तु इसके सापेक्ष बेरोजगारी में इसका उल्टा है अर्थात जब शहरी गरीबी दर 13.7 प्रतिशत थी तो बेरोजगारी का प्रतिशत शहर में कम था किन्तु जनसंख्या वृद्धि होने के साथ ही बेरोजगारी का प्रतिशत भी बढ़ा है ।

6.2 उद्देश्य

- अनौपचारिक बस्तियों के अर्थ को समझ सकेंगे ।
- शहरी गरीबी के प्रमुख कारणों का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे ।
- शहरी गरीबों के सामने विद्यमान प्रमुख चुनौतियाँ एवं चुनौतियों का प्रकार का वर्णन कर सकेंगे ।
- शहरी गरीबी की स्थिति में सुधार के उपायों का वर्णन कर सकेंगे ।
- शहरी गरीबी उन्मूलन हेतु सरकार की प्रमुख पहलों को समझ सकेंगे ।
- भविष्य हेतु आवश्यक दिशा निर्देशों का अध्ययन कर उसका अवलोकन कर सकेंगे ।

6.3 अनौपचारिक बस्तियां

सामान्य अर्थों में अनौपचारिक बस्तियां वह बस्तियां आया लोगों का बड़ा समूह होता हैं जो किसी दूसरे स्थान से पलायन करके आये हुए व्यक्तियों,समुदाय या फिर परिवारों का एक समूह है ,जो अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु एक स्थान से दूसरे स्थान पर पलायन करते हैं ।जिसका मुख्य कारण उनकी रोजगार की आवशयकता ,स्वास्थ्य सम्बन्धी सेवाएँ या फिर शिक्षा के उचित अवसर इत्यादि शामिल हैं ।

इस सन्दर्भ में अनेक लेखकों ने अपने मत व्यक्त किये हैं जिसमें अनौपचारिक बस्तियों' को 'झुग्गी-झोपड़ियों' के साथ व्यापक रूप से मिला देने से बड़े पैमाने पर तोड़फोड़, विस्थापन और पुनर्वास की प्रथाएं प्रेरित होती हैं (गिल्बर्ट, 2007 ; मेने, 2017)। हाल के दशकों में समुदाय-आधारित यथास्थान उन्नयन की नीतियां यूएन-हैबिटेट (2016) जैसी एजेंसियों के लिए केंद्रीय बन गई हैं - इसका एक परिणाम यह है कि अनौपचारिक रूप से निर्मित शहरी बुनियादी ढांचा स्थायी विकास का ढांचा बन जाता है। अनौपचारिक बस्तियों से सुलभ भूमि, किफायती आवास और शहरी बुनियादी ढांचे का निर्माण होता है, हालांकि, इस बारे में बहुत कम जानकारी है कि यह बुनियादी ढांचा पहली बार में कैसे उभरता है। हालांकि अक्सर इसे अराजक माना जाता है, अनौपचारिक बस्तियां शहरी डिजाइन और नियोजन का एक रूप है, जो तर्कों के एक जटिल समूह को समाहित करती है, जिसे ठीक से समझा नहीं गया है। जबकि ऐसी कई बस्तियों में 'झुग्गी-झोपड़ी' की स्थिति दिखाई देती है । अनौपचारिक निपटान एक विलक्षण प्रक्रिया नहीं है, बल्कि स्थलाकृति, जलवायु, संस्कृति, सामग्री, अर्थशास्त्र और राजनीति (डोवी एंड किंग, 2011) के अंतर के साथ औपचारिक शहर के साथ अलग-अलग संबंधों के साथ भिन्न होगी; हमारा लक्ष्य वैश्विक तुलनात्मक अध्ययन के लिए एक रूपरेखा विकसित करना है। अनौपचारिक निपटान सार्वजनिक और निजी दोनों प्रकार की भूमि पर होता है, जिसमें कई प्रकार के भूमि स्वामित्व होते हैं (पायने, 2004)।

दुनिया की 25% शहरी आबादी अनौपचारिक बस्तियों में रहती है, और 1990 के बाद से अनौपचारिक बस्तियों के निवासियों की वैश्विक आबादी में 213 मिलियन की वृद्धि हुई है (यूएन-हैबिटेट, 2013बी: 126–8)।
उन्हें जीवन में अनेक बुनियादी चुनौतियों का सामना करना पड़ता है, जैसे खराब स्वच्छता, सुरक्षा जोखिम और कई स्वास्थ्य जोखिम। पानी बहुत गंदा है. इनसे पर्यावरणीय, भौतिक और सामाजिक आर्थिक समस्याएं जैसी कई समस्याएं पैदा होती हैं।
आज हम जिस सदी में जी रहे हैं उसको **शहरी सदी** कहा जा रहा है ,क्योकि दुनिया की अधिकांश अर्थव्यवस्था शहरीकरण से प्रभावित हो रही है । **सतत विकास लक्ष्यों** के सन्दर्भ में भी यह देखा गया है कि इस स्थिति का संज्ञान सतत विकास लक्ष्यों में भी लिया गया है। वैश्विक अर्थव्यवस्था के सन्दर्भ में भी यह पहलू अत्यंत महत्वपूर्ण है ।

6.3 शहरी गरीबी के प्रमुख कारण

ग्रामीण आबादी का शहर की ओर पलायन का एक सबसे मुख्य कारण रोजगार और आजीविका की तलाश है । ग्रामीण क्षेत्रों में आधारभूत संरचनाओं की कमी ('पुश फैक्टर') और शहरी क्षेत्रों में तेज़ी से औद्योगीकरण ('पुल फैक्टर') के कारण विषम विकास की स्थिति बनी है और इससे प्रवासन को बल मिला है। इसके साथ ही अधिकांश गरीब, शहरी अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में उभरते रोज़गार अवसरों का लाभ उठा सकने में सक्षम नहीं हैं क्योंकि उनके पास ऐसा करने के लिये आवश्यक ज्ञान और कौशल का अभाव है। इसके कारण अकुशल या अर्द्ध-कुशल कार्यबल का सृजन होता है जिनके लिये अच्छे और उपयुक्त वेतन वाली नौकरी पाना कठिन होता है। इसके साथ ही खाद्यान्नों और अन्य आवश्यक वस्तुओं की कीमतों में भारी वृद्धि शहरी क्षेत्रों में निम्न-आय वर्ग के लोगों की कठिनाई और अभाव को और अधिक बढ़ा देती है।

6.4 शहरी गरीबों के सामने विद्यमान प्रमुख चुनौतियाँ

शहरी गरीबों के समक्ष जो सबसे बड़ी चुनौती है वह शहरी परिवेश में खुद को स्थापित करना है । क्योकि निश्चित क्षेत्र में जब ज्यादा जनसंख्या निवास करेगी तो तय है कि कई कठनाइयों का सामना करना होगा । वहां सबसे बड़ी चुनौती पर्याप्त रहने का स्थान ,स्वास्थ्य सेवाएँ और बेहतर रहन सहन के लिए जद्दोजहद करनी पड़ती है । उदाहरण के तौर पर आप देख सकते हैं कि दिल्ली में लगभग 21.8 प्रतिशत मलिन बस्ती परिवार सार्वजनिक नल जैसे साझा जल स्रोतों पर निर्भर हैं। इन समुदायों की निम्न आय का अर्थ है कि मानक चिकित्सा सहायता उनके लिये प्रायः वहनीय नहीं होती है। शहरों में पलायन के बाद जब ऐसी आबादी बढती है तो अक्सर ही झुग्गी-झोपड़ियों में रहने वाले बच्चों की शिक्षा प्रभावित होती है। पर्याप्त धन की कमी के कारण इन झुग्गी-झोपड़ियों में रहने वाले बच्चों को भी पर्याप्त संसाधन नहीं मिल पते जिससे उनको सर्वांगीण विकास में बाधा का सामना करना पड़ता है ।

6.5 शहरी गरीबी की स्थिति में सुधार के उपाय

इस सन्दर्भ में पहला उपाय उचित सामाजिक सुरक्षा प्रदान करना है ,और यह भी सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि सामाजिक न्याय की संकल्पना को ध्यान में रखते हुए उन्हें सरकार द्वारा चलायी जा रही योजनाओं का लाभ मिले । किन्तु इसके विपरीत देखने को मिलता है क्योकि सरकार द्वारा आधिकारिक रूप से मान्यता प्राप्त नहीं होती है ।

इसके साथ ही अनौपचारिक श्रमिकों के लिये उचित सामाजिक सुरक्षा उपायों का अभाव भी उभरकर सामने आया है और इसका शहरी गरीबी पर व्यापक प्रभाव पड़ा है। इस प्रकार, समय की आवश्यकता है कि शहरी नियोजन और प्रभावी शासन के लिये नए दृष्टिकोण अपनाए जाएँ। इसके साथ ही बुनियादी सुविधाओं तक बेहतर पहुँच सुनिश्चित किया जाना चाहिए । मलिन बस्तियों के पुनर्वास और उन्नयन के साथ-साथ राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम सूची के आधार पर पहचान चिह्न स्थापित करने की आवश्यकता है। इनमें उन वंचित परिवारों को भी दर्ज करने की आवश्यकता है जो सूची से बाहर छूट गए हैं।

इसी प्रकार से शहरी क्षेत्रों में वंचित परिवारों को स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से कई कार्यक्रम आयोजित किये जा सकते है । जिससे छोटे छोटे समूहों के माध्यम से कई कार्य किये जा सकते है । इसी कड़ी में स्वनिधि योजना के तहत रेहड़ी-पटरी वालों (स्ट्रीट वेंडर्स) के लिये ऋण की व्यवस्था इस दिशा में बढ़ाया गया प्रशंसनीय कदम है।

असंगठित क्षेत्र में लगे हुए श्रमिकों को न्यूनतम मजदूरी अधिनियम या कारखाना अधिनियम से सम्बंधित कानूनों का ज्ञान एवं सहायता पहुचाई जानी चाहिए।

6.6 शहरी गरीबी उन्मूलन हेतु सरकार की प्रमुख पहलें

शहरी गरीबी उन्मूलन हेतु सरकार की प्रमुख पहलों में प्रधानमंत्री गरीब कल्याण योजना , अटल नवीकरण एवं शहरी परिवर्तन मिशन- अमृत मिशन,दीनदयाल अंत्योदय योजना (राष्ट्रीय शहरी आजीविका मिशन),जल जीवन मिशन- शहरी, आत्मनिर्भर भारत अभियान,प्रधानमंत्री आवास शहरी योजना, लाइट हाउस परियोजनाएं,स्व-रोजगार कार्यक्रम इत्यादि को सम्मिलित किया गया है । शहरी मलिन बस्ती आबादी को रोज़गार लाभ प्रदान करने के लिये शहरी क्षेत्रों में भी मनरेगा जैसी योजना शुरू की जा सकती है।

इस कार्य को आगे बढ़ने में गैर सरकारी संगठनों की भूमिका अति महत्वपूर्ण है ।जिससे सामुदायिक सहभागिता के माध्यम से आत्मनिर्भर बनने की प्रक्रिया को आगे बढाया जाता है । इसके अतिरिक्त कौशल विकास कार्यक्रम एवं स्वरोजगार को प्रोत्साहित किया जा सकता है । शहरी गरीबी से निपटने में चुनौतियाँ अनेक हैं जैसे - सटीक आंकड़ों का अभाव, अपर्याप्त बुनियादी ढाँचा और राजनीतिक और प्रशासनिक बाधाएँ सम्मिलित हैं ।

6.7 भविष्य हेतु दिशा निर्देश

शहरी गरीबी से प्रभावी ढंग से निपटने के लिए **सटीक आँकड़े एकत्र करना** आवश्यक है। इससे शहरी गरीबों की वास्तविक ज़रूरतों को समझने में मदद मिल सकती है। इसके साथ ही नीति

कार्यान्वयन को मजबूत करना और वास्तविक बदलाव लाने के लिए नीतियों का प्रभावी क्रियान्वयन ज़रूरी है। इसके साथ ही समावेशी शहरी विकास को बढ़ावा देना सामिल है । शहरी गरीबी से निपटने के लिए अभिनव समाधान के अंतर्गत प्रौद्योगिकी और स्मार्ट शहर शहरी गरीबी को दूर करने में तकनीक की अहम भूमिका है। शहरी विकास परियोजनाओं के वित्तपोषण और कार्यान्वयन के लिए सार्वजनिक-निजी भागीदारी (पीपीपी) आवश्यक है।

6.8 सार संक्षेप

भारत में शहरी गरीबी एक गंभीर समस्या है जो विभिन्न कारकों से उत्पन्न होती है, जिनमें तेज़ी से गाँवों से शहरों की ओर पलायन, कौशल की कमी और बुनियादी सेवाओं तक अपर्याप्त पहुँच शामिल है। शहरी गरीबों के प्रतिशत को कम करने में कुछ प्रगति के बावजूद, मौजूदा चुनौतियों के कारण उनकी वास्तविक संख्या में वृद्धि जारी है। राष्ट्रीय शहरी आजीविका मिशन जैसी सरकारी पहलों का उद्देश्य बेहतर रोज़गार के अवसर और आवश्यक सेवाएँ प्रदान करके इन समस्याओं का समाधान करना है। हालाँकि, शहरी गरीबों की आवास, शिक्षा और स्वास्थ्य सेवा तक पहुँच सुनिश्चित करने के लिए अभी और प्रयास किए जाने की आवश्यकता है। समावेशी विकास और प्रभावी नीतियों पर ध्यान केंद्रित करके, भारत शहरी गरीबी को कम करने और अपने नागरिकों के जीवन को बेहतर बनाने की दिशा में काम कर सकता है।

6.9 अभ्यास प्रश्न

1. शहरी गरीबी क्या है?
2. भारत में शहरी गरीबी का क्या कारण है?
3. शहरी गरीबी स्वास्थ्य को कैसे प्रभावित करती है?
4. शहरी गरीबों के लिए जीवन स्थितियां कैसी हैं?
5. शहरी गरीबी को कम करने के लिए भारत सरकार ने क्या पहल की है?
6. गैर-सरकारी संगठन शहरी गरीबी से निपटने में किस प्रकार सहायता करते हैं?
7. शहरी गरीबी से निपटने में क्या चुनौतियाँ हैं?
8. भारत में शहरी गरीबों की स्थिति सुधारने के लिए क्या किया जा सकता है?
9. **6.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची**

1. https://www.iied.org/introduction-urban-poverty
2. https://www.sciencedirect.com/science/article/pii/S0197397520303714
3. Government of India (2002), Report of the Special Group on Targeting 10
4. Million Employment Opportunities per year over the 10th Plan Period,
5. Planning Commission, New Delhi.

6. Kannan, K.P. and Pillai, Vijayamohanan (2007), "Conceptualizing Social
7. Security in a Human Development and Rights Perspective", Indian Journal
8. of Human Development, Vol.1, No.1, 2007.
9. NCEUS (2006), Social Security for Unorganized Sector Workers, Report,
10. National Commission for Enterprises in the Unorganised Sector, Government of India, New Delhi.
11. NCEUS (2007), Report on Conditions of Work and Promotion of Livelihoods
12. in the Unorganised Workers, National Commission for Enterprises in the
13. Unorganized Sector, Government of India, New Delhi.
14. NCEUS (2008), Report on Definitional and Statistical Issues relating to
15. Informal Economy, National Commission for Enterprises in the Unorganized
16. Sector, Government of India, New Delhi.
17. NCEUS (2009): The Challenge of Employment in India: An Informal
18. Economy Perspective, Final Report of the National Commission for
19. Enterprises in the Unorganized Sector, Government of India, New Delhi.
20. Portes, Alejandro, "The Informal Sector: Definition, Controversy, and
21. Relation to National Development", The Reviewed work(s): Source: Review
22. (Fernand Braudel Centre), Vol. 7, No. 1 (Summer, 1983), pp. 151-
23. 174Published by: Research Foundation of SUNY for and on behalf of the
24. Fernand Braudel Centre.
25. Ramesh, Babu P. and Satpathy, Anoop K. (2010), Social Security for
26. Unorganised Sector Workers in India: A Critical Appraisal, Research Study
27. Series -Working Paper, V.V.Giri National Labour Institute, NOIDA.
28. Ramesh, Babu P (2011) "Role of Unorganized Sector in Development"
29. Development in India: Pre and Post Liberalization Period, MAEDS,
30. IGNOU.
31. Saxena, K.B. (2009), "The Unorganized Sector Workers' Social Security
32. Act, 2008: A Commentary", Social Change, Vol.39, No.2.

इकाई 7: शहरी अनौपचारिक क्षेत्र
(Urban informal sector)

इकाई की रूपरेखा

7.1 परिचय

7.2 उद्देश्य

7.3 शहरी अनौपचारिक क्षेत्र की विशेषताएं

7.4 शहरी अनौपचारिक क्षेत्र की चुनौतियाँ

7.5 शहरी अनौपचारिक क्षेत्र समाधान हेतु उपाय

7.6 शहरी गरीबी उन्मूलन हेतु सरकार की प्रमुख पहलें

7.7 भविष्य हेतु दिशा निर्देश

7.8 सार संक्षेप

7.9 अभ्यास प्रश्न

7.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

7.1 परिचय

साथियों इस इकाई में हम शहरी अनौपचारिक क्षेत्र के विषय में वर्णन करेंगे । अनौपचारिक क्षेत्र को हम इस प्रकर से समझ सक्ते है कि जहाँ आर्थिक गतिविधियाँ सरकारी नियमों और निगरानी के बाहर होती हैं, जिसमें रेहड़ी-पटरी वाले, घरेलू कामगार, निर्माण श्रमिक और छोटे व्यवसाय वले व्यक्ति कम आय, सामाजिक सुरक्षा और नौकरी की अनिश्चितता का सामना करते हैं, लेकिन शहरी जीवन और अर्थव्यवस्था के लिए महत्वपूर्ण सेवाएँ प्रदान करते हैं। यह क्षेत्र अक्सर गरीबों की आजीविका का साधन होता है और इसमें छोटे पैमाने पर होने वाले निर्माण, अवैध कब्जे और अन्य असंगठित काम शामिल होते हैं, जो शहरीकरण की बढ़ती प्रक्रिया का हिस्सा हैं।

7.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप :-

- ❖ शहरी अनौपचारिक क्षेत्र के आशय से अवगत होंगे ।
- ❖ शहरी अनौपचारिक क्षेत्र की विशेषताओं से अवगत होंगे ।
- ❖ शहरी अनौपचारिक क्षेत्र की चुनौतियों को समझ सकेंगे ।
- ❖ शहरी अनौपचारिक क्षेत्र की समस्याओं के समाधान हेतु उपाय सूझा सकेंगे।
- ❖ शहरी गरीबी उन्मूलन हेतु उठाई जा सरकारी कदमों क़े विषय की चर्चा कर सकेंगे ।
- ❖ शहरी गरीबी उन्मूलन हेतु भविष्य के दिशा निर्देशों का वर्णन कर सकेंगे ।

7.3 शहरी अनौपचारिक क्षेत्र की विशेषताएं

यदि शहरी अनौपचारिक क्षेत्र की बात की जाएँ तो इसकी अनेक विशेषताएँ हैं ।जिसका वर्णन यहाँ किया जा रहा है :-

- असंरचित और अनियमित गतिविधियों पर सरकार का कोई औपचारिक नियंत्रण या विनियमन नहीं होता है, जैसे कराधान, सामाजिक सुरक्षा या श्रम कानून इत्यादि ।
- जीविकोपार्जन की रणनीति के रूप में कई लोगों के लिए यह पर्याप्त औपचारिक नौकरियों की कमी के कारण जीवित रहने का एक तरीका है, जबकि कुछ के लिए यह स्वतंत्रता और लचीलेपन का विकल्प है।
- आर्थिक योगदान से शहरों में कई लोगों को रोजगार मिलता है और शहरी निवासियों को आवश्यक सेवाएँ और उत्पाद प्रदान करता है, जिससे शहरी अर्थव्यवस्था चलती है।

- किन्तु आर्थिक स्थिति कमजोर होने से श्रमिकों को अक्सर बेदखली, उत्पीड़न, कम वेतन और सामाजिक सुरक्षा जैसे बीमा और पेंशन इत्यादि की कमी का सामना करना पड़ता है।
- इसमें विभिन्न प्रकार के कार्य शामिल है सड़क पर रेहड़ी लगाने वाले विक्रेता, घरेलू सहायक, छोटे दुकानदार, निर्माण कार्य में लगे हुये श्रमिक, कूड़ा कचरा बीनने वाले और आज कल गिग इकॉनमी के श्रमिक शामिल हैं जो कि जो पारंपरिक, स्थायी नौकरियों के बजाय, अस्थायी, लचीले या फ्रीलांस काम करते हैं, अक्सर ऑनलाइन प्लेटफॉर्म्स जैसे ola, Uber, Zomato, Swiggy, या Freelancer.com के माध्यम से क्लाइंट्स से जुड़ते हैं।
- यह क्षेत्र अनौपचारिक बस्तियों (झुग्गियों) के विकास से जुड़ा है, जहाँ बुनियादी सेवाओं और भूमि सुरक्षा का अभाव होता है।

7.4 शहरी अनौपचारिक क्षेत्र की चुनौतियाँ

शहरी अनौपचारिक क्षेत्र की अनेक चुनौतियाँ **हैं जिसमें लगातार** विस्थापन, कार्य के बदले कम आय के रूप में शोषण, सरकारी नीतियों और शहरी नियोजन में प्रतिनिधित्व का न होना जैसी चुनौतियों का सामना करना पड़ता है।जिससे जहां हम एक ओर समानता की बात करते हैं और समान कार्य के लिए समान वेतन की बात करते है किन्तु अनौपचारिक क्षेत्र में हमें अनेक प्रकार की असमानताएं देखने को अक्सर मिलती है ।जिसका प्रमुख कारण कोई भी उचित नीति के होने का अभाव है । इसको एक उदाहरण द्वारा समझ सकते है कि हमारे देश में दुनिया के कुल ऑटो रिक्शाओं में से तीन चौथाई है अर्थात इन्हें आम तौर पर पैराट्रांज़िट या मध्यवर्ती सार्वजनिक परिवहन कहा जाता है । उनके महत्व के बावजूद केंद्र और राज्यों के स्तर पर सरकारी काम-काज में पैराट्रांज़िट को औपचारिक शहरी परिवहन प्रणाली से जोड़ने में नाकाम रहे हैं।

इन सेवाओं की औपचारिक और नियमों से दूर प्रकृति का परिणाम अक्सर यात्रियों के लिए घटिया सेवा के रूप में निकलता है. वैसे राष्ट्रीय स्तर पर राष्ट्रीय शहरी परिवहन नीति (NUTP) पैराट्रांज़िट की भूमिका को स्वीकार तो करती है लेकिन औपचारिक रूप से इसके समावेशन के लिए कार्यान्वयन के योग्य रणनीतियां सीमित हैं विकासशील देशों में अधिकांश शहरी श्रमिक अनौपचारिक अर्थव्यवस्था से अपनी आजीविका कमाते हैं। इसलिए, समावेशी शहरों को बढ़ावा देने और शहरी गरीबी को कम करने के लिए शहरी अनौपचारिक रोजगार को समझना महत्वपूर्ण है।

7.5 शहरी अनौपचारिक क्षेत्र समाधान हेतु उपाय

शहरी अनौपचारिक क्षेत्र में श्रमिकों के समाधान हेतु पहल के रूप में श्रम संघ का निर्माण किया जाना एवं इनको भी नीति निर्माण में शामिल किया जाना चाहिए ताकि छोटे स्तर के कामगारों हेतु भी रणनीतियाँ बनाई जा सकें ।

इसको एक उदाहरण के माध्यम से समझ सकते है जिसको हम अनौपचारिक रोजगार में महिलाओं के वैश्विक संगठन के नाम से जानते है । यह प्रमुख रूप से एक शोध आधारित नीति के कार्यान्विन का नेटवर्क है जो प्रयास करता है कि गरीबों विशेषकर महिलाओं की परिस्थितियों में सुधार किया जा सके । इसके साथ ही प्रयास के रूप में अनौपचारिक और अनियोजित झोपड़ियों ,बस्तियों की समस्या को वर्गीकरत किया जा सके । जिससे उत्पादकता में व्रद्धि होगे के साथ ही इस क्षेत्र के श्रमिकों के जीवन में सुधार भी लाया जा सकता है ।

7.6 शहरी गरीबी उन्मूलन हेतु सरकार की प्रमुख पहलें

शहरी गरीबी उन्मूलन हेतु श्रमिकों के लिए बुनियादी ढांचागत सेवाएँ प्रदान किया जाना नितांत आवश्यक है जिससे उनके जीवन में सुधार हो सके ।इसके साथ ही शहरी नियोजन हेतु सड़क विक्रेताओं के लिए भूमि आवंटन किया जाना चाहिए । इस संदर्भ में यहाँ यह कहना प्रासंगिक होगा कि भारत ने यह पहल कर दी है और आज स्ट्रीट वेंडिंग पर राष्ट्रीय नीति विकसित की है। 2004 में अपनाई गई शहरी स्ट्रीट वेंडर्स पर राष्ट्रीय नीति का उद्देश्य स्ट्रीट वेंडर्स के लिए आजीविका कमाने के लिए एक सहायक वातावरण को बढ़ावा देना है, साथ ही भीड़भाड़ को कम करना और सार्वजनिक स्थानों पर स्वच्छता की स्थिति बनाए रखना है।

नगरपालिका ठोस अपशिष्ट प्रबंधन और कचरा बीनने वाले श्रमिकों के लिए अनेक योजनाओं पर कार्य कर रही है जिससे इनके जीवन में सुधार संभव हो सके । समावेशी शहरी नियोजन के लिए यह एक महत्वपूर्ण पहलू है ।

7.7 भविष्य हेतु दिशा निर्देश

भविष्य हेतु आवश्यक दिशा निर्देश के रूप में अनौपचारिक श्रमिकों की स्थिति की पहचान करना और वे शहरी अर्थव्यवस्था और विशिष्ट मूल्य श्रृंखलाओं या क्षेत्रों में किस प्रकार योगदान करते हैं यह मान्यता कि अनौपचारिक अर्थव्यवस्था के प्रति सामान्य नीतिगत रुख में विनियमन, संरक्षण और संवर्धन का संयोजन होना चाहिए - न कि विनियमन, पुनर्वास और दमन का यह मान्यता कि अनेक मौजूदा कानून, विनियम और नियम अनौपचारिक अर्थव्यवस्था को शामिल करने के बजाय उसे बाहर रखते हैं, तथा अनौपचारिक कार्य की वास्तविकता के अनुरूप उनमें सुधार किए जाने की आवश्यकता है। यह मान्यता कि अनौपचारिक श्रमिकों को संगठित होने की आवश्यकता है और उनके प्रतिनिधियों को शहरी नियोजन और कानूनी सुधार प्रक्रियाओं में अभिन्न रूप से शामिल होने की आवश्यकता है यह मान्यता कि समावेशी योजना अनौपचारिक श्रमिकों के लिए है और इस योजना को सबके साथ मिलकर बना है ।

7.8 सार संक्षेप

शहरी अनौपचारिक श्रमिकों की सामूहिक आवाज़ बनना आसान नहीं है किन्तु फिर भी आज इस हेतु अनेकों प्रयास किए जा रहे हैं ।इन उपलब्धियों के बावजूद, शहरी अनौपचारिक कामगारों के कई संगठन अभी भी अपनी प्रारंभिक अवस्था में हैं। इस प्रकार, शहरी अनौपचारिक कामगारों के संगठनों का निर्माण और सुदृढ़ीकरण अपने आप में एक लक्ष्य है - क्योंकि अनौपचारिक कामगारों को सशक्तीकरण की भावना प्राप्त होती है और वे एक-दूसरे का समर्थन करने में सक्षम होते हैं - और साथ ही स्थानीय, राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर व्यापक प्रभाव का लाभ उठाने का एक साधन भी है। शहरी अनौपचारिक अर्थव्यवस्था में काम करने वाले गरीबों द्वारा आमतौर पर अनुभव की जाने वाली भेद्यता, असुरक्षा और निर्भरता को दूर करने के लिए संगठन की शुरुआत हो सकती है, जिनका जीवन शक्तिशाली आर्थिक और राजनीतिक ताकतों द्वारा नियंत्रित होता है।

7.9 अभ्यास प्रश्न

1. शहरी अनौपचारिक क्षेत्र के क्या आशय है ?
2. शहरी अनौपचारिक क्षेत्र की विशेषताओं का वर्णन कीजिये ?
3. शहरी अनौपचारिक क्षेत्र की प्रमुख चुनौतियां क्या हैं ?
4. शहरी अनौपचारिक क्षेत्र की समस्याओं के समाधान हेतु उपाय सूझाइये।
5. शहरी गरीबी उन्मूलन हेतु उठाई जा सरकारी कदमों की चर्चा कीजिये ।
6. शहरी गरीबी उन्मूलन हेतु भविष्य के दिशा निर्देशों का वर्णन कीजिये।

7.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

https://www.urbanet.info/urban-informal-economy/
https://ilostat.ilo.org/topics/informality/
https://www.orfonline.org/hindi/expert-speak/overlooked-and-overburdened-paratransit-in-india-deserves-an-overhaul

इकाई 8: शहरी बेरोजगारी
Urban unemployment

इकाई की रूपरेखा

8.1 परिचय
8.2 उद्देश्य
8.3 बेरोजगारी से आशय एवं प्रकृति
8.4 बेरोजगारी के प्रकार
8.5 भारत में बेरोजगारी के परिणाम
8.6 बेरोजगारी उन्मूलन हेतु दिशा निर्देश
8.7 सार संक्षेप
8.8 अभ्यास प्रश्न
8.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

8.1 परिचय

प्रिय शिक्षार्थियों इस इकाई में हम शहरी बेरोज़गारी के विषय में अध्ययन करेंगे। यदि भारत में शहरी बेरोज़गारी दर की बात की जाए तो इसमें लगातार उतार-चढ़ाव आता रहता है, और अभी तक यह लगभग 6.2 प्रतिशत से लेकर 7.0 प्रतिशत के आस पास रही है। आवधिक श्रम बल सर्वेक्षण और 2025 के आर्थिक रिपोर्ट के आंकड़ों के अनुसार, इसमें मिला-जुली प्रवृत्ति देखने को मिली है, इसके साथ ही इसमें कुछ तिमाहियों में मामूली बढ़ोतरी हुई है (जैसे अक्टूबर 2025 **में** 7.0%), इसके बावजूद कुल राष्ट्रीय आंकड़े बेहतर हुए हैं, किन्तु शहरी महिलाओं में बेरोज़गारी दर की तुलना में पुरुषों की तुलना में ज़्यादा रही है।
यहाँ यह बात दिलचस्प है कि शहरी बेरोज़गारी के अनुपात में ग्रामीण बेरोज़गारी कम देखने को मिलती है, वहीं शहरी दरें कभी-कभी बढ़ जाती हैं, जो असमान रोजगार के बाजार की स्थितियों को दर्शाता हैं। शहरी युवाओं (15-29 साल) को अक्सर काफी ज़्यादा बेरोजगारी का सामना करना पड़ता है, कुछ स्रोतों के अनुसार 2025 के मध्य में यह आंकड़ा 17% से भी ऊपर चला गया था। बेरोज़गारी को साधारण अर्थों में उस स्थिति को कहते हैं जब लोग सक्रिय रूप से रोज़गार ढूंढते हैं लेकिन उन्हें नौकरी नहीं मिल पाती है । यह किसी देश की आर्थिक सेहत का एक ज़रूरी सूचक है। बेरोज़गारी दर बहुत ज़्यादा इस्तेमाल होने वाला पैमाना है, इसे बेरोज़गार लोगों की संख्या को कुल श्रम शक्ति से विभाजित करके गणना की जाती है। **अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (ILO) के अनुसार, बेरोज़गारी को काम उपलब्ध न होने, काम के लिए उपलब्ध होने और सक्रिय रूप से रोज़गार ढूंढने के रूप में परिभाषित किया गया है।**

8.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप :-

- ✓ बेरोजगारी से आशय एवं इसकी प्रकृति को समझ सकेंगे ।
- ✓ बेरोजगारी के प्रकारों की व्याख्या कर सकेंगे ।
- ✓ भारत में बेरोजगारी के परिणाम से अवगत होंगे ।
- ✓ बेरोजगारी उन्मूलन हेतु प्रमुख दिशा निर्देशो का अवलोकन कर सकेंगे ।

8.3 बेरोजगारी से आशय एवं प्रकृति

बेरोजगारी आर्थिक स्वास्थ्य का एक प्रमुख सूचक है, जो तब उत्पन्न होती है जब सक्रिय रूप से काम की तलाश कर रहे व्यक्ति रोजगार पाने में खुद को असमर्थ पाते हैं। बेरोजगारी उस स्थिति को कहते हैं जब कोई व्यक्ति रोजगार की तलाश में सक्रिय रूप से जुटता है लेकिन उसे काम नहीं मिल पाता। बेरोजगारी को अर्थव्यवस्था की स्थिति का एक महत्वपूर्ण मापक माना जाता है। बेरोजगारी को मापने का सबसे आम तरीका बेरोजगारी दर है।

बेरोजगारी एक महत्वपूर्ण आर्थिक सूचक है क्योंकि यह श्रमिकों की लाभकारी कार्य प्राप्त करने और अर्थव्यवस्था के उत्पादक उत्पादन में योगदान देने की क्षमता (या अक्षमता) को दर्शाती है। अधिक बेरोजगार श्रमिक कुल आर्थिक उत्पादन में कमी का संकेत देते हैं।जिसका असर हमारी अर्थव्यवस्था पर भी पड़ता है ।

भारत में बेरोज़गारी के कारणों में जाति-आधारित भेदभाव, धीमी आर्थिक वृद्धि और ज़्यादा आबादी जैसे अनेक कारण शामिल हैं। मौसमी कृषि,अनौपचारिक क्षेत्र, शिक्षा और कौशल में कमी, स्वचालित और सीमित पहुंच नौकरी के अवसर पैदा करने में और बाधा डालते हैं, जो भारत के श्रम बाज़ार की जटिल गतिशीलता को दर्शाते हैं।

8.4 बेरोज़गारी के प्रकार

बेरोज़गारी के प्रकारों को समझने के लिए आम तौर पर इसको उद्योग में बदलाव के कारण होने वाली संरचनात्मक बेरोज़गारी, आर्थिक मंदी के कारण होने वाली चक्रीय बेरोज़गारी, नौकरी बदलने के दौरान होने वाली घर्षण बेरोज़गारी, कुछ खास उद्योग में होने वाली मौसमी बेरोज़गारी और कम इस्तेमाल होने वाले श्रम में छिपी हुई बेरोज़गारी शामिल है। बेरोज़गारी के प्रकारों को हम निम्नलिखित प्रकार से समझ सकते हैं :-

अनिवार्य बेरोज़गारी: यह एक ऐसा परिदृश्य है जहाँ लोग सक्रिय रूप से नौकरियाँ ढूंढते हैं लेकिन ज़्यादा श्रम आपूर्ति के कारण उन्हें कोई नौकरी नहीं मिल पाती है ।

स्वैच्छिक बेरोज़गारी: यह बेरोज़गारी तब उत्पन्न होती है जब लोग नौकरी उपलब्ध होने के बावजूद काम न करने का विकल्प चुनते हैं, अक्सर वेतन, काम की गुणवत्ता या सम्मान संबंधी चिंताओं जैसे अनेक कारणों की वजह से यह स्थिति उत्पन्न होती है । उदाहरण स्वरूप एचएम समझ सकते हैं कि आज अनेक योग्य इंजीनियर कम वेतन वाली ग्राहक सेवा की नौकरी से मना इस लिए कर देते है क्योकि यह उनकी डिग्री और लागत मूल्य जो उनको उस डिग्री में खर्च करना पड़ा है उस अनुपात में नीच स्थिति में काम करने से मना करने के कारण होता है।

संरचनात्मक बेरोज़गारी: संरचनात्मक बेरोज़गारी का मुखी कारण अर्थव्यवस्था में बदलाव आना है, जिससे नौकरी की ज़रूरतों और कार्यबल के कौशल के बीच बेमेल परिस्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। उदाहरण के लिए, विनिर्माण उद्योग में स्वचालन के कारण फ़ैक्ट्री मज़दूरों की नौकरियाँ चली जाती हैं।

मौसमी बेरोज़गारी: यह उन उद्योग में काम करने वाले मज़दूरों को प्रभावित करती है जिनकी मौसमी मांग होती है, जिससे मौसम के बाद या पहले के दौरान अस्थायी बेरोज़गारी होती है।

उदाहरण के लिए, टूरिस्ट गाइड और होटल स्टाफ़ को ऑफ-पीक यात्रा का मौसम के दौरान बेरोज़गारी का सामना करना पड़ता है।

चक्रीय बेरोज़गारी:इस प्रकार की बेरोजगारी आर्थिक मंदी के कारण होती है जब कंपनियाँ मंदी के दौरान कर्मचारियों को निकाल देती हैं लेकिन वसूली के चरणों में उन्हें फिर से काम पर रख

लेती हैं।जिससे चक्रीय बेरोजगारी की स्थिति उत्पन्न होती है ।उदाहरण के लिए, कम उपभोक्ता खर्च के कारण आर्थिक मंदी के दौरान रिटेल सेक्टर में छंटनी कर दी जाती है ।

छिपी हुई बेरोज़गारी: यह उन क्षेत्रों में पाई जाती है जहाँ ज़्यादा कर्मचारी बहुत कम या कोई अतिरिक्त उत्पादकता नहीं देते हैं। उदाहरण के लिए, एक कार्यालय में कई इंटर्न ऐसे काम करते हैं जो संचालन में कोई मूल्य नहीं जोड़ते हैं ।

फ्रिक्शनल/ घर्षण बेरोज़गारी: नौकरी बदलने के दौरान अस्थायी बेरोज़गारी, क्योंकि लोग एक नौकरी छोड़कर दूसरी नौकरी की तलाश करते हैं।

धीमी आर्थिक वृद्धि: अविकसित अर्थव्यवस्था तेज़ी से बढ़ती आबादी की ज़रूरतों को पूरा करने के लिए पर्याप्त नौकरियाँ पैदा करने में विफल रहती है, जिसके परिणामस्वरूप बड़े पैमाने पर बेरोज़गारी होती है।

ज़्यादा आबादी: तेज़ी से जनसंख्या वृद्धि नौकरी की कमी को बढ़ाती है, जिससे बेरोज़गारी दर चिंताजनक स्तर पर पहुंच जाती है, जैसे कि 10वीं पंचवर्षीय योजना अवधि के दौरान 11.1 प्रतिशत थी।

कृषि का मौसमी स्वरूप: कृषि क्षेत्र काफी हद तक मौसमी है और केवल अस्थायी रोज़गार प्रदान करता है, जिससे ग्रामीण आबादी का एक बड़ा हिस्सा ऑफ-सीज़न के दौरान बेरोज़गार रहता है।

अनौपचारिक क्षेत्र की चुनौतियाँ: अधिकांश कार्यबल (गिग वर्कर्स) कम वेतन और खराब नौकरी सुरक्षा वाले असंगठित क्षेत्रों में काम करते हैं, जिससे वे अपने रोज़गार को अपर्याप्त मानते हैं।

कमज़ोर प्रदर्शन करने वाला सेवा क्षेत्र: जी०डी०पी० में महत्वपूर्ण योगदान देने के बावजूद, भारत में सेवा क्षेत्र विकसित देशों की तुलना में कार्यबल के केवल एक छोटे से हिस्से को रोज़गार देता है।

बेमेल शिक्षा: भारत में शिक्षा क्षेत्र छात्रों को उद्योग-संबंधी कौशल से लैस करने में विफल रहता है, जिससे बड़ी संख्या में स्नातक बेरोज़गार हो जाते हैं। उदाहरण के लिए, भारत के 1.5 मिलियन इंजीनियरिंग स्नातकों में से 80% के पास रोज़गार योग्य कौशल की कमी है।

उभरते उद्योगों में कौशल की कमी: नौकरी चाहने वालों के पास अक्सर आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस, डेटा एनालिटिक्स और रोबोटिक्स जैसे नए ज़माने के उद्योगों के लिए आवश्यक तकनीकी और सॉफ्ट स्किल्स की कमी होती है, जो उनकी रोज़गार क्षमता को सीमित करता है। आर्थिक सर्वेक्षण 2024 भारत के नौकरी बाज़ार को बाधित करने की AI की क्षमता पर प्रकाश डालता है, और इसके लाभों का लाभ उठाते हुए इसके जोखिमों को कम करने के लिए रणनीतियों का आग्रह करता है।

सीमित पहुंच: निरक्षरता, खराब संचार कौशल, अपर्याप्त बाल देखभाल और परिवहन की कमी जैसी बाधाएं कार्यबल की भागीदारी में बाधा डालती हैं, विशेष रूप से हाशिए पर पड़े समूहों के बीच।

ऑटोमेशन का प्रभाव: ऑटोमेशन और AI ने पारंपरिक नौकरियों को कम किया है, जबकि मशीन लर्निंग, ब्लॉकचेन और इसी तरह की तकनीकों में विशेष कौशल की मांग पैदा की है।

8.5 भारत में बेरोज़गारी के परिणाम

नवीनतम आवधिक श्रम बल सर्वेक्षण के अनुसार, भारत में बेरोज़गारी दर 2023-24 में घटकर 3.2 प्रतिशत हो गई, जो 2017-18 में 6 प्रतिशत से एक महत्वपूर्ण सुधार है। हालांकि, पिछले साल की तुलना में इसमें थोड़ी बढ़ोतरी हुई है, जहां बेरोजगारी दर 3.1 प्रतिशत थी। नवीनतम आवधिक श्रम बल सर्वेक्षण के अनुसार, भारत में सामान्य स्थिति में वर्तमान बेरोजगारी दर 3.2 प्रतिशत है, जबकि वर्तमान साप्ताहिक स्थिति में यह 4.9 प्रतिशत है। सांख्यिकी और कार्यक्रम कार्यान्वयन मंत्रालय ने घोषणा की है कि शुरुआती रिपोर्ट में जनवरी से मार्च 2025 तक का डेटा शामिल होगा, जिसके बाद मासिक अपडेट जारी किए जाएंगे। इस बदलाव का मकसद देश के लेबर मार्केट के बारे में, खासकर जिला स्तर पर, ज़्यादा तेज़ी से और ज़्यादा विस्तृत जानकारी देना है। ज़्यादा सटीक आंकड़ों की उपलब्धता से नीति निर्माताओं को शहरी और ग्रामीण दोनों क्षेत्रों के लिए लक्षित रणनीतियाँ बनाने और लागू करने में मदद मिलेगी।

भारत में बेरोज़गारी के निम्नलिखित परिणाम हो सकते हैं -

वित्तीय कठिनाइयाँ : भारत में बेरोज़गारी की दर बढ़ने से इसमें सर्वप्रथम वित्तीय कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है जिससे नियमित आय की कमी हो सकती है**,** जिससे व्यक्तियों के लिए अपनी बुनियादी ज़रूरतों को पूरा करना और एक सभ्य जीवन स्तर बनाए रखना मुश्किल हो जाता है।

क्रय शक्ति में कमी : इससे व्यक्तिगत क्रय शक्ति में कमी आ सकती है, क्योंकि व्यक्तियों के पास वस्तुओं और सेवाओं पर खर्च करने के लिए सीमित या कोई आय नहीं होती है।

सामाजिक कलंक और मनोवैज्ञानिक प्रभाव: इसके परिणामस्वरूप सामाजिक कलंक और सामाजिक बहिष्कार की भावना उत्पन्न हो सकती है। कार्य न मिलने के कारण व्यक्तियों को आलोचना**,** आत्मसम्मान में कमी और मनोवैज्ञानिक तनाव का सामना करना पड़ सकता है।

बढ़ती असमानता : रोजगार के अवसरों की कमी और आय की असमानताएँ अमीर और निर्धन के मध्य की खाई को और बढ़ा देते हैं, जिससे सामाजिक अशांति और असंतोष की स्थिति उत्पन्न हो सकती है।

प्रतिभा पलायन : योग्य पेशेवर विदेश में रोजगार के अवसर खोजते हैं, जिससे कुशल कार्यबल की हानि और देश के समग्र विकास में बाधा उत्पन्न हो सकती है।

सामाजिक अशांति : रोजगार की कमी से नवयुवकों में निराशा, बेहतर रोजगार के अवसरों और सरकारी हस्तक्षेप की माँग को लेकर विरोध प्रदर्शनों, हड़तालों से सामाजिक अशांति की स्थिति बन सकती है।

आर्थिक बोझ : सामाजिक कल्याण कार्यक्रम, बेरोज़गारी-लाभ और रोजगार सृजन पहल आदि कार्यक्रमों से सरकार का आर्थिक बोझ बढ सकता है। इसके अतिरिक्त, उत्पादक-मानव पूंजी की हानि आर्थिक वृद्धि और विकास में बाधा उत्पन्न कर सकती है।

8.6 बेरोजगारी उन्मूलन हेतु दिशा निर्देश

1. **कौशल विकास और व्यावसायिक प्रशिक्षण को बढ़ावा देना** : रोजगार क्षमता बढ़ाने के लिए कौशल विकास और व्यावसायिक प्रशिक्षण में निवेश करना अत्यंत महत्वपूर्ण है। सरकार को निजी संस्थानों और उद्योग विशेषज्ञों के साथ मिलकर बाजार की मांगों के अनुरूप व्यापक प्रशिक्षण कार्यक्रम उपलब्ध कराने चाहिए। इससे व्यक्तियों को उद्योग से संबंधित कौशल प्राप्त होंगे, जिससे उनकी रोजगार क्षमता बढ़ेगी।
2. **उद्यमिता और स्टार्टअप को प्रोत्साहन** : उद्यमिता को बढ़ावा देने से रोजगार के नए अवसर पैदा हो सकते हैं और आर्थिक विकास को गति मिल सकती है। सरकार स्टार्टअप के लिए इनक्यूबेशन सेंटर स्थापित कर सकती है, वित्तीय प्रोत्साहन प्रदान कर सकती है और नियामक प्रक्रियाओं को सरल बना सकती है। नवाचार और उद्यमिता की संस्कृति को प्रोत्साहित करने से रोजगार सृजित होगा और आत्मनिर्भरता की संस्कृति को बढ़ावा मिलेगा।
3. **विनिर्माण और औद्योगिक क्षेत्रों को सुदृढ़ बनाना** : विनिर्माण और औद्योगिक क्षेत्रों को पुनर्जीवित करने से रोजगार सृजन पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ सकता है। **पीएलआई योजना** जैसी सरकारी पहलों पर जोर देना घरेलू और विदेशी निवेश आकर्षित करने, नियमों को सुव्यवस्थित करने और अवसंरचना विकास को समर्थन देने में सहायक हो सकता है। इससे नए उद्योगों की स्थापना, मौजूदा उद्योगों का विस्तार और फलस्वरूप रोजगार सृजन में सुविधा होती है।

4. **ग्रामीण रोजगार के अवसरों को बढ़ाना** : भारत की आबादी का एक बड़ा हिस्सा ग्रामीण क्षेत्रों में रहता है, जहां रोजगार के अवसर अक्सर सीमित होते हैं। कृषि आधुनिकीकरण, ग्रामीण अवसंरचना विकास और ग्रामीण उद्योगों के लिए कौशल प्रशिक्षण जैसी ग्रामीण विकास योजनाओं पर ध्यान केंद्रित करके इन क्षेत्रों में रोजगार की संभावनाओं को बेहतर बनाया जा सकता है। इसके अलावा, विकेंद्रीकृत उद्योगों को बढ़ावा देना और ग्रामीण उद्यमिता को प्रोत्साहित करना ग्रामीण अर्थव्यवस्थाओं को मजबूत कर सकता है।
5. **सार्वजनिक-निजी भागीदारी (पीपीपी) को प्रोत्साहन** : बेरोजगारी से निपटने में सार्वजनिक और निजी क्षेत्रों का सहयोग अत्यंत महत्वपूर्ण है। यह निवेशक-अनुकूल नीतियों, कर प्रोत्साहनों और रोजगारोन्मुखी पहलों के समर्थन के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है। भारत सरकार अवसंरचना विकास में निजी भागीदारी को प्रोत्साहित करने के लिए सार्वजनिक-निजी भागीदारी (पीपीपी) को सक्रिय रूप से बढ़ावा दे रही है। इन पहलों में वायबिलिटी गैप फंडिंग (वीजीएफ), भारतीय अवसंरचना परियोजना विकास कोष (आईआईपीडीएफ), भारतीय अवसंरचना वित्त कंपनी (आईआईएफसी) और प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (एफडीआई) शामिल हैं।
6. **डिजिटलीकरण और प्रौद्योगिकी की क्षमता का दोहन** : डिजिटलीकरण को अपनाना और उभरती प्रौद्योगिकियों का लाभ उठाना रोजगार के नए अवसर खोल सकता है। डिजिटल परिवर्तन उद्योगों में व्यापक रूप से फैल रहा है, जिससे व्यवसायों के संचालन और ग्राहकों के साथ जुड़ने के तरीके में मौलिक परिवर्तन आ रहा है। डिजिटल साक्षरता को बढ़ावा देना, गिग इकॉनमी के काम के लिए डिजिटल प्लेटफॉर्म का समर्थन करना और ई-कॉमर्स और फिनटेक जैसे प्रौद्योगिकी-आधारित क्षेत्रों को बढ़ावा देना जैसी पहल रोजगार सृजित कर सकती हैं और डिजिटल रूप से कुशल कार्यबल को सशक्त बना सकती हैं।
7. **शिक्षा और उद्योग के बीच सहयोग को मजबूत करना** : बेरोजगारी कम करने के लिए शिक्षा और उद्योग की आवश्यकताओं के बीच की खाई को पाटना अत्यंत महत्वपूर्ण है। शिक्षण संस्थानों और उद्योगों के बीच सहयोग से उद्योग की जरूरतों के अनुरूप पाठ्यक्रम, इंटर्नशिप कार्यक्रम और व्यावसायिक प्रशिक्षण संबंधी समझौते विकसित किए जा सकते हैं। इससे छात्रों को व्यावहारिक कौशल प्राप्त होंगे और उनकी रोजगार क्षमता में सुधार होगा।

8.7 सार संक्षेप

भारत की जनसांख्यिकीय लाभांश, जो कि बड़ी संख्या में युवा आबादी से युक्त है, देश में बेरोजगारी की गंभीर समस्या के समाधान के लिए अपार संभावनाएं रखती है। बेरोजगारी को प्रभावी ढंग से कम करने के लिए, कौशल विकास और रोजगार सृजन पहलों के माध्यम से इस जनसांख्यिकीय लाभांश का लाभ उठाना अत्यंत आवश्यक है। गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, व्यावसायिक प्रशिक्षण और उद्यमिता कार्यक्रमों को प्राथमिकता देकर, भारत अपने युवाओं को रोजगार बाजार की मांगों को पूरा करने के लिए आवश्यक कौशल और ज्ञान से लैस कर सकता है। सार्वजनिक-निजी भागीदारी और उद्योग सहयोग को प्रोत्साहित करने से युवा कार्यबल के कौशल और आकांक्षाओं के अनुरूप अधिक रोजगार के अवसर सृजित करने में मदद मिल सकती है।

इसके अतिरिक्त, नवाचार को बढ़ावा देना, स्टार्टअप्स का समर्थन करना और वित्त तक पहुंच बढ़ाना एक उद्यमशीलतापूर्ण पारिस्थितिकी तंत्र को पोषित कर सकता है, जिससे युवा व्यक्ति अपने लिए रोजगार के अवसर सृजित कर सकें। भारत के जनसांख्यिकीय लाभांश को सशक्त बनाकर, देश अपने युवाओं की ऊर्जा और प्रतिभा का उपयोग आर्थिक विकास को गति देने, बेरोजगारी को कम करने और सभी के लिए एक समृद्ध भविष्य को बढ़ावा देने के लिए कर सकता है। **इस प्रकार से भारत के जनसांख्यिकीय लाभांश को सशक्त बना कर भारत में बेरोजगारी को कम किया जा सकता है।**

8.8 अभ्यास प्रश्न

1. बेरोजगारी से आप क्या समझते हैं ?
2. बेरोजगारी की प्रकृति क्या है?
3. बेरोजगारी के कितने प्रकार हैं ?
4. भारत में बेरोजगारी के परिणामों पर एक लेख लिखिए ।
5. बेरोजगारी उन्मूलन हेतु आप क्या आवश्यक दिशा निर्देश दे सकते हैं ?
6. बेरोजगारी उन्मूलन में समाज की भूमिका का वर्णन कीजिये ।

8.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. https://mospi.gov.in/sites/default/files/press_release/H_Press%20Note%20on%20PLFS%20Ann
2. ual%20Report%20Jul-23-Jun24.pdf
3. https://vajiramandravi.com/upsc-exam/unemployment-rate-in-india/
4. https://vajiramandravi.com/upsc-exam/unemployment-rate-in-india/

इकाई 9: शहरी गरीबी का लैंगिक आयाम
(Gender Dimension of Urban Poverty)

इकाई की रूपरेखा

9.1 परिचय
9.2 उद्देश्य
9.3 शहरी गरीबी के मुख्य लैंगिक आयाम
9.4 लैंगिक समानता और आर्थिक विकास
9.5 लिंग-आधारित गरीबी को खत्म करने के लिए एक बहुआयामी दृष्टिकोण
9.6 सार संक्षेप
9.7 अभ्यास प्रश्न
9.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

9.1 परिचय

भारतीय संदर्भ में गरीबी एक ऐसी समस्या है जो आम जन हेतु अनेक सरकारी प्रयासों के बावजूद भी बड़ी संख्या में आज भी लोग गरीबी रेखा के नीचे जीवन जीने को मजबूर है ।यदि गरीबी का अध्ययन किया जाता है तो ये पाया गया है कि गरीबी के अनेक कारण है जिसमें से लिंग संबधित आयाम बहुत महत्वपूर्ण है । लिंग संबधित आयाम या लिंग भेदभाव सामाजिक-आर्थिक और राजनीतिक अवसरों की कमी से जुड़ा हुआ होता है।

भारत में शहरी गरीबी का जेंडर आयाम प्रमुखता से हमको यह दिखाता है कि महिलाएं असमान रूप से इसमें प्रभावित होती हैं, जहां सामाजिक-सांस्कृतिक मानदंडों, शिक्षा/कौशल की कमी, अनौपचारिक नौकरियों, बिना वेतन के देखभाल और अपर्याप्त सेवाओं के कारण लिंग आधारित गरीबी का अनुभव किया जाता हैं, जिसमें गरीबी के कारण आवास, स्वास्थ्य और आजीविका से संबन्धित अनेक प्रकार की असुरक्षा का सामना करना पड़ता है, इससे खासकर महिलाये प्रभावित होती हैं और एक तथ्य यह भी है कि महिला प्रधान घरों में गरीबी की संभावना अधिक होती है, शिक्षा इसे कम करने में एक प्रमुख कारक है, जो प्रणालीगत असमानताओं को उजागर करता है। कुछ विचारों के अनुसार, ग्रामीण और शहरी गरीबी आपस में जुड़ी हुई हैं,अतः इसको साझा रूप से समझने पर ही इसके कारणों का अध्ययन किया जा सकता है ।

9.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप :-

- ✓ शहरी गरीबी के आशय को समझ सकेंगे ।
- ✓ शहरी गरीबी के मुख्य लैंगिक आयामों को समझ कर उनका वर्णन कर सकेंगे ।
- ✓ लैंगिक समानता और आर्थिक विकास के मध्य संबंध को समझ सकेंगे और उसको लैंगिक असमानता के कारकों से जोड़ कर वर्णन कर सकेंगे ।
- ✓ लिंग-आधारित गरीबी को खत्म करने के लिए एक बहुआयामी दृष्टिकोण को समझ कर उसका प्रयोग कर सकेंगे ।

9.3 शहरी गरीबी के मुख्य लैंगिक आयाम

भारत में गरीबी के दो मुख्य आयाम हैं:

गरीबी का क्षेत्रीय आयाम : भारत में गरीबी का एक क्षेत्रीय आयाम है। ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में गरीबी का स्तर अलग-अलग है। भारत के विभिन्न राज्यों और क्षेत्रों में भी यह व्यापक रूप से

भिन्न है। इसका मुख्य कारण व्यापक क्षेत्रीय असमानताएं हैं। भारत के समृद्ध और गरीब राज्यों की आर्थिक वृद्धि में अंतर-राज्यीय असंतुलन व्यापक है। सुधारों के बाद की अवधि (1990-2004) के दौरान, कुछ राज्यों ने आर्थिक विकास में तेजी दिखाई है, जबकि कुछ राज्यों की वृद्धि धीमी हुई है। भारतीय संघ के विभिन्न राज्यों में निवेश का माहौल भी काफी भिन्न है। आर्थिक सुधारों के बाद भारत में ग्रामीण-शहरी विभाजन बढ़ रहा है। कृषि विकास की गति धीमी हो गई है, जो रोजगार सृजन और गरीबी उन्मूलन के लिए चिंता का विषय है।

गरीबी का सामाजिक आयाम: भारत में गरीबी केवल एक आर्थिक समस्या नहीं बल्कि एक सामाजिक समस्या भी है। आज गरीबी को अनेक प्रकार के अभावों का परिणाम माना जाता है। अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों में यह असमान रूप से अधिक है। दिहाड़ी मजदूरों में गरीबी का अनुपात और भी अधिक है। 1990 के दशक में गरीबी में अनुसूचित जातियों का हिस्सा बढ़ गया था, जबकि अनुसूचित जातियों का हिस्सा लगभग स्थिर रहा। भारत में जनजातियाँ गरीब और वंचित हैं। ग्रामीण और शहरी परिवारों की दिहाड़ी श्रम बाजार पर बढ़ती निर्भरता गरीबों को बाजार जोखिमों के प्रति संवेदनशील बनाती है और अस्थाई गरीबी को बढ़ाती है, जिसके तहत श्रम बाजार में उतार-चढ़ाव के कारण परिवार गरीबी से बाहर और अंदर आते-जाते रहते हैं। बिहार, मध्य प्रदेश और उत्तर प्रदेश में ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों में अनुसूचित जातियों में गरीबी की दर बहुत अधिक है। आय गरीबी और शिक्षा एवं स्वास्थ्य जैसे मानव विकास के अन्य संकेतकों के मामले में अनुसूचित जातियां सबसे निचले पायदान पर हैं।

भारत में गरीबी का लैंगिक आयाम अत्यंत महत्वपूर्ण है। श्रम बाजार में महिलाओं के साथ लैंगिक भेदभाव होता है। महिलाओं का निरक्षर होना इसका प्रमुख कारण हैं। गरीब परिवारों की महिलाएं सभी प्रकार की अभावग्रस्तता से सबसे अधिक पीड़ित होती हैं। जीवन स्तर सूचकांक के आंकड़ों से पता चलता है कि ग्रामीण क्षेत्रों के गरीब परिवारों के 57 प्रतिशत बच्चे और शहरी क्षेत्रों के गरीब परिवारों के 50 प्रतिशत बच्चे कुपोषण के शिकार हैं। इसलिए गरीबी कम करने की रणनीति में आय संबंधी गरीबी और बुनियादी जरूरतों और अधिकारों की अपर्याप्तता के साथ-साथ उत्पादक संपत्तियों और सामाजिक बुनियादी ढांचे तक अपर्याप्त पहुंच से परे की सोच शामिल होनी चाहिए। अतः, गरीबी कम करने की प्रक्रिया को गति देने में गरीबों का सशक्तिकरण एक महत्वपूर्ण कारक माना जाता है। सशक्तिकरण का लक्ष्य शासन और विकास संबंधी निर्णयों में गरीबों को भूमिका प्रदान करना है। वर्तमान में गैर सरकारी संगठन, दान देने वाली एजेंसियां और विकास कार्यकर्ता नीति निर्माताओं पर दबाव डाल रहे हैं कि वे गरीबी उन्मूलन परियोजनाओं में सभी हितधारकों को शामिल करें, पंचायतों को सक्रिय करें, स्वयं सहायता समूहों और उपयोगकर्ता समूहों जैसी संस्थाओं को बढ़ावा दें और गरीबों को सामूहिक कार्रवाई के लिए संगठित करें।

9.4 लैंगिक समानता और आर्थिक विकास

लिंग आधारित भेदभाव को केवल लिंग के आधार पर लोगों के लिए उपलब्ध अवसरों और पुरस्कारों में अंतर के रूप में परिभाषित किया गया है। यह एक सामाजिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा पुरुषों और महिलाओ के साथ समान व्यवहार नहीं किया जाता है। भारत में लैंगिक असमानता के कई मामले प्रचलित हैं। समान प्रकृति और काम की मात्रा के लिए, पुरुषों और महिलाओं के लिए मजबूरी का असमान भुगतान है। संपत्ति का स्वामित्व आमतौर पर परिवार के पुरुष सदस्यों के नाम पर होता है। परिवार में महत्वपूर्ण मुद्दों पर एक महिला के दृष्टिकोण को महत्वपूर्ण नहीं माना जाता है। कई विकसित देशों में पुरुष और महिला के बीच अधिक समानता है। औद्योगिक रूप से विकसित देशों में महिलाएं ज्यादातर शैक्षिक रूप से योग्य, आर्थिक रूप से सुरक्षित और सामाजिक रूप से सशक्त हैं। विकसित देश लिंग विकास सूचकांक (जेंडर डेवलपमेंट इंडेक्स) (जीडीआई) में उच्च स्थिति पर हैं। दूसरी ओर, विकासशील देशों में महिलाओं को पर्याप्त विशेषाधिकार प्राप्त नहीं हैं। उच्च आर्थिक विकास के बावजूद, तीसरी दुनिया के देशों में लैंगिक असमानता जारी है। भारत में महिलाओं के साथ घर और बाहर दोनों जगह भेदभाव किया जाता है। यूनिसेफ के अनुसार, ‘‘भारत एकमात्र बड़ा देश है जहां लड़कों की तुलना में अधिक लड़कियों की मृत्यु होती है और लड़कों की तुलना में लड़कियों में स्कूल छोड़ने की दर अधिक है‘‘। भारत में महिलाओं के प्रति अपराध बड़े पैमाने पर हो रहा है। तीव्र आर्थिक विकास, सूक्ष्म ऋण कार्यक्रम और स्वयं सहायता समूहों के विकास और महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी बढ़ाने के प्रशंसनीय प्रयासों के बावजूद, भारत में लैंगिक असमानता गहरी और लगातार बनी हुई है। शिक्षा, स्वास्थ्य, राजनीति और व्यवसाय जैसे अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों में लैंगिक असमानता व्याप्त है।

इसके साथ ही लिंग आधारित गरीबी को प्रमुखता से महिलाओं से ही जोड़ कर देखा जाता है अतः उक्त आयामों के साथ ही कुछ अन्य कारणों पर भी चर्चा करना आवश्यक प्रतीत होता है जैसे :-

- **शहरीकरण और झुग्गियों का विकास :** जहां शहरीकरण ने आम जन जीवन को आधुनिक जरूरतों से सुसज्जित किया है वहीं दूसरी ओर शहर की तरफ पलायन करती हुयी एक बड़ी आबादी ने शहर की संरचना में कई प्रकार के परिवर्तन भी किए हैं । बड़ी संख्या में लोग नौकरी ,आजीविका ,अच्छी शिक्षा ,सुख सुविधाए एवं स्वास्थ्य के परिप्रेक्ष में शहरों की ओर लगातार पालन कर रहे हैं जिससे गंदी बस्ती एवं झुग्गी झोपड़ियों का विस्तार तेजी से हो रहा है ।मुंबई की धारावी बस्ती जो कि किलोमीटरों में बसी हुयी है इसका प्रत्यक्ष उढहरण है । जब बड़ी संख्या में झुग्गी झोपड़ियों का विस्तार हो रहा है तो यह स्वाभाविक है कि गरीबी की दर बढ़ेगी और असमनता का भी सामना करना पड़ेगा ।

❖ **असमानताएँ—आर्थिक, सामाजिक और स्थान संबंधी:** झुग्गी - झोपड़ियों के विस्तार **से** आर्थिक, सामाजिक और स्थान संबंधी तानाबाना ध्वस्त हो रहा है और एक बड़ी आबादी के लिए दैनिक जीवन के योगी अवशयकताओं में भी कमी आएगी ।

❖ **बुनियादी सेवाओं की उपलब्धता:** ऐसी परिस्थिति में बुनियादी सेवाओं की उपलब्धता सुचारु रूप से नहीं प्रदान की जा सकती है ,जिसके सापेक्ष अनेक बुनियादी जरूरतों को पूरा करने में समस्याओं का सामना करना पड़ेगा । जो व्यक्ति गरीबी के कारण शहरों की ओर पलायन करते है वे दैनिक मजदूर ,रेडी लगाने वाले या फ़ेहेरी वाले हो सकते है या फिर यदि थोड़ी भी समर्थता है तो कोई छोटा सा व्यवसाय शुरू कर लिया जाता है ,जहां पुरुष शहर में आजीविका हेतु संघर्ष करता है वही उसका परिवार जो कि दूसरी जगह पर है वह भी अनेक समस्याओं का सामना करता है जिसका कारण है बढ़ती महंगाई और ग्रामीण क्षेत्रों में सुविधाओं का पर्याप्त न होना ।

❖ **प्रवासन और गतिशीलता:** प्रवसन की स्थिति में धीरे धीरे पूरा परिवार अपनी अवशयकताओं की पूर्ति हेतु शहर की ओर पलायन कर जाता है । जिसमें अधिकांश परिस्थितियों में महिला एवं पुरुष दोनों दैनिक रोजगार में लग जाते है जिससे पूरे परिवार और बछों का पालन पोषण हो सके । इस संदर्भ में महिलाओं को अनेक प्रकार के कार्य करने हेतु अनेक ऐसी परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है जो प्रतिकूल नहीं होती है और सीके साथ ही महिलाओं का अशिक्षित होना और समस्या उत्पन्न करता है ।

❖ **लिंग, शहरीकरण और परिवार का मुखिया होना:** कई बार ऐसा भी देखा गया है कि परिवार का मुखिया महिला है और उस परिस्थिति में पूरे परिवार का बोझ महिला पर आ जाता है और अपने परिवार के भरण पोषण हेतु महिला शोषण का शिकार होती है अनेक प्रकार की वर्जनाओं को भी सहना पड़ता है । इसमें अशिक्षा सबसे बड़ा शाप होता है । जिससे अधिक मेहनत के प्रतिफल में केएम वेतन मिलता है और मजबूरी वश घर के छोटे बच्चों को भी कम में लगना पड़ता है और छोटे छोटे नौनिहाल अनेक प्रकार के जोखिम भरे कार्यों में संलिप्त हो जाते हैं ।

❖ **लिंग और शहरी गरीबी का आधिकारिक मूल्यांकन :** गरीबी को अभिशाप इसी लिए नहीं कहा गया है कि उसमें व्यक्ति आर्थिक विपन्नता में होता है अपितु गरीबी अपने साथ अनेक समस्याएँ भी लाती है जैसे –शिक्षा का अभाव ,खराब स्वास्थ्य दशाएँ ,दैनिक जीवन साफ सफाई का अभाव इत्यादि । कई बार यह प्रश्न उठता है कि शिक्षा हेतु

सरकार अनेक कदम उठा रही है फिर भी बच्चे स्कूल में या तो जा नहीं रहे है या फिर बीच में ही शिक्षा छोड़ देते है किन्तु यहाँ पर यह समझना आवश्यक है कि यदि परिवार को रूज़ की रोटी का ही जुगाड़ नहीं है तो किस प्रकार से शिक्षा की ओर निहारा जाए ।
परिस्थिति जन्य विपदा के समय परिवार का प्रत्येक व्यक्ति पहले कुछ कमाने का सोचता है ताकि पूरे परिवार का भरण पोषण हो सके ।
जब भी लिंग आधारित गरीबी की बात की जाती है तो हमेशा ही महिलाओं और उनके साथ दोयम दर्जे का व्यवहार दोषी पाया गया है यहाँ तक की पुरुषों की तुलना में महिलाओं को कम आँका जाता है और परिणाम स्वरूप उनको पुरुषों की तुलना में कम वेतन भी दिया जाता है ।

9.5 लिंग-आधारित गरीबी को खत्म करने के लिए एक बहुआयामी दृष्टिकोण

भारत में लिंग-आधारित गरीबी को खत्म करने के लिए एक बहुआयामी दृष्टिकोण की आवश्यकता है जो समान शिक्षा और कौशल, वित्तीय समावेशन (SHG, माइक्रोफाइनेंस), कार्यस्थल में समानता (समान वेतन, निष्पक्ष भर्ती), कानूनी अधिकारों को मजबूत करने (संपत्ति, विरासत), देखभाल अर्थव्यवस्था में निवेश करने, और बिना वेतन वाले काम और भेदभाव जैसे मूल कारणों से निपटने के लिए लिंग-उत्तरदायी नीतियों (बजटिंग, सामाजिक सुरक्षा) को लागू करने पर ध्यान केंद्रित करे, जिसे जागरूकता और डेटा-संचालित रणनीतियों का समर्थन प्राप्त हो।

1. **शिक्षा और कौशल विकास:** लड़कियों की शिक्षा को बढ़ावा देना: प्राथमिक से उच्च शिक्षा तक पहुंच सुनिश्चित करें, मौजूदा कमियों को दूर करें।

- ❖ **व्यावसायिक प्रशिक्षण:** बेहतर रोजगार के लिए STEM और डिजिटल क्षेत्रों सहित उच्च मांग वाले क्षेत्रों में कौशल प्रदान करें।
- ❖ **लिंग-संवेदनशील पाठ्यक्रम:** रूढ़ियों को चुनौती देने के लिए स्कूलों और कार्यस्थलों में प्रशिक्षण शुरू करें।

2. **आर्थिक सशक्तिकरण और वित्तीय समावेशन:** स्वयं सहायता समूह (SHG): सामूहिक बचत और ऋण पहुंच के लिए SHG और महिला सहकारी समितियों को मजबूत करें।

- ❖ **वित्त तक पहुंच:** महिला उद्यमियों और श्रमिकों के लिए ऋण, लोन और बैंक खातों का विस्तार करें।
- ❖ **बिना वेतन वाले देखभाल कार्य का समर्थन करें:** महिलाओं का बोझ कम करने और उन्हें सवेतन काम के लिए मुक्त करने के लिए चाइल्डकैअर, बुजुर्गों की देखभाल और सार्वजनिक सेवाओं में निवेश करें।

3. कार्यस्थल और कानूनी सुधार: समान वेतन और अवसर: समान काम के लिए समान वेतन और निष्पक्ष भर्ती/पदोन्नति सुनिश्चित करने वाले कानूनों को लागू करें।

- **संपत्ति अधिकारों को मजबूत करें:** महिलाओं के भूमि और संपत्ति के स्वामित्व, विरासत और नियंत्रण के कानूनी अधिकारों को सुनिश्चित करें।
- **मातृत्व लाभ और सुरक्षा:** मजबूत मातृत्व अवकाश, क्रेच सुविधाएं और कार्यस्थल सुरक्षा प्रदान करें।

4. सामाजिक और नीतिगत हस्तक्षेप: लिंग बजटिंग: सभी सार्वजनिक खर्चों में लिंग प्राथमिकताओं को एकीकृत करें।

- **कानूनी साक्षरता:** महिलाओं को उनके अधिकारों (संपत्ति, श्रम, सामाजिक) के बारे में शिक्षित करें।
- **लक्षित योजनाएं:** बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ, महिला शक्ति केंद्र जैसे कार्यक्रमों का विस्तार करें और अकेली माताओं को सहायता प्रदान करें।
- **डेटा-संचालित नीतियां:** प्रभावी हस्तक्षेप डिजाइन करने के लिए लिंग-विभाजित डेटा का उपयोग करें।

5. मानदंडों और हिंसा को चुनौती देना: जागरूकता अभियान: सामाजिक पूर्वाग्रहों और रूढ़ियों का मुकाबला करें।

- **बाल विवाह उन्मूलन:** बाल विवाह को समाप्त करने के स्थानीय प्रयासों का समर्थन करें।
- **पीड़ितों के लिए समर्थन:** हिंसा का सामना करने वाली महिलाओं के लिए वन स्टॉप सेंटर को मजबूत करें।

शिक्षा, आर्थिक पहुंच, कानूनी अधिकारों और सामाजिक मानदंडों को एक साथ संबोधित करके, भारत लिंग-आधारित गरीबी को काफी कम कर सकता है और अपनी पूरी मानव क्षमता को उजागर कर सकता है।

9.6 सार संक्षेप

लिंग आधारित गरीबी दूर करने का पहला उपाय लिंग आधारित भेदभाव समाप्त करना है ,जब तक हम लिंग ,धर्म, जाति ,और अनेक प्रकार की क्षेत्रीय वर्जनाओं में उलझे रहेंगे जब तक लिंग आधारित समानता नहीं आती तब तक इस विषय में सोचा नहीं जा सकता है ।राष्ट्रीय स्तर पर भारत सरकार ने इस भेदभाव को मिटाने के लिए अनेक कदम उढ़ाये है ,किन्तु यहाँ प्राशन यह उठता है कि सिर्फ नीति बना देना ही पर्याप्त नहीं है वरन इसको धरातल पर लाना आवश्यक है इसके साथ ही घर से लेकर समुदाय और

समुदाय से लेकर राज्य और राज्य से राष्ट्र तक प्रत्येक नागरिक को इसको दरतल पर उतारने का प्रयास किया जाना चाहिए।

हालांकि सरकार द्वारा कार्यान्वित योजनाएं जैसे बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ , प्रधानमंत्री आवास योजना (शहरी और ग्रामीण), राष्ट्रीय सामाजिक सहायता कार्यक्रम, प्रधानमंत्री व्यय वंदना योजना और किशोरियों के लिए योजना महिलाओं और लड़कियों को सामाजिक रूप से सुरक्षित बनाने में सहायता करती हैं, लैंगिक समानता को बढ़ावा देने के लिए अन्य संघीय पहलों में लैंगिक हिंसा को समाप्त करने के लिए राष्ट्रीय कार्य योजना का विकास करना शामिल है, जिसका उद्देश्य लैंगिक हिंसा को रोकना और पीड़ितों और बचे हुए लोगों को सहायता प्रदान करना है; उन व्यक्तियों को अनुमति देना जो खुद को महिला या पुरुष के रूप में नहीं पहचानते हैं,और शिक्षा, स्वास्थ्य सेवा और रोजगार के अवसर उपलब्ध कराना, महिलाओं के अधिकारों की रक्षा के लिए कानून लागू करना और निर्णय लेने में महिलाओं की भागीदारी को बढ़ावा देना जैसी सरकारी पहल महिलाओं को सशक्त बनाने में योगदान दे सकती हैं।

महिलाओं को ज़मीनी स्तर पर राजनीतिक नेतृत्व की मुख्यधारा में लाने के लिए, सरकार ने पंचायती राज संस्थानों में 33% सीटें महिलाओं के लिए आरक्षित की हैं। पंचायती राज मंत्रालय द्वारा पंचायत हितधारकों, जिसमें चुनी हुई महिला प्रतिनिधि भी शामिल हैं, की क्षमता निर्माण किया जाता है ताकि महिलाओं को शासन प्रक्रियाओं में प्रभावी ढंग से भाग लेने के लिए सशक्त बनाया जा सके।

जेंडर बजट को 2005 से भारत के केंद्रीय बजट का हिस्सा बनाया गया है, जिसमें महिलाओं के लिए समर्पित कार्यक्रमों/योजनाओं के लिए फंड का आवंटन किया जाता है। इस प्रयास के माध्यम से सरकार सभी क्षेत्रों और शासन के सभी स्तरों पर लैंगिक अंतर को कम करने पर ध्यान केंद्रित करते हुए लगातार लैंगिक समानता को बढ़ावा दे रही है। जिसका उपयोग मंत्रालयों द्वारा सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक जीवन के सभी पहलुओं में लैंगिक अंतर को कम करने के उद्देश्य से योजनाओं/कार्यक्रमों के लिए किया जाता है।

9.7 अभ्यास प्रश्न

1. शहरी गरीबी से आप क्या समझते हैं ?
2. शहरी गरीबी के मुख्य लैंगिक आयामों का वर्णन कीजिये।
3. लैंगिक समानता और आर्थिक विकास के मध्य संबंध को समझाइए।

4. लैंगिक असमानता के कारकों का वर्णन कीजिये ।
5. लिंग-आधारित गरीबी को खत्म करने के लिए एक बहुआयामी दृष्टिकोण का वर्णन उदाहरण देकर कीजिये ।

9.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. https://www.tandfonline.com/doi/full/10.1080/01436597.2023.2237426
2. Deaton and Kozel. The Great Indian Poverty Debate, Laxmi Publications, 1 January 2006
3. Martin Ravallion. The Debate on Globalization, Poverty, and Inequality: Why Measurement
4. Matters, Policy Research Working Papers, April, 2003.
5. Nilakantha Rath and V M Dandekar. Poverty in India, Economic and Political Weekly, Vol. 6, Issue
6. No. 2, 09 January, 1971
7. Amartya Sen. Poverty and Inequality, Stanford University Press, 2006
8. Jonathan Haughton, Shahidur R. Khandker. Handbook on Poverty & Inequality, World Bank Publications, 27 March, 2009
9. Abhijit Banerjee and Esther Duflo. Poor Economics: A Radical Rethinking of the Way to Fight Global Poverty, 26 April 2011
10. Rustagi, Preet, Sandip Sarkar & Pinaki Joddar, "Gender Dimensions of Urban
11. Poverty", in Ministry of Housing and Urban Poverty Alleviation, India Urban
12. Poverty Report: 2009, OUP.
13. Himanshu, "Recent Trends in Poverty and Inequality: Some Preliminary
14. Results", Economic and Political Weekly, Vol. 42 No. 6.
15. https://www.drishtiias.com/hindi/daily-updates/daily-news-editorials/urban-poverty-and-it-s-solution
16. https://d1wqtxts1xzle7.cloudfront.net/52624585/Urbanisation_and_urban_poverty_A_gender_20170414-15748-1a05njm-libre.pdf?1492218250=&response-content-disposition=inline%3B+filename%3DUrbanisation_and_urban_poverty_a_gender.pdf&Expires=1767195862&Signature=dn2Qxhw7JdbNDWBLOuJnH1WyP2t3bbTK7Pi16YHT-xvcVQA0HrUcDOQqIwN1M4KKMqr7KPXllohoad5T-Pg4bnhFLA-daJ9LkQZZPVtxt0JA8aR6nXu1M2tuHwo8itwg1h2QKOcNn4e6kKCgQEWlwWhA6NgXFCUihKe9KxizyXvkS1amW3YX9UxzjyjGT3mWwCnn55ewzGSdghqz0GJBla-yCoNBUiU1XmffURBz~9fRcvnlS~dubGeCFuoIUXFc2NiGjqY2T0zwPVjJTRWUs2fZ8kbRd8GzQq7uLYYfAYfsWtW-Efzmo3JL5GIU0nNs1dRn~Eer~DFdIi4o5ENPLQ__&Key-Pair-Id=APKAJLOHF5GGSLRBV4ZA
17. Agnihotri, S.B. (2000). *Sex Ratio Patterns in the Indian Population-A Fresh Exploration*, New Delhi: Sage.

इकाई 10: शहरीय शासन का अर्थ एवं सिद्धांत

(Meaning and Principle of Urban Governance)

इकाई की रुपरेखा

10.0 उद्देश्य

10.1 परिचय

10.2 भारत में नगरीय शासन का इतिहास

10.3 नगरीय शासन का अर्थ एवं सिद्धांत

10.4 भारत में नगरीय शासन

10.5 व्यवस्था का तुलनात्मक विश्लेषण

10.6 मुद्दे एवं दृष्टिकोण

10.7 निष्कर्ष

10.8 अभ्यास प्रश्न

10.9 भावी अध्ययन

10.0 उद्देश्य (Objectives)

इस अध्ययन के बाद हम जान सकेंगे कि–

1. नगरीय शासन क्या है?
2. भारत में नगरीय शासन विकास कैसे हुआ?
3. भारत के संदर्भ में नगरीय शासन अर्थ, सिद्धांत और कार्य।
4. भारत में नगरीय शासन से जुड़े प्रमुख मुद्दे।

10.1 परिचय (Introduction)

भारत अब सिर्फ गांवों का देश नहीं रह गया है। नयी सहस्राब्दी के मौजूदा दौर में 30 करोड़ से अधिक भारतीय 3700 से अधिक कस्बों और नगरों में रहते हैं। 1947 में भारत की आजादी के वक्त यह संख्या 60 लाख ही थी। (chakrabati). पिछले 50 साल में भारत की आबादी ढाई गुना से अधिक बढ़ी है, लेकिन नगरीय भारत का विकास पांच गुना से अधिक हुआ है। आंकड़ों के लिहाज से देखें तो भारत में नगरीय आबादी दुनिया में चीन के बाद दूसरे स्थान पर है। यही नहीं, भारत की जनसंख्या फ्रांस, जर्मनी और यूनाइटेड किंगडम की संयुक्त जनसंख्या से भी करीब दोगुनी है।

वर्ष 2018 के आंकड़े बताते हैं कि एशिया में नगरीय आबादी की प्रतिशतता 48.6 प्रतिशत है, जबकि भारत में वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार 31.6 फीसदी शहरों में रहती है। शहरीकरण के विकास के साथ प्रशासनिक विकास की भी जरूरत महसूस होती है। यही वजह है कि शहरों में नगरीकरण की व्यवस्था स्वतंत्र शाखा के रूप में उभरी। इसका सिद्धांत सामाजिक अध्ययन का एक प्रचलित माध्यम बन गया है, जिससे न सिर्फ शहरीकरण की तेज गति बल्कि नगरीय भारत के संदर्भ में आवश्यक प्रेरणा को समझने का प्रयास किया जा सकता है (kundu,2011). सार्वजनिक प्रशासन तंत्र के एक हिस्से के रूप में उभरा नगरीय शासन स्वयं में एक विशेष क्षेत्र बनकर उभरा। नगरीय प्रशासन से जुड़ी विभिन्न समस्याओं के निस्तारण के लिये इसके साथ विशेष व्यावहारिकता की आवश्यकता होती है। नगरीय विकास प्रबंधन से शहरीकरण, पर्यावरणीय विचार, नगरीय राजनीति, नगरीय अवस्थापना ढांचा, नगरीय नियोजन, अनौपचारिक क्षेत्रों के विकास आदि मुद्दों का हल निकाला जा सकता है (Rao, 2015). इन सभी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये सक्षम, प्रभावी और जिम्मेदार नगरीय स्थानीय प्रशासन की स्थापना जरूरी है। 1992 में भारतीय संविधान के 74वें संशोधन में नगर निकायों को नगरीकरण के तीसरे स्तर के रूप में परिभाषित किया गया है और इन्हें सांस्थानिक ढांचे में उपयुक्त शक्तियां भी प्रदान की गयी हैं। इस संविधान संशोधन ने भारत में नगरीय शासन की अवधारणा को विस्तार दिया। नगरीय नगरीकरण की विशेषता इसका नागरिक केन्द्रित दृष्टिकोण और ऐसे मसलों का निस्तारण करना है जो मांगों से उभरते हैं। नगरीय क्षेत्र उत्पादन और बाजारी गतिविधियों के जरिये किसी राज्य के राजस्व में भी महत्वपूर्ण योगदान करते हैं।

हालांकि, 19वीं सदी के भारतीय विद्वानों ने नगरीय शासन और राजनीति को तुच्छ एवं अप्रासंगिक मानते हुए नकार दिया था। (Leonardo, 2008). इनमें से अधिकतर ने यह निष्कर्ष उच्चाधिकारियों के निजी दस्तावेजों, भारत सरकार की रिपोर्ट आदि के जरिये लंदन और दिल्ली में नीतियों के निर्धारण के अध्ययन के बाद निकाला। तत्कालीन ब्रिटिश नीतियों में बताया गया था कि 'स्थानीय स्वायत्त नगरीकरण एक ऐसा पेड़ है, जिसकी जड़ें कभी मजबूत नहीं होतीं। ऐसे में आधुनिक भारत की राजनीति में इस तरह की व्यवस्था का पहचान नहीं पा सकी।' अन्य विद्वान स्थानीय स्वशासन की विफलता के कारण गिनाते हुए कहते हैं, 'निगरानी का ऐसा कठोर तंत्र विकसित किया गया था, जो सबसे छोटे नगर निकाय से लेकर भारतीय संघीय सचिव तक जाता था।' इस गैरजरूरी नियंत्रण और बजट के अभाव के कारण जनसुविधाओं के अवसर खत्म होते गये। नगर निकायों की इस बेरंग तस्वीर में कुछ सुधार तब हुआ, जब 1899 में लॉर्ड कर्जन ने भारत में बतौर वायसराय जिम्मा संभाला। कर्जन ने स्थानीय नगरीकरण को गतिशील और प्रभावी बनाने के प्रयास किये। यद्यपि स्थानीय स्वशासन की नीतियां न तो आधिकारिक उद्देश्यों की पूर्ति

करने में ही सक्षम थीं, न ही राष्ट्रवादी विचारों को बढ़ावा देने के योग्य, फिर भी निरंतर मूल्यांकन और संशोधनों के जरिये यह स्थानीय राजनीति और प्रशासन के लिये पोषक बन गयी।

10.2 भारत में नगरीय शासन का इतिहास (History of Urban Governance in India)

सिंधु घाटी सभ्यता को आदिम युग की सबसे परिष्कृत, व्यवस्थित और सुनियोजित नगर व्यवस्था माना जाता है। फेयरसर्विस (1971) ने मोहनजो–दारो को महान सभ्यता बताया है। वह कहते हैं कि यदि मोहनजो–दारो में 40 हजार के करीब आबादी के रहने का वैज्ञानिकों का अनुमान सही है तो नगर को अजेय बनाये रखने, वहां सामने आने वाली समस्याओं के निस्तारण और लोगों पर नियंत्रण के लिये कोई न कोई प्रशासनिक व्यवस्था भी अवश्य रही होगी, जो केन्द्रीकृत रूप से पूरे नगर का प्रतिनिधित्व करती होगी। अलग–अलग दौर में नगरों की भूमिका लोगों के कल्याण के लिये सुविधाएं मुहैया करवाने की रही। यहां हम विभिन्न काल में नगरों में नगरीकरण व्यवस्था के बारे में जानेंगे:

मुगलकाल (The Mughal Period)

मुगलकाल में प्रशासनिक तंत्र का संचालन कोतवाल करता था। आईन–ए–अकबर में अब्दुल फजल ने नगरों के आठ कार्यों की जानकारी दी है। इनमें चोरों की पहचान करना, दामों पर नियंत्रण रखना और तौल–माप की निगरानी करना, नगर में रात्रि गश्त, नगर में घरों की पूरी जानकारी रखना, अनजान लोगों पर नजर रखना, बेघर लोगों में से चुनकर जासूसों की नियुक्ति करना, गुमशुदा लोगों के सामान–संपत्ति को संरक्षा में रखना, पशुधन को मारने पर रोक लगाना (गाय, बैल, भैंस) और महिलाओं को उनकी इच्छा के विरुद्ध जलाये जाने से रोकना (सती करना) शामिल हैं (Fazal,1949). मजूमदार (2004) ने अपने अध्ययन में पाया कि कोतवाल का एकमात्र कार्य लोगों की संपत्ति की रक्षा और नागरिकों को सुरक्षा प्रदान करना था। यद्यपि कोतवाल लोगों की अन्य सुविधाओं के लिये भी कार्य करते थे, लेकिन यह तंत्र कैसे काम करता था, इसका कोई दस्तावेजीकरण उपलब्ध नहीं है। हालांकि, मुगल काल के बाद के दौर में यह प्रशासनिक व्यवस्था ध्वस्त हो गयी। मजूमदार बताते हैं कि मुगल नगरीकरण के विघटन और उस दौर में मची उथल–पुथल में यह स्वशासन संस्था नगरों और गांवों से पूरी तरह खत्म हो गयी। (ibid).

दूसरा चरण (Phase 2) 1688–1882

यद्यपि ब्रिटिश शासनकाल में कई विकासपरक कार्यक्रम संचालित किये गये, लेकिन नगरीय शासन के पुनर्गठन को लेकर कोई कदम प्रारंभ में नहीं उठाया गया। हालांकि, 1688 में पहली बार मद्रास सिटी में नगर निकाय बनाया गया, जिसका उद्‌देश्य चार्टर 1687 के तहत ब्रिटेन में तय नीतियों का पालन करना था। नगर निकाय के गठन का मुख्य मकसद लगान, कर की वसूली और भारत के शिक्षित लोगों की मदद से राजनैतिक लक्ष्य हासिल करना था। जनसुविधाओं के नाम पर तब पांच शिलिंग (तत्कालीन ब्रिटिश मुद्रा) कर वसूला जाता था, लेकिन निरंकुश नगरीकरण ने इस पर भी छह पेंस बढ़ा दिये थे (Maheswari, 2000). निकाय गठन के अन्य कारणों में स्थानीय संस्थानों में नागरिक और सफाई संबंधी कार्यों को लागू करना था। वर्मा (1998) के अनुसार इसका उद्‌देश्य महामारी पर रोकथाम और नाले–नालियों की व्यवस्था, पेयजल वितरण व्यवस्था व राजकोष को बढ़ाना था। लेकिन स्थानीय शासन को न तो कभी पूर्ण सक्षम बनने दिया गया, न ही उसे 'वीटो' शक्ति दी गयी। उनके वित्तीय संसाधन बेहद सीमित थे और उन पर जिला कलेक्टर का नियंत्रण था।

1726 में नगर निकायों को मेयर कोर्ट का स्वरूप दिया गया, जिसे निश्चित न्यायिक अधिकार और शक्तियां प्रदान की गयीं। इससे निकाय को प्रशासनिक–न्यायिक स्वरूप मिला। भारत में 1793 में चार्टर एक्ट 1793 के पारित होने के बाद निकायों को वैधानिक श्रेणी दी गयी। इस एक्क्ट के तहत तीन निकाय मद्रास, कलकत्ता और बंबई का गठन किया गया। इन निकायों को करवसूली का अधिकार प्रदान किया गया। यद्यपि प्रारंभ में भारतीय नागरिक नगर निकाय की इन व्यवस्थाओं पर मोहित दिखे, लेकिन राष्ट्रवादी विचारधारा के उभार ने उनमें स्वनिर्धारित व्यवस्था के विकास के लिये संघर्ष को प्रेरित किया। इस तरह

स्थानीय निकायों की शुरुआत से ही वे ब्रिटिश नगरीकरण से पृथक्कीकृत होने लगे। वायसराय काउंसिल के सदस्य सैमुअल लैंग ने बजट भाषण में स्थानीय निकायों के जरिये स्थानीय संसाधनों के उपयोग की वकालत की। 1870 में लॉर्ड मेयो के प्रस्ताव में स्थानीय निकायों के लिये चुनाव प्रक्रिया प्रारंभ करने की बात कही गयी। इस प्रस्ताव में नगर निकायों को वीटो जैसी शक्तियां प्रदान की गयीं, जिससे स्थानीय निकायों के कार्यों और वित्तीय विकेन्द्रीकरण को बल मिला। हालांकि, यह प्रस्ताव नगरीय और ग्रामीण दोनों तरह के निकायों पर लागू था, लेकिन इसके कोई निश्चित मानक और सिद्धांत तय नहीं थे।

लॉर्ड रिपन के प्रस्ताव के बाद का काल (Post Lord Rippon Resolution Period)

लॉर्ड रिपन ने ईमानदारी से उन कमियों को दूर करने का प्रयास किया, जो पहले नगर निकायों के प्रशासन में सामने आयी थीं। यही वजह है कि उन्हें नगरीय स्थानीय नगरीकरण का जनक माना जाता है, क्योंकि उन्होंने ही स्थानीय स्वशासन की अवधारणा को पुष्ट किया। लॉर्ड रिपन ने इस बात पर जोर दिया कि स्थानीय स्वशासन का एकमात्र उद्देश्य भारतीयों को अनी समस्याओं, मसलों के समाधान और निस्तारण के प्रबंधन के लिये योग्य बनाना था। लॉर्ड रिपन के अनुसार, 'मैं भारतीय समुदाय से बुद्धिमान, प्रभावी लोगों का चयन कर उन्हें क्रमिक प्रशिक्षण देना चाहता हूं, ताकि वे स्थानीय मामलों के प्रबंधन में सक्रिय रूप से सहभागिता निभा सकें।' रिपन ने इस बात पर स्पष्ट रूप से जोर दिया कि उनकी ओर से प्रशासन के विकेन्द्रीकरण की जो सिफारिश की गयी है, उसका मकसद प्रशासनिक व्यवस्था में सुधार करना नहीं, बल्कि राजनीतिक और लोकप्रिय शिक्षण के साधन के तौर पर स्थानीय नगरीकरण को बतौर साधन प्रयोग करना है। स्थानीय स्वशासन की स्थापना का विचार नया नहीं था। भारत के बड़े शहरों में नगर निकाय पहले से थे, लेकिन वहां नगर आयुक्त की नियुक्ति सरकार यानी ब्रिटिश नगरीकरण द्वारा ही की जाती थी। इसी तरह ग्रामीण क्षेत्रों में भी सफाई, सड़क निर्माण, शिक्षा आदि मुद्दों के समाधान के लिये समितियां बनायी गयी थीं। लेकिन यहां भी आधिकारिक नियंत्रण और निगरानी बना रहता था। चूंकि अधिकारियों के नियंत्रण में जो समितियां आती थीं, उनका दायरा बहुत बड़ा था। इसके अलावा अधिकारी अलग–अलग स्थानों पर लोगों की अलग–अलग जरूरतों से भी अधिक वाकिफ नहीं थे। ऐसे में लॉर्ड रिपन ने 1882 में अपने प्रस्ताव में इन सब बाधाओं को दूर कर स्वशासन को और अधिक स्वायत्त बनाने का प्रयास किया।

ग्रामीण क्षेत्रों में जिला परिषद और स्थानीय परिषद के प्रतिनिधि स्वरूप में तहसील और तालुक स्थापित थे। यहां सदस्य नगरीकरण द्वारा मनोनीत किये जाने के बजाय लोगों द्वारा चुने जाने थे। इसी तरह नगरों में नगर निकायों की शक्तियां और जिम्मेदारियां अधिक थीं। वहां कुछ सदस्यों का सीधा निर्वाचन और कुछ का नगरीकरण द्वारा मनोनयन करने की व्यवस्था दी गयी। अध्यक्ष के गैर अधिकारी होने पर जोर दिया गया। इसी तरह मनोनीत सदस्यों की संख्या कुल सदस्य संख्या की एक तिहाई से अधिक नहीं होनी चाहिये। स्वास्थ्य, शिक्षा, सड़क, संचार का प्रबंधन स्थानीय निकायों को सौंपा गया। उन्हें निश्चित वित्तीय अधिकार दिये गये, जबकि नगरीकरण यानी सरकार को निगरानी का अधिकार दिया गया। स्थानीय निकायों को सरकारी नियंत्रण से स्वतंत्र रखा गया, लेकिन यदि निकाय अपने कार्य और जिम्मेदारियों का निर्वहन ठीक से नहीं कर पाते तो उन्हें भंग करने का अधिकार सरकार को था। हालांकि, सामान्यतः सरकार स्थानीय निकायों के मामलों में दखल नहीं देती थी। 1883–85 में स्थानीय स्वशासन एक्ट भारत के विभिन्न प्रांतों में पारित किया गया। पथप्रकाश, गलियों की सफाई, शिक्षा, स्वास्थ्य, जल वितरण आदि कार्य मद्रास, पंजाब और बंगाल के स्थानीय निकाय शासनों को सौंप दिये गये।

भारत सरकार एक्ट (Government India Acts) 1919, 1935

प्रथम विश्वयुद्ध के बाद का काल भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष के लिये वरदान साबित हुआ, क्योंकि इसी दौर में स्वायत्त राज्य और संवैधानिक व्यवस्थाओं में सुधारों की मांग तेजी से उठी। भारतीय लोग मॉर्ले–मिन्टो सुधारों से संतुष्ट नहीं थे। सिंह (2000) बताते हैं कि प्रशासनिक शाखाओं में भारतीयों के बढ़ते प्रभाव और

स्वायत्त नगरीकरण संस्थाओं के क्रमिक विकास ने भारतीयों को उत्तरदायी भारत सरकार की मांग के लिये प्रेरित किया। इसके पीछे मूल विचार यह था कि भारतीयों को भी विकास का अवसर मिलना चाहिये। भारतीयों को उन्नति के अवसर प्रदान करने की सकारात्मक सोच के साथ ब्रिटिश नगरीकरण ने सरकार के जनकार्यों से जुड़े अधिकारों को कम कर स्थानीय निकायों को ये अधिकार दिये। इस तरह मोंटेग–चेम्सफोर्ड रिपोर्ट प्रकाशित हुयी। लॉर्ड चेम्सफोर्ड ने 16 मई 1918 को सरकार के गैरजरूरी नियंत्रण को कम करने और सरकार व स्थानीय निकायों के बीच कार्यों के विभाजन को पुनर्निर्धारित करने की नीति लागू करने की घोषणा की। एक्ट 1920 में लागू हुआ, जिसके तहत स्थानीय निकायों को स्वास्थ्य, शिक्षा, स्वच्छता, सड़क, कृषि, स्थानीय निर्णयों समेत कई अधिकार पहले से अधिक स्वायत्त रूप में दिये गये। इस तरह कई संशोधनों से होते हुए स्थानीय निकाय स्वतंत्र नगरीकरण की स्थिति तक पहुंचे। निकायों में नगरीकरण के लिये किये जाने वाले मनोनयन की पूर्ववर्ती प्रक्रिया भी धीरे–धीरे समाप्त होती गयी।

पुनर्निर्माण काल (Period of Reconstruction) 1935–1949

1935 के गवर्नमेंट ऑफ इंडिया एक्ट ने स्थानीय नगरीय इकाइयों को नवीनीकृत किया। इस एक्ट ने स्थानीय निकायों को और शक्तिसंपन्न करने के साथ प्रांतीय प्रशासन को स्वायत्त बनाते हुए द्वैध नगरीकरण (Diarchy) व्यवस्था को समाप्त किया। हालांकि, पूर्ववर्ती संशोधनों की तरह 1935 के इस एक्ट से भी बहुत करिश्माई बदलाव नहीं आये, लेकिन तुलनात्मक रूप से पिछले एक्ट के मुकाबले इसने स्थानीय नगरीय निकायों में विकास को बढ़ावा दिया।

स्वतंत्रता पश्चात व्यवस्था (Post Independence Setup) 1950 और आगे

1950 में भारतीय संविधान के लागू होने के बाद का काल स्थानीय नगरीकरण के लिये बेहतर रहा। संवैधानिक संशोधनों के जरिये स्थानीय निकायों को राज्य सूची में शामिल किया गया। इसके अलावा राज्य नीतियों के नीतिनिर्देशक तत्वों के अनुरूप तीसरी पंचवर्षीय योजना में नगरों के नगरीय नियोजन और विकास को प्राथमिकता में रखा गया। हालांकि, नगरीय क्षेत्रों की प्रगति ग्रामीण क्षेत्रों के मुकाबले धीमी थी, इसकी वजह यह थी कि लोकतंत्र जनसमूह का प्रतिनिधित्व करता है और उस दौर में दो तिहाई से अधिक आबादी गांवों में ही रहती थी। यही वजह थी कि दो पंचवर्षीय योजनाओं के बीत जाने के बाद ही नगरीय व्यवस्थाओं पर ध्यान केन्द्रित किया जा सका। 80 के दशक में भारतीय अर्थव्यवस्था ने उदारीकरण की ओर पहला कदम बढ़ाया और नगरीय नीतियां आर्थिक नीतियों में शामिल हो गयीं। सातवीं पंचवर्षीय योजना में इस दिशा में एक कदम और बढ़ाया गया, जब नगरीय विकास की प्रक्रिया में निजी उपक्रमों को निवेश की संभावनाएं दी गयीं। योजना में आवास संबंधी सभी नीतियों को पुनर्गठित कर आमूल परिवर्तन किया गया और आवास निर्माण संबंधी जिम्मेदारी निजी क्षेत्र को दी गयी। इस प्रक्रिया में सरकार की भूमिका सिर्फ आवासीय सुविधाओं के लिये जरूरी संसाधन उपलब्ध कराने, गरीबों के लिये सब्सिडाइज्ड आवास तय करने और निर्माण कार्यों को सुचारु रूप से संपन्न कराने हेतु अधिग्रहण के माध्यम से भूमि उपलब्ध कराने तक ही रखी गयी। (GoI: 7th Plan).

आवासीय क्षेत्रों में निवेश और बाजारी मांग को देखते हुए नेशनल हाउसिंग बैंक की स्थापना की जरूरत इस योजना में जतायी गयी। इसके अलावा इसमें National Urban Infrastructure Development Finance Corporation की स्थापना पर भी जोर दिया गया, जिससे स्थानीय निकायों की अवस्थापना विकास की क्षमता को बढ़ायी जा सके, जिसमें विशेषतः जल वितरण, सीवरेज सुविधा शामिल थीं। 1988 में पहली नेशनल हाउसिंग पॉलिसी (NHP) घोषित की गयी। इस नीति का मकसद आवासहीनता को खत्म करना, आवासों की अनुपलब्धता की स्थिति को दूर करना और बुनियादी जरूरतों के न्यूनतम स्तर को सबके लिये उपलब्ध कराना था। इस नीति में सरकार की भूमिका निर्धनतम और पिछड़े वर्गों, अन्य आय वर्गों और निजी उपक्रमों को निर्बाध और बढ़ी मात्रा में भूमि व अन्य सुविधायें

उपलब्ध कराने की थी (Ibid). IDSMT सातवीं पंचवर्षीय योजना में भी सर्वाधिक महत्वपूर्ण योजना के तौर पर शामिल रही।

10.3 भारत में नगरीय नगरीकरण का अर्थ एवं सिद्धांत (Meaning and Principles of Urban Governance in India)

नगर पालिकाएं और नगर निगम भारत में वैधानिक निकाय हैं। हालांकि, अधिसूचित क्षेत्र समिति (Notified Area Committee) और नगरीय क्षेत्र समिति (Urban Area Committee) में पूर्ण या आंशिक रूप से मनोनीत प्रतिनिधि भी होते हैं। भारतीय संविधान के 74वें संशोधन (1992) के अनुसार नगरों में स्थानीय नगरीकरण के रूप में नगर पालिकाओं अथवा नगर पंचायतों की स्थापना की जानी चाहिये, जो निर्वाचित इकाइयां हों। 1994 में राज्य निकाय विधानों में व्यापक बदलावों से पहले स्थानीय निकाय राज्य सरकार के पूरी तरह अधीन काम करते थे, जो इन्हें विस्तार देने अथवा इसके कार्यक्षेत्रों में बेरोकटोक, विधायी प्रावधानों में बिना किसी बदलाव के ही दखल देने में सक्षम थी।

नगरीय शासन को नगरीय क्षेत्रों के परिषदीय कार्यों को संचालित करने वाले राजनीतिक, वित्तीय एवं प्रशासनिक अधिकरण के तौर पर भी परिभाषित किया जा सकता है। इसे इस तरह भी कहा जा सकता है कि यह उन तंत्रों, प्रक्रियाओं, संस्थाओं और संबंधों का सघन स्वरूप है, जिनके जरिये नागरिकों और समूहों को अधिकार, सुविधाएं प्रदान की जाती हैं और जिससे उनके बीच का अंतर समाप्त होता है। इस प्रकार नगरीय शासन सरकार का ही छोटा स्वरूप है, जिसके जरिये जनसंसाधनों एवं समस्याओं का प्रबंधन प्रभावी ढंग से किया जा सकता है। यह क्षमतावान नगरीकरण है, जो समाज की महत्वपूर्ण जरूरतों को पूर्ण कर सकता है। नगरीकरण का प्रभावी लोकतांत्रिक स्वरूप जनसहभागिता, उत्तरदायित्व एवं पारदर्शिता से ही संभव हो पाता है। ऐसे में अच्छे नगरीय शासन के कुछ महत्वपूर्ण गुण निम्नवत हैं:

1. सहभागिता (Participatory)
2. सततता (Sustainable)
3. वैधानिक एवं जनता के बीच स्वीकृत (Legitimate and acceptable to public)
4. पारदर्शी (Transparent)
5. समानता एवं न्याय को बढ़ावा देना (Promoting equity and equality)
6. संसाधनों के विकास एवं नगरीकरण के तरीकों के विकास में सक्षम (Able to develop the resources and methods of governance)
7. लैंगिक संतुलन को बढ़ावा देना (Promoting gender balance)
8. विभिन्न दृष्टिकोणों के प्रति स्वीकार्यता (Tolerance and acceptance to diverse perspectives)
9. सामाजिक उद्देश्यों के लिये संसाधनों को गतिशील करने में सक्षम (Able to mobilize resources for social purposes)
10. कानूनी नियमों द्वारा संचालित (Operates by rule of law)
11. संसाधनों का क्षमतावान एवं प्रभावी उपयोग (Efficient and effective use of resources)
12. उत्तरदायित्व, भरोसा और सम्मानजनक (Engenders and commands respect and trust accountable)
13. स्थानीय समाधानों को समझना और इनकी जिम्मेदारी लेना (Able to define and take ownership of local solutions)
14. सामर्थ्यवान एवं सुविधाएं देने वाला (Enabling and facilitative)
15. नियंत्रक के बजाय नियामक (Regulatory rather than controler)

वेबस्टर के नये शब्दकोष के अनुसार उत्तरदायित्व वह गुण अथवा स्थिति है, जिसका अर्थ उत्तरदायी होना है। यहां उत्तरदायी उन सभी को हर वो जरूरी सूचना उपलब्ध कराने के लिये हमेशा तैयार रहता

है, जो उन्हें चाहिये होती है। वह अपने कार्यों, असफलता और सफलता के लिये स्वयं जिम्मेदार है। ऐसे में जन उत्तरदायित्व नगरीय शासन के लिये सबसे अहम गुण बन जाता है, क्योंकि स्थानीय नगरीकरण की सेवाओं से ही लोग प्रत्यक्ष, सबसे पहले, त्वरित, दैनिक रूप से एवं व्यक्तिगत रूप से जुड़ते हैं। यह नगरीकरण का वह हिस्सा है, जिसे नागरिक आसानी से समझ सकते हैं और इसे लेकर अपनी राय दे सकते हैं, जिससे वे आसानी से अपनी शिकायतें बता सकते हैं, जो उनकी बातों पर आसानी से प्रतिक्रिया दे सकता है और जिसके विरुद्ध वे तब आसानी से प्रतिकार व्यक्त कर सकते हैं, जब वे असंतुष्ट हों। वस्तुतः यह लोकतंत्र की बुनियाद है, जिसके जरिये जनता के राजनीतिक सिद्धांत सामने आते हैं और जिन्हें वे निरंतर विकसित करते रहते हैं। यह लोगों के द्वारा नगरीकरण की अभिव्यक्ति है।

पारदर्शिता एवं उत्तरदायित्व दो ऐसे पहलू हैं, जिन्हें एक–दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता, क्योंकि यदि कोई पारदर्शी है तो वह स्वतः ही उत्तरदायी भी हो जाता है। बिना पारदर्शिता के कोई उत्तरदायी नहीं हो सकता है। अच्छे नगरीय शासन में निम्न वजहों से पारदर्शिता होना अत्यावश्यक हैः

1. जनता का विश्वास जीतना
2. जनता की गैरजरूरी आलोचना से बचना
3. जनता के प्रति उत्तरदायी होना

10.4 भारत में नगरीय शासन (Urban Governance in India)

संवैधानिक विकास एवं नगरीय शासन के विकास में बहुत निकटता है। भारत के सन्दर्भ में नगरीय शासन का राजनीतिक आधार अंग्रेजी की उपयोगिता था, जैसाकि जॉन स्टुअर्ट मिल (Mill 1861) के लेखन 'local representative bodies' में परिलक्षित हुआ है। मिल के अनुसार स्थानीय नगरीकरण का एक प्रमुख कारण नागरिकों को शिक्षा प्रदान करना भी था। 1882 में रिपन के प्रस्ताव में भी समान सोच सामने आती है। रिपन के प्रस्ताव में निरंकुश जिला प्रशासन के स्थान पर स्थानीय नगरीकरण के माध्यम से स्वतंत्र राजनीतिक जीवन की छोटी शुरुआत की परिकल्पना की गयी है। नगर निकाय जनगणना के आधार पर निर्धारित नगरीय क्षेत्रों में ही होते हैं। किसी क्षेत्र को जनगणना के आंकड़ों को दृष्टिगत रखते हुए निम्न मापदंडों के अनुसार ही नगरीय क्षेत्र घोषित किया जाता हैः

1. पांच हजार की आबादी
2. गैर कृषि क्षेत्रों में आबादी का घनत्व न्यूनतम चार सौ हो

हालांकि, कुछ राज्य सरकारों ने आयसृजन की क्षमता के स्तर और उपरोक्त जनसंख्या मानकों से अधिक पर ही नगर निकाय की स्थापना की व्यवस्था भी दी थी। ऐसे में 74वें संविधान संशोधन में भी नगर निकायों की तीन श्रेणियां तय की गयी हैं:

1. परिवर्तनशील नगरीय क्षेत्रों में नगर पंचायत स्थापित होंगी
2. छोटे नगरीय क्षेत्रों में नगर पालिकाएं, और
3. बड़े नगरीय क्षेत्रों में नगर निगम स्थापित किये जायेंगे

राज्य सरकारों ने 74वें संशोधन से अप्रभावित निर्णय लेने का अधिकार दिया, लेकिन दो समस्याओं का समाधान नहीं निकल सका। 1. नगर पालिका परिषदों और नगर निगमों के कार्यों में अंतर और 2. छावनी परिषदों के भविष्य में लोकतंत्रीकरण की प्रक्रिया। ब्रिटिश व्यवस्था में नगर निकाय नगरीकरण के अधीन बेहद सीमित दायरे में सीमित अधिकारों के साथ काम करते थे (Dillon's Rule) जिससे इनकी अभिरुचियां एवं विविधता भी सीमित होती थी। दूसरी ओर, जर्मन सिद्धांत में स्थानीय निकायों को हर उस कार्य, गतिविधि के संचालन का अधिकार है, जो किसी उच्च वैधानिक संस्था के अधिकार क्षेत्र अथवा संवैधानिक प्रावधानों में शामिल नहीं हों। उदाहरण के लिये, भारत में शुरूआती निकाय विधान में निकायों को स्वास्थ्य, शिक्षा, संस्कृति, जनकल्याण, जनसुविधाएं, सफाई व्यवस्था आदि का जिम्मा देने का प्रावधान था (e.g. Bengal Municipal Act, 1932, Section 108) लेकिन ऐसा करने से संविधान में बतायी गयीं राज्य सूची के कार्यों की पूरी श्रृंखला निकायों में शामिल हो जाती (Datta 1982).

भारत में नगरीय शासन के आंतरिक रूप से तीन अहम कारक हैं:

1. पहला बल 1991 के आर्थिक उदारीकरण के दौर में सामने आयी सुधारवादी प्रक्रियाओं और नीतियों को नियंत्रित करता है
2. दूसरा बल विश्व बैंक, अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष जैसे वैश्विक संस्थानों की मदद से अच्छे नगरीकरण के संचालन को निर्धारित करता है
3. तीसरा बल उन नगरीय सुधार कार्यक्रमों का है, जिन्हें भारतीय सरकार ने लागू किया है, उदाहरण के लिये जवाहरलाल नेहरू नेशनल अर्बन रिन्यूअल मिशन (JNNURM) जो वर्ष 2007 में शुरू हुआ, जिसके बाद Smart Cities Mission (SCM), AMRUT, HRIDAY, SBM आदि योजनाएं–नीतियां संचालित की गयीं

इन तीन बलों, कारकों ने एकल अथवा संयुक्त रूप से भारत में नगरीय स्थानीय शासन को परिवर्तित किया है। उदाहरण के लिये, सार्वजनिक उपक्रमों को जनता की नयी जरूरतों के प्रबंधन के हिसाब से पुनर्गठित किया गया, निजी उपक्रमों की सहभागिता बढ़ायी गयी, हितधारकों की व्यवस्था के हिसाब से सेवा नियमों के नये स्वरूप, सरकारी संस्थानों की गतिविधियों को गैरराजनीतिक करते हुए आर्थिक लक्ष्यों की ओर मोड़ना, राजनीतिक दखलंदाजी को कम करते हुए क्षमता में और अधिक बढ़ोतरी करना, कारपोरेट समूहों द्वारा संचालित होने वाली वित्तीय व्यवस्था को बढ़ावा देना और स्थानीय शासन का नये स्वरूप में प्रबंधन करना आदि शामिल हैं। नगरीय भारत की स्थानीय शासनव्यवस्था में इस तरह के परिवर्तनों से भारत वैश्विक व्यवस्था का हिस्सा बना। यूनाइटेड किंगडम, न्यूजीलैंड, आस्ट्रेलिया स्थानीय नगरीय शासन व्यवस्था में नये स्वरूपों को अपनाने में सबसे आगे हैं। नगरीय शासन अवधारणा का उभार वर्ष 1990 और 1992 के रियो अर्थ समिट व 1996 में इस्तांबूल में आयोजित हैबिटेट–4 कांफ्रेंस से माना जा सकता है। इन आयोजनों में केंद्रीय सरकारों के अलावा स्थानीय नगरीकरण और गैर सरकारी संस्थाओं के प्रतिनिधियों को भी शामिल किया गया। इसका मकसद इन सभी को एक मंच पर लाकर सतत पर्यावरणीय एवं सामाजिक विकास की दिशा में मिलकर काम किया जा सके। यह वह दौर था, जब स्थानीय सरकारें विखंडन एवं और अधिक बदले हुए स्वरूप के अभियानों से जूझ रहे थे और स्थानीय नगरीकरण नगरीय शासन में बदल चुके थे। इन बदलावों की प्रेरणा सरकार के निचले स्तर पर वित्तीय प्रतिबंधों (विशेषकर यूरोपीय देशों में) के कारण मिली। इसके फलस्वरूप स्थानीय नगरीकरण ने विभिन्न सेवाओं के संचालन के लिये निजी समूहों से करार किये, जिम्मेदारियों को स्वयंसेवी संस्थाओं का सौंपा गया और बेहद सीमित संसाधनों के क्षमतावान उपयोग के जरिये आंतरिक स्पर्धा को जन्म दिया।

10.5 व्यवस्था का तुलनात्मक विश्लेषण (Comparative Analysis of the System)

एक अच्छा नगरीकरण निश्चित रूप से वह है, जो भ्रष्टाचारमुक्त हो और विकासशील हो। विश्व बैंक, संयुक्त राष्ट्र संघ जैसे कई राष्ट्रीय–अंतर्राष्ट्रीय संस्थानों ने कर्मचारियों की अक्षमता, पारदर्शिता के अभाव, सार्वजनिक कोष के दुरुपयोग, लालफीताशाही जैसी कमियों को दूर करने के लिये अच्छे नगरीय शासन की अवधारणा को बल दिया। संयुक्त राष्ट्र के अनुसार अच्छा नगरीकरण जनता के प्रति उत्तरदायित्व, पारदर्शिता, क्षमता और जवाबदेह होता है। नगरीय क्षेत्रों के विकास के प्रति सार्वजनिक, निजी और सरकारी उत्तरदायित्व तथा चढ़ती हुई विकास दर अच्छे नगरीकरण के प्रतीक हैं।

चीन और भारत (China and India)

लियॉन वैन डैन डूल, फ्रैंक हेंड्रिक्स, अल्बर्टो जियानोली और लींज शैप ने भारत और चीन में नगरीय विकास की तुलना की है। भारत की तरह ही चीन भी बाजारी अर्थव्यवस्था में योजनागत परिवर्तनों के दौर से गुजर रहा है और परिवर्तन की इस प्रक्रिया में पूंजी, श्रम, तकनीक, सूचनाओं की गतिशीलता जैसे पहलू भी शामिल हैं। ऐसा आकलन है कि वर्ष 2025 तक ढाई अरब एशियन शहरवासी हो जायेंगे, जो पूरी दुनिया की नगरीय आबादी का लगभग 54 प्रतिशत होगा। भारत और चीन दोनों का ही मिलाकर

कुल एशियाई नगरीय आबादी में 62 प्रतिशत हिस्सा होगा, जबकि वैश्विक आबादी के लिहाज से यह संख्या 40 फीसदी तक होगी (dobbs, 2010).

वर्ष 1950 में भारत चीन के मुकाबले अधिक नगरीय देश था। यहां 17 प्रतिशत आबादी शहरों में रहती थी, जबकि चीन में यह आंकड़ा 13 प्रतिशत ही था। लेकिन 1950 से लेकर 2005 तक चीन ने भारत के मुकाबले कहीं अधिक तेजी से शहरीकरण किया है। इससे वहां शहरीकरण की दर 41 प्रतिशत तक जा पहुंची है, जबकि भारत में यह दर 29 प्रतिशत ही है। मैकेंजी (2010), ग्लोबल इंस्टीट्यूट के हालिया शोध के अनुसार चीन की नगरीय आबादी में 2025 तक 40 करोड़ की बढ़ोतरी होने की संभावना है जो मौजूदा नगरीय जनसंख्या से करीब 64 फीसदी अधिक होगी, इसी तरह भारत में 21 करोड़ आबादी के नगरीय होने का पूर्वानुमान है जो मौजूदा नगरीय जनसंख्या से 38 प्रतिशत अधिक होगी। इतिहास में इससे पहले कभी दो सबसे बड़े देश (जनसंख्या के लिहाज से) एक ही समय में और एकसमान गति से इस तरह शहरीकरण की प्रक्रिया से नहीं गुजरे हैं। इस प्रक्रिया के चलते दोनों देशों में होने वाले परिवर्तन वैश्विक अर्थव्यवस्था पर असर डालने वाले होंगे और निवेशकों के लिये ये नये अवसरों को प्रदान करेंगे। भारत में नगरीय प्रति व्यक्ति सकल घरेलू उत्पाद के वर्ष 2005 से 2025 तक छह फीसदी की दर से बढ़ने का अनुमान है। जबकि चीन की जीडीपी में 7.3 प्रतिशत की वृद्धि संभव है। भारत के शहरों में घर लेने का निर्णय करने वाले और इस पर खर्च करने वाले लोगों की संख्या बढ़ सकती है, इससे 2025 तक भारत में आठ से नौ करोड़ तक गृहस्वामी संभव हैं। चीन में अभी साढ़े पांच करोड़ मध्यमवर्गीय गृहस्वामी हैं, जिनकी संख्या 2025 तक 28 करोड़ तक जाने की संभावना है, जो कुल नगरीय आबादी का तीन चौथाई से अधिक होगा। प्रति व्यक्ति नगरीय आय और मध्यमवर्गीय परिवारों की आय में बढ़ोतरी व्यापारिक दृष्टि से नये बाजार उपलब्ध कराती है। तो भारत और चीन की परिस्थितियों में किसका बाजार व्यापार को सबसे अधिक लाभ दे सकता है? यह सवाल उठना लाजिमी है। भारत में 2025 तक परिवहन, संचार, खाद्यान्न, स्वास्थ्य सेवाएं सबसे बड़े बाजार होंगे, इनके बाद आवास, सुविधाएं, मनोरंजन, शिक्षा जैसे पहलू आयेंगे। यहां तक कि मौजूदा दौर में धीमे नजर आने वाले बाजार भी उस दौर में विश्व के दूसरे हिस्सों के मुकाबले बड़े बाजारों की उपलब्धता का जरिया बनेंगे, क्योंकि तब तक वे शहरीकरण की दौड़ में तेजी से शामिल हो चुके होंगे। इसी तरह चीन में परिवहन, संचार, आवास, सुविधाएं, निजी जरूरतों के सामान, स्वास्थ्य, शिक्षा और मनोरंजन का बड़ा बाजार उपलब्ध होगा। इसके अतिरिक्त दोनों ही देशों में नगरीय अवस्थापना भी बहुत बड़ा बाजार होगा। उदाहरण के लिये, 2005 से 2025 तक भारत में प्रतिवर्ष सात करोड़ से नौ करोड़ वर्गमीटर क्षेत्र की आवश्यकता अवस्थापना विकास के लिये होगी। चीन में यह जरूरत दोगुनी यानी 16 करोड़ से 19 करोड़ वर्ग मीटर तक जा सकती है। इसी अवधि में भारत को प्रतिवर्ष 350 से 400 किलोमीटर रेल और भूमिगत मार्गों, सुरंगों का निर्माण करने की जरूरत होगी, दूसरी ओर चीन में यह जरूरत एक हजार किलोमीटर प्रतिवर्ष की होगी।

इसमें कोई संदेह नहीं है कि भारत और चीन में नये बाजारों के विकास की वजह उनका शहरीकरण है, लेकिन व्यापारिक गतिविधियों के इन बाजारों तक पहुंचने के लिये व्यावहारिक प्रयासों की जरूरत होगी। शहर किस तरह बढ़ रहे हैं और वहां उत्पादकता के परिणाम क्यों, यह कंपनियों के लिये सबसे बड़ा कारक है। इस मामले में चीन भारत के मुकाबले कुछ बेहतर नजर आता है। भारत में जहां अब तक शहरीकरण की दिशा में सीमित ध्यान दिया गया है, चीन ने शहरीकरण की प्रक्रिया को तेजी से अपनाने के साथ शासन, नियोजन, क्षेत्रवार नीतियां, निवेश जैसे शहरों के आंतरिक तत्वों पर भी काम शुरू कर दिया है, जो शहरों को नगरीय स्तर पर और समग्रता में राष्ट्रीय स्तर पर आगे ले जाने में सक्षम हैं।

भारत ने अपने शहरों पर कम निवेश किया है, जबकि चीन ने मांग के अनुरूप निवेश के साथ अपने शहरों को निवेश संबंधी संसाधनों के विकास की स्वायत्ता भी दी है, हालांकि वह स्वयं भूमि संपत्तियों पर निगरानी रखता है और शहरों में वसूले जाने वाले वैल्यू एडेड टैक्स का 25 प्रतिशत हिस्सा राजकोष में जाता है। दूसरी ओर भारत नगरीय अवस्थापना विकास में प्रतिवर्ष 17 डॉलर प्रति व्यक्ति खर्च कर रहा

है, जबकि चीन में यह खर्चा 116 डॉलर है। भारत ने अपने शहरों में छोटे स्तर पर शक्तियां, अधिकार और उत्तरदायित्व विकसित किया है, लेकिन चीन में महत्वपूर्ण बड़े शहर प्रांतीय स्तर हासिल कर चुके हैं और वहां मेयर जैसे शक्तिशाली राजनीतिक पद हैं। भारत में नगरीय नियोजन व्यवस्था स्थान की उपलब्धता की मांग को भी पूर्ण कर पाने में विफल रही है, जबकि चीन ने भूउपयोग, आवास और परिवहन जैसी मांगों के लिये लंबे समय के लिये परिपक्व नगरीय नियोजन तैयार किया है, जिसमें पिछड़े इलाकों में भी व्यवस्थित विकास पर जोर दिया गया है।

दोनों देशों के बीच विरोधाभास यह है कि चीन ने जहां शहरीकरण को आकार दे दिया है, वहीं भारत नगरीय वास्तविकता को लेकर अब भी पूरी तरह जगा नहीं है और न ही अपने शहरों की वित्तीय, सामाजिक परिवर्तन क्षमताओं का आकलन कर सका है। हालांकि, यदि भारत बेहतर नगरीय क्रियान्वयन मॉडल को लागू करे तो इसके अंदर नौकरीपेशा आबादी के बूते जनसांख्यिकीय लाभ लेने की पूरी क्षमता है। अगले एक दशक में ऐसी आबादी की संख्या 25 करोड़ से अधिक होने का अनुमान है। यह अंश चीन से कहीं अधिक है, क्योंकि वहां कामकाजी लोगों की आयु तेजी से बढ़ रही है। 2025 तक चीन की नगरीय आबादी का 28 फीसदी हिस्सा 55 वर्ष या इससे अधिक आयु का हो चुका होगा, जबकि भारत में यह आंकड़ा सिर्फ 16 प्रतिशत रहने का अनुमान है। इस लिहाज से भारत अधिक युवा राष्ट्र होगा। इस लिहाज से यदि भारत अपने शहरों की उत्पादकता को बढ़ाने और सकल घरेलू उत्पाद को बढ़ाने पर ध्यान केन्द्रित करे तो 2005 से 2025 तक भारत 17 करोड़ कामगार हासिल कर सकता है, दूसरी ओर चीन में इस अवधि में यह संख्या सिर्फ पांच करोड़ रहेगी।

कनाडा और भारत (Canada and India)

कनाडा की कुल जनसंख्या साढ़े तीन करोड़ है जो भारत की जनसंख्या यानी सवा अरब का महज 2.8 प्रतिशत है। कनाडा की मौजूदा जनसंख्या दर 3069 प्रतिवर्ष है, जबकि भारत में यह 3,86,100 प्रतिवर्ष है। इससे आसानी से अंदाजा लगाया जा सकता है कि कनाडा को भारत के बराबर जनसंख्या हासिल करने में कितने साल लग सकते हैं। भारत को कनाडा की जनसंख्या के बराबर बच्चों को जन्म देने में महज 16 महीने लगते हैं, जबकि कनाडा को भारत में पैदा होने वाले बच्चों की संख्या के बराबर तक पहुंचने में 38 हजार महीने लगेंगे। भारत में प्रति वर्ग किलोमीटर में 421 नागरिक रहते हैं, जबकि कनाडा में यह आंकड़ा मात्र चार का है। भारत में दुनिया की 17 प्रतिशत आबादी रहती है, जबकि कनाडा में यह प्रतिशतता 0.5 है। भारत में 65 वर्ष से अधिक आयु के छह करोड़ 20 लाख लोग रहते हैं, कनाडा में यह संख्या पांच लाख है। कनाडा के सबसे बड़े शहर टोरंटो से भारत के 12 शहर बडऋे हैं, जिनमें कानपुर, लखनऊ, जयपुर, पुणे, सूरत, कोलकाता, चेन्नई, अहमदाबाद, हैदराबाद, बंगलुरू, दिल्ली और मुंबई शामिल हैं।

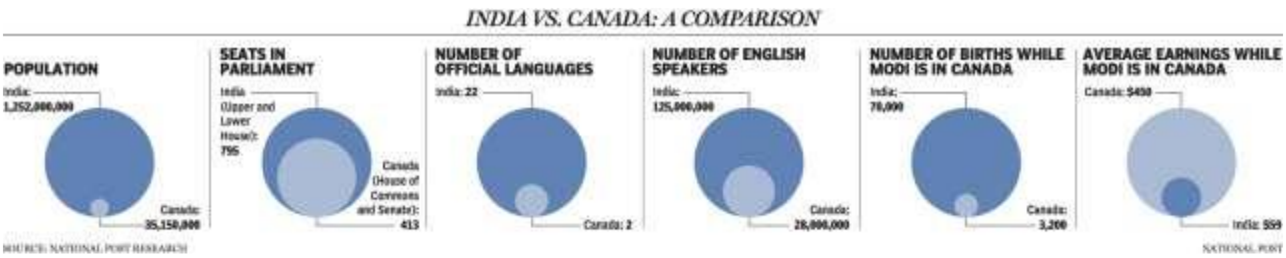

(Source: www.mediablogspot.com)

कनाडा की कुल जनसंख्या जितनी है, उतनी भारत के तेलंगाना राज्य में है जो देश का 12वां सर्वाधिक आबादी वाला राज्य है। वहीं, देश के चार बड़े शहरों मुंबई, दिल्ली, बंगलुरू और हैदराबाद की कुल जनसंख्या के बराबर कनाडा की आबादी है। इसी तरह कनाडा के मुकाबले उत्तर प्रदेश में छह वर्ष से कम उम्र के बच्चों की संख्या कहीं अधिक है, यह प्रदेश भारत का सर्वाधिक जनसंख्या वाला प्रदेश भी है। यही नहीं, भारत में जितने लोग मलयालम बोलते हैं, उतनी ही जनसंख्या कनाडा की है, जबकि यह भाषा भारत में सर्वाधिक बोली जाने वाली नवीं भाषा है।

वित्तीय संकट (Fiscal Crisis)

अमेरिका में 2008 में सामने आया नगरीय राजकोषीय घाटा संपत्तियों को गिरवी रखे जाने से शुरू हुआ, क्योंकि वहां नगरीय निकाय नगरीकरण राजस्व के सबसे बड़े स्रोत के रूप में प्रॉपर्टी टैक्स को ही महत्व देते रहे हैं। चीन में भी 2008 में ही निकायों पर भारी उधारी हो गयी थी, लेकिन इसका वजह मंदी नहीं बल्कि बिना सोचे–समझे लिये गये कर्जे और राज्य प्रोत्साहित कार्यक्रमों के तहत अवस्थापना में जरूरत से अधिक निवेश रहा। इन कार्यक्रमों को वहां की केंद्र सरकार ने ही वैश्विक मंदी से चीन की अर्थव्यवस्था को बचाये रखने के मकसद से प्रारंभ किया था। दूसरी ओर, भारत में शहर राज्य द्वारा नगर निकायों की शक्तियों को अवरुद्ध किये जाने से अवधारणात्मक रूप से घाटे में ही रहते हैं। अधिकारिता, उत्तरदायित्व और वित्तीय स्वायत्तता के लिहाज से तीनों देशों के नगरीय शासनों की तुलना करें तो इसे इस तरह भी देखा जा सकता है कि शहरों में विभिन्न शक्तियों के संयोजन की उपलब्धता नगरीय वित्तीय संकट को अलग–अलग वजहों और परिणामें से बढ़ावा दे सकती है।

10.6 प्रमुख मुद्दे और दृष्टिकोण (Issues and Perspectives)

2011 की जनगणना के अनुसार भारत में कुल शहरों की संख्या 5161 है, जहां 38.5 करोड़ आबादी रह रही है, जो भारत की कुल जनसंख्या का 27 प्रतिशत है। भारत में दस लाख से अधिक आबादी वाले शहरों की संख्या 2001 में 34 थी, जिनकी संख्या 2015 तक 40 से अधिक होने का अनुमान है। 2025 तक देश की आबादी में 54 करोड़ की बढ़ोतरी और कुल आबादी का आधा यानी करीब एक अरब लोगों के शहरों में बसने की संभावना है। हालांकि, राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर यह स्थिति विस्फोटक हो सकती है। भारतीय शहरीकरण के इस चिंताजनक पहलू को ध्यान में रखते हुए यहां विकास की सतत प्रक्रिया को बढ़ावा देने पर ध्यान केन्द्रित करना आवश्यक है। यहां परिवहन, सीवरेज, जल वितरण, सफाई, जलनिकासी, शिक्षा, स्वास्थ्य, आवास जैसी बुनियादी अवस्थापना जरूरतों के विकास के लिये बहुत भारी निवेश की आवश्यकता है। प्रारंभिक रूप से कई जगह स्थानीय तौर पर शहरीकरण की प्रक्रिाय के दौरान अंतरक्षेत्रीय, आकार, वर्ग वितरण जैसे असंतुलन सामने आये हैं। महाराष्ट्र के पश्चिमी हिस्से, गोआ और गुजरात की ओर नजर डालें तो स्पष्ट होता है कि ये राज्य शहरीकरण की प्रक्रिया को लगभग 40 प्रतिशत तक पूर्ण कर चुके हैं, लेकिन दूसरी ओर ओडिशा और बिहार 13 प्रतिशत के आंकड़े से भी कहीं पीछे हैं। ऐसी स्थिति अंतरक्षेत्रीय पलायन को बढ़ावा देती है (singh and Steinberg, 1996). जरूरत से अधिक श्रमिक वर्ग निर्धन क्षेत्रों से पलायित होकर विकसित हो रहे नगरीय केन्द्रों में रोजगार की तलाश में पहुंचते हैं और उनके कारण शहरों में जनसंख्या तेजी से बढ़ रही है। यह स्थिति तब तक बनी रहेगी, जब तक कि ग्रामीण क्षेत्रों में ही रोजगार के समुचित अवसर उपलब्ध नहीं कराये जाते। यहां यह तथ्य उल्लेखनीय है कि भारत में नगरीय जनसंख्या का 39.9 प्रतिशत हिस्सा ग्रामीण क्षेत्रों के पलायन से मिला है और ग्रामीण क्षेत्रों में शहरों के मुकाबले रोजगार के पर्याप्त अवसर नहीं मिलने के कारण इसके और अधिक बढ़ने की संभावना है। लेकिन यह भी जानना जरूरी है कि नगरीय विकास में योगदान के बजाय इस हिस्से ने नगरीय क्षेत्रों में भी रोजगार के अवसरों को कम करने के साथ निर्धनता को बढ़ावा दिया है। ऐसे में भारत के सन्दर्भ में नगरीय विकास की सततता सीधे तौर पर ग्रामीण क्षेत्रों के विकास से संबद्ध है, विशेषकर पिछड़े क्षेत्रों में।

10.7: निष्कर्ष (Conclusion)

राहुल मुखर्जी ने भारत की नगरीकरण व्यवस्था का गहन अध्ययन किया है। अनके अनुसार भारत के कुछ राज्यों में नगरीय शासन की विफलता का एकमात्र कारण राजनीतिक इच्छाशक्ति का अभाव रहा है। इसी तरह प्रो. राधाकांत बारिक, जिन्होंने जेपी आंदोलन का ओडिशा में विश्लेषण किया, बताते हैं कि स्थानीय नगरीकरण की विफलता की वजह सत्तासीन दल की बेरूखी और उपेक्षापूर्ण व्यवहार होता है। Annual Survey Of India's City System (ASICS) के अनुसार नियमों, कानूनों, संस्थानों और सांस्थानिक

प्रक्रियाओं के मूल्यांकन के लिहाज से बंगलुरू सबसे निम्नतम शहर है। पुणे इस मूल्यांकन में 5.1 रेटिंग के साथ पहले स्थान पर है, जिसके बाद कोलकाता, तिरूअनंतपुरम, भुवनेश्वर आते हैं जिनका तीनों का स्कोर 4.6 है। राजधानी दिल्ली की रेटिंग 4.4 है, जबकि हैदराबाद 4.3, मुंबई 4.2 और चेन्नई को 3.4 रेटिंग मिली। बंगलुरू की रेटिंग 3 रही।

10.8 अभ्यास प्रश्न (Model Questions)

1. नगरीय शासन से आप क्या समझते हैं? भारत में इनका विकास किस तरह हुआ?
2. भारत में नगरीय शासन के चरणबद्ध विकास की व्याख्या करें।
3. अच्छे नगरीय शासन में क्या गुण होने चाहिये? आंकड़ों के आधार पर इनका वर्णन करें।
4. भारत में नगरीय शासन की मौजूदा स्थिति और इनके विकास की व्याख्या करें।

10.9 सहायक अध्ययन (Suggested Readings)

1. Barik, Radhakant (1977), “Politics of the JP Movement”, Radiant Publication, Delhi.
2. Dobbs,Richard(2010), “The Quest For Good Urban Governance: Theoretical Reflections And..., Mckinsey Global Institute”, A Version Of This Article Appeared In The *Financial Times* On May 18, 2010.Https://Www.Mckinsey.Com/Global-Themes/Urbanization/Comparing-Urbanization-In-China-And-India
3. Kundu, Amitabh (2011), “Trends And Process Of Urbanization In India”, Urbanization And Emerging Population Issues, Vol.6, New York.
4. Mukherji, Rahul (2017), “Bureaucratic Rationality, Political Will And State Capacity”, Economic and Political Weekly, Vol.52, Issue No.49
5. Singh, Kulwant & Steinberg, Florian(Ed) (1996), “Urban India in Crisis”, New India International Publication, Delhi
6. Nagaraja Rao, C. (2015), “Urban Governance in India”, Kalpaz Publication, Delhi
7. Leonardo, John G, (2008), “Urban Government under the Raj A Case Study Of Municipal Administration In Nineteenth–Century South India”, Https://Doi.Org/10.1017/S0026749X00004571
8. Http://Mohua.Gov.In/Upload/Uploadfiles/Files/74th_CAA13.Pdf
9. Walter A. Fairservis (1971), “The Roots of Ancient India: The Archaeology of Early Indian Civilization”, New York, Macmillan.
10. Xuefei Ren(2015),“City Power And Urban Fiscal Crises: The USA, China, And India”,Pages 73-81 | Received 30 May 2014, Accepted 20 Nov 2014, Published Online: 11 Mar 2015

इकाई 11 : नगरीय शासन की चुनौतियां: नगरीय हिंसा
(Challenges to Urban Governance: Urban Violence)

इकाई की रुपरेखा

11.0 उद्देश्य
11.1 परिचय
11.2 शहरीकरण
11.3 शहरीकरण के कारण
11.4 नगरीय क्षेत्र क्या है
11.5 नगरीय शासन का अर्थ और महत्व
11.6 भारत में नगरीय सरकार का विकास
11.7 नगरीय शासन की चुनौतियां
11.8 नगरीय हिंसा की अवधारणा एवं माध्यम
11.9 हिंसा की श्रेणियां
11.10 नगरीय हिंसा के कारण एवं परिणाम
11.11 निष्कर्ष
11.12 अभ्यास प्रश्न
11.13 सहायक अध्ययन
11.14 सन्दर्भ ग्रन्थ

11.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के बाद हम यह समझ और विश्लेषण कर पाएंगेः

1. नगरों में नगरीय शासन और हिंसा की अवधारणा
2- नगरों में हिंसा के परिणाम और कारण जान सकेंगे

11.1 परिचय (Introduction)

पूरा विश्व शहरीकरण के इजाफे का साक्षी बना हुआ है। राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था और विकास में शहरों का महत्व भी बढ़ रहा है। शहरीकरण के साथ नगरों में शासन के पारंपरिक तरीकों (ऊपर से नीचे की ओर) में भी बदलाव आया है, पुराने तरीके अप्रासंगिक हो गये हैं। सेवाओं–सुविधाओं में सुधार, सहभागिता के नये रास्ते, पारदर्शिता में वृद्धि और आधुनिक प्रशासन आज की जरूरत बन गये हैं। इन जरूरतों को पूरा करने के लिये नयी व्यवस्थाओं और कामकाज के तरीकों के विकास की आवश्यकता होती है। इसके साथ ही यह भी महसूस किया जाता है कि स्थानीय नगरीय निकायों की मौजूदा क्षमता जरूरत के हिसाब से कम है और इसमें उत्तरोत्तर वृद्धि होनी चाहिये।

11.2 शहरीकरण (Urbanization)

शहरीकरण का तात्पर्य पारंपरिक तरीकों से आधुनिकता की ओर बढ़ने से है। यह कृषि आधारित समाज से औद्योगिक समाज तक का रूपांतरण है। यह जीवनशैली में बदलाव का जरिया बनता है, जिसमें जीवन अनौपचारिक के बजाय औपचारिक हो जाता है और शारीरिक सुविधाओं के लिये यह भौतिकता को बढ़ावा देता है। शहरीकरण मानव संबंधों में भी परिवर्तन की वजह बनता है। इसके चलते संबंधों में प्रगाढ़ता की जगह अवैयक्तिकता और वर्गीकृत संपर्क–संबंध बढ़ते हैं। यह उत्पादन के साधनों में भी बदलाव करता है। इससे उत्पादन के साधन मानवीय नहीं रहते, बल्कि यांत्रिक हो जाते हैं। इस प्रकार शहरीकरण की प्रक्रिया अवसरों की उपलब्धता, रोजगार की मौजूदगी और सांस्कृतिक व्यवस्था में बदलाव का सबब बनती है। शहरीकरण ग्रामीण क्षेत्रों से आबादी के नगरीय क्षेत्रों की ओर स्थानांतरण की भी प्रक्रिया है।

11.3 शहरीकरण के कारण (Causes of Urbanization)

जैसाकि हम जानते हैं कृषि ग्राम्य जीवन का आधार है, इसी तरह औद्योगिकता शहरों का निर्माण करती है। इसीलिये शहरीकरण की प्रक्रिया में कृषि आधारित समाज स्वयं को औद्योगिक समाज में रूपांतरित करता है। ग्रामीण क्षेत्रों से नगरीय क्षेत्रों की ओर आबादी का स्थानांतरण दो प्रमुख घटकों से होता है। ये हैं, दबाव (Push Factor) और खिंचाव (Pull Factor)। हालांकि, प्रथम दृष्ट्या ये दोनों घटक एक–दूसरे से अलग नजर आते हैं, लेकिन वास्तव में पूरी प्रक्रिया में इन दोनों को विभक्त नहीं किया जा सकता। दबाव के कारकों की बात करें तो इन्हें इस तरह समझा जा सकता है–

1. कृषि आधारित क्षेत्रों में जनसंख्या बढ़ती है तो भूमि सीमित होती जाती है। इससे आबादी के बड़े हिस्से के लिए जीवनयापन कठिन होता जाता है और वे अस्तित्व के लिये अकृषि आधारित विकल्पों की तलाश करने लगते हैं।
2. ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के बेहद सीमित अवसर उपलब्ध होते हैं।
3. ग्रामीण कार्यों में कामगारों की अधिकता के चलते लोगों की आय पर असर पड़ता है।
4. सीमित ग्राम्य जीवन सामाजिक लिहाज से कठिनाइयों को पैदा करता है, इससे यहां रहने वाले लोग सामाजिक सुरक्षा, संपत्ति, बेहतर रोजगार के अवसर, जीवन संसाधनों की अधिकता, सुविधाओं की उपलब्धता, अधिक स्वतंत्रता और खुलेपन, शैक्षिक–सांस्कृतिक और स्वास्थ्य समेत जीवन के लिए उपयोगी विभिन्न सुविधाओं को हासिल करना चाहते हैं।
5. ग्रामीण क्षेत्रों में उग्रवाद भी ग्रामीण आबादी का शहरों की ओर पलायन की वजह बनता है।

इसी तरह खिंचाव घटक को इस तरह समझा जा सकता है–

1. शहरों में शैक्षिक संस्थान, सड़कें, पेयजल–बिजली जैसी जीवनोपयोगी सुविधाएं और सामाजिक लिहाज से आकर्षक संसाधनों की उपलब्धता रहती है।
2. नगरीय इलाकों में परिवहन के बेहतर और त्वरित संसाधन उपलब्ध होते हैं।
3. भारत में धार्मिक केन्द्र भी शहर केन्द्रित हैं।
4. पलायन करके आने वाले लोगों, शरणार्थियों के पुनर्वास के लिये नगरीय इलाकों के आसपास ही व्यवस्था की जाती है।
5. उपभोक्तावादी बाजार की संस्कृति लोगों को कस्बों और शहरों की ओर आकर्षित करती है।

6. रोजगार में बेहतर साधन हासिल करने के अवसर नगरीय क्षेत्रों में पर्याप्त उपलब्ध होते हैं।
7. यह माना जाता है कि नगरीय क्षेत्र में रहना किसी व्यक्ति की पहचान को बढ़ाता है।
8. शहर ऐसे खुले समाज को बढ़ावा देता है, जहां हर व्यक्ति के कामकाज और जीवनशैली का अपना तरीका होता है, जिसमें अन्य किसी का हस्तक्षेप नहीं होता

11.4 नगरीय क्षेत्र क्या है (What is an Urban Area)

नगरीय क्षेत्र वह क्षेत्र है, जिसे औपचारिक तौर पर वैधानिक ढांचे की ओर से नगरीय घोषित किया गया है और जहां स्थानीय नगर निकाय, नोटिफाइड एरिया या छावनी परिषद की स्थापना की गयी हो। प्रदेश सरकारों की ओर से इन निकायों में विकास और अन्य आवश्यक कार्यों को संपन्न करने के लिये 'म्यूनिसिपल एक्ट' बनाये गये हैं। इनके अलावा भी जनसंख्या आंकड़ों के आधार पर कुछ क्षेत्रों को नगरीय माना जा सकता है। जनसंख्या के आधार पर किसी क्षेत्र को नगरीय मानने के लिये इन तीन कारकों का होना आवश्यक है– 1. न्यूनतम जनसंख्या 5000 होनी चाहिये, 2. जनसंख्या घनत्व चार सौ प्रति वर्ग किलोमीटर होना चाहिये, 3. उस क्षेत्र में रहने वाली आबादी का 75 प्रतिशत हिस्सा अकृषि कार्यों से संबद्ध होना चाहिये

11.5 नगरीय शासन का अर्थ और महत्व (Meaning and Importance of Urban Governance)

शासन (Governance) का अर्थ और उद्देश्य सरकार (Government) से कहीं अधिक व्यापक और विस्तृत होता है। सरकार का अर्थ राजनीतिक वर्ग की आंतरिक और बाह्य रुचियों को पूर्ण करने के लिये शक्ति–सत्ता के उपयोग हेतु बनायी गयी सांस्थानिक व्यवस्थाओं और मशीनरी से है। दूसरी ओर, शासन का अर्थ उस प्रक्रिया से है, जिसके जरिये समाज के लाभ के लिए आधिकारिक निर्णय लिये जाने के अलावा इनका नियमन और नियंत्रण किया जाता है। सरकार मूलतः शासन का सर्वाधिक शक्तिशाली और मुख्य तत्व है। हालांकि, मौजूदा दौर में खुले बाजार (Free Market), निजीकरण, ढांचागत व्यवस्थाओं, विकेन्द्रीकरण और विनियमन जैसे मसलों के चलते सरकारी नियंत्रण का आकार और प्रवृत्ति कुछ हद तक सीमित हुई है। गैरसरकारी स्वयंसेवी संस्थाएं (NGOs) आज विकास प्रक्रिया में अहम भूमिका निभा रही हैं। कॉरपोरेट सेक्टर भी अच्छे शासन (Good Governance) में भूमिका निर्वाह करता है और जनता की खुशहाली में योगदान करता है। कई देशों में सरकार की लोकतांत्रिक व्यवस्था पारदर्शिता के अभाव, शक्तियों के दुरुपयोग, भ्रष्टाचार और घपले–घोटालों की समस्या से जूझ रही है। ऐसे में अच्छे नगरीय शासन की अवधारणा इन समस्याओं से निजात के तरीके के तौर पर उभरती है। शक्तियां सरकार के आंतरिक और बाह्य अधिकरणों (Authorities) एवं संस्थानों (Institutions) में निहित होती हैं, जो प्राथमिकताओं (Priorities) को ध्यान में रखते हुए विभिन्न कारकों के संबधों को आधार बनाते हुए आवश्यक निर्णय लेती हैं। नगरीय शासन को इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है, 'यह व्यक्तिगत और सांस्थानिक, निजी और सार्वजनिक, योजना एवं प्रबंधन के विभिन्न माध्यमों का संयोग है जो शहर के सामान्य मामलों को नियंत्रित, निर्धारित करता है। यह एक ऐसी सतत प्रक्रिया है, जिससे द्वंद्वात्मक और विभिन्न रुचियों वाले कारकों को समायोजित कर समन्वित सहयोगी (Cooperative) कदम उठाना संभव हो पाता है। यह औपचारिक संस्थानों के अलावा अनौपचारिक व्यवस्थाओं को भी समाविष्ट करके नागरिकों की सामाजिक स्थिति को नियंत्रित रखता है।' (Rao:2004)

11.6 भारत में नगरीय सरकार का विकास (Evolution of Urban Government in India)

भारत में नगरीय सरकार का विकास शासन के केन्द्रीकरण की व्यवस्था से हुआ। प्राचीन भारत ग्रामीण गणतांत्रिक था, लेकिन शासक नगरों की भी स्थापना किया करते थे। वैदिक काल के नगरों और प्रशासनिक व्यवस्था के बारे में बहुत कम विवरण उपलब्ध है। गुप्तकाल में नगरीय शासन व्यवस्था का जिम्मा केन्द्रीय स्तर पर नियुक्त 'पुरपाल' करते थे। पुरपाल का सहयोग एक समिति करती थी। इस तरह की नगर समितियां प्राचीन भारतीय प्रशासन व्यवस्था में आम थीं। मध्यकाल में केन्द्रीय शासक स्थानीय मामलों की देखरेख अच्छी तरह नहीं कर सकते थे। इसके लिए उन्हें स्थानीय निकाय की आवश्यकता हुई जो स्थानीय मसलों को सुलझाने के अलावा राजस्व संग्रहण भी कर सकें। स्थानीय प्रशासन की यह व्यवस्था शासक (राजा) के प्रतिनिधियों द्वारा संभाली जाती थी। आम जनता प्रबंधन से नहीं जुड़ी होती थी। मुगल प्रशासनिक व्यवस्था में 'कोतवाल' स्थानीय मामलों का निस्तारण तो करता था, लेकिन आम जनता के प्रति उसका कोई उत्तरदायित्व नहीं था। (Altekar 1949).

केंद्रीयकृत प्रशासनिक व्यवस्था में बदलाव औपनिवेशिक दौर में सामने आया। ईस्ट इंडिया कंपनी का मकसद व्यापार था, लेकिन इसके साथ उसे भारत में रह रहे ब्रिटिश नागरिकों की स्वास्थ्य रक्षा, पुलिस प्रबंधन के लिए राजस्व संग्रहण और कानून व्यवस्था बनाए रखने के लिए कुछ नियमन की भी आवश्यकता हुई। हालांकि, इसका उद्देश्य स्थानीय शासन की स्थापना नहीं था। 1858 तक भी ब्रिटिश रानी के शासन ने भारत में आम नागरिकों की सहभागिता और उनके प्रति उत्तरदायित्व के भाव से स्थानीय शासन की व्यवस्था के कोई प्रयास नहीं किए। 1882 में लॉड रिपन ने पहली बार स्थानीय प्रशासन का प्रस्ताव रखा, जिसमें स्थानीय जरूरतों को पूरा करने के लिये निर्वाचित इकाई की जरूरत जताई गई।

भारतीय संविधान के नीति निर्देशक तत्वों (Directive Principles) में अनुच्छेद 40 में नगरीय निकायों (Urban Bodies) की तरह ग्राम पंचायतों के गठन की व्यवस्था दी गयी, जिसमें राज्य का यह दायित्व निर्धारित किया गया कि वह पंचायतों का गठन कर इन्हें इस तरह शक्ति प्रदान करे कि वे स्वायत्त सरकार (Self Government) के रूप में कार्य कर सकें। स्वतंत्रता के पश्चात अव्यापी और अनुपयोगी निकाय नियमों, अकुशल कर्मचारियों, कमजोर वित्तीय व्यवस्था और तंगहाली नगरीय सरकारों के विकास में रोड़ा बन गयीं। 'राज्य सरकारों ने नगरीय निकायों से संबंधित नियमों को लेकर दोहरी (Ambivalent) नीति अपनायी। कागजों पर तो निकायों को शक्तियां प्रदान की गयीं, लेकिन धरातल पर निकायों के इन शक्तियों के उपयोग पर कई तरह के नियंत्रण और अवरोध लगा दिये गये।' (Bhattacharya: 1976). वर्ष 1985 इस दिशा में इस लिहाज से प्रतिमान माना जाता है कि इसी साल केंद्रीय स्तर पर नगरीय विकास मंत्रालय (Ministry of Urban Development) का गठन स्वतंत्र रूप से किया गया। इससे पूर्व यह अलग–अलग मंत्रालयों के अधीन हुआ करता था। इससे शहरीकरण की तेज गति के बावजूद भारत में शहरीकरण की व्यापक और सुपरिभाषित नीति तय नहीं थी। तत्कालीन प्रधानमंत्री राजीव गांधी ने 65वें संविधान संशोधन बिल में नगर निकायों को आवश्यक शक्तियां प्रदान करने और उन पर से वित्तीय नियंत्रण हटाने की जरूरत जतायी, ताकि वे स्वायत्त सरकार के रूप में कार्य कर सकें। हालांकि, लोकसभा में पारित होने के बावजूद वर्ष 1989 में यह बिल राज्यसभा में गिर गया। 16 सितंबर 1991 को केंद्र सरकार ने नगर निकायों को लेकर संविधान संशोधन बिल लोकसभा में रखा। यह बिल मूलतः 65वें संशोधन बिल पर ही आधारित था, लेकिन इसमें कुछ जरूरी बदलाव किये गये थे। यह बिल संविधान में एक नया हिस्सा (जिसे भाग 9ए या Part IX A कहा गया) जोड़ने के लिये रखा गया। इस भाग में नगर निकायों के ढांचे, संरचना, सीटों के आरक्षण, चुनाव व्यवस्था और प्रक्रिया, वित्तीय और अन्य प्रावधानों को शामिल किया गया।

वर्ष 1992 में संसद ने संविधान के 74वें संशोधन एक्ट (CAA 1992) को पारित कर दिया और एक जून 1993 से यह लागू भी हो गया। इससे सभी राज्य सरकारों के लिये एक साल के भीतर अपने निकाय नियमों में बदलाव करना अनिवार्य बना। यह कानून भारत में नगरीय स्थानीय निकायों के लिए ऐतिहासिक माना जाता है। यह ऐसी समुचित वैधानिक व्यवस्था देता है, जिससे नगरीय निकायों में लोकतांत्रिक परंपरा स्थापित हो सके। यह समाज के सभी वर्गों को निकायों में प्रतिनिधित्व के साथ नगरीय निकायों में व्यवस्थित वैधानिक प्रक्रिया को बढ़ाता है। इस एक्ट से स्थानीय सरकारों को पहली बार संवैधानिक स्थापना (Status) मिली। इस प्रकार स्थानीय सरकारें संवैधानिक प्रक्रिया के तहत स्थापित होती हैं और इस प्रक्रिया में राज्य के नियम शामिल होते हैं। स्थानीय निकायों का गठन राज्य की शाखा के रूप में नहीं होता है। 74वां संशोधन इस बात पर जोर देता है कि राज्य आमजनों तक शक्तियां प्रदान करें ताकि वे अपने लिये योजनाएं बना सकें और इसके लिए आवश्यक निर्णय भी ले सकें। इस प्रकार यह संशोधन बिल नगर निकायों के लिए संवैधानिक ढांचा तय करता है। इस एक्ट के प्रावधान राज्यों (States) के अलावा केन्द्रशासित राज्यों (Union Territories) पर भी लागू होते हैं। यह बिल अनिवार्य प्रावधानों के अलावा विवेकाधीन प्रावधानों की भी व्यवस्था देता है जो पूरे देश में लागू हैं।

अनिवार्य प्रावधानों में एकसमान ढांचा, स्थायित्व, प्रतिनिधित्व, वार्ड समितियां, जिला या महानगरीय योजना समितियां, वित्तीय आयोग, राज्य चुनाव आयोग आदि शामिल हैं। स्थानीय सरकार चूंकि राज्य का विषय है, लिहाजा विवेकाधीन प्रावधान राज्यों पर ही छोड़े गये हैं, जिसका तात्पर्य यह है कि राज्य स्थानीय परिस्थितियों और आवश्यकताओं के अनुरूप इनका उपयोग कर सके। इस प्रकार भारत में संविधान ने ही स्थानीय निकायों के विकास की व्यवस्था दी है। उनसे यह अपेक्षा की जाती है कि वे स्थानीय विकास के

लिये योजनाएं बनाने, विकास कार्यक्रमों के निष्पादन और नगरीय गरीबी को पाटने में अहम भूमिका निभायें।

11.7 नगरीय शासन की चुनौतियां (Challenges of Urban Governance)

शहरीकरण की तेज गति ने विभिन्न देशों में हिंसात्मक गतिविधियों और असुरक्षा की भावना को भी बढ़ाया है। लैटिन अमेरिका, अफ्रीका और एशिया के महानगरों (Mega Cities) तो विशेष रूप से प्रभावित हैं ही, औद्योगिक नगरों में भी नगरीय हिंसा और आपराधिक गतिविधियों में बढ़ोतरी हुई है। पूरे विश्व में आधी से अधिक आबादी अब शहरों में रहती है और आबादी का बड़ा हिस्सा शहरों में मिलने वाले अवसरों से लाभान्वित होता है, लेकिन फिर भी कई लोग शिक्षा, श्रम, राजनीतिक और सांस्कृतिक रूप से आगे बढ़ पाने में बाधाओं का सामना करते हैं। सामाजिक अन्याय, उद्देश्यों का अभाव, अवसरों की कमी आदि पहलू निर्धनता को बढ़ावा देते हैं। इस सबसे एक ऐसा वातावरण बनता है, जो हिंसात्मक गतिविधियों को बढ़ावा देने की वजह बन जाता है। विशेषतः उन स्थानों पर जहां सामाजिक–आर्थिक बेहतरी के बेहद सीमित अवसर हों। इसके परिणामस्वरूप नगरीय क्षेत्रों में विभाजन उभरता है, जो सामुदायिक चहारदीवारियों (Gated Communities), बस्तियों (Slums) और गरीब इलाकों के तौर पर स्पष्ट परिलक्षित होता है। इस तरह की परिस्थितियां आपराधिक गतिविधियों और नेटवर्क को बढ़ावा देती हैं, विशेषतः उन स्थानों में जहां मूलभूत जनसुविधाओं को लेकर नीतियां अस्पष्ट और अनुपयोगी हों। ऐसे क्षेत्रों में आपराधिक गिरोह अवसरों से वंचित युवाओं को कामयाबी का झांसा देकर अपराध की ओर मोड़ते हैं। दूसरी ओर, महिलाएं घरेलू, यौन और शारीरिक हिंसा का शिकार बनती हैं। इस तरह के अपराध और हिंसात्मक वातावरण धीरे–धीरे राष्ट्रीय और स्थानीय शासन के नियंत्रण के नष्ट होने की वजह बनता है और शक्तियों पर राज्य का नियंत्रण भी कम होता जाता है।

11.8 नगरीय हिंसा की अवधारणा एवं माध्यम (Concept and Methods of Urban Violence)

हिंसा की व्यापक संकल्पना घटनाओं की विस्तृत श्रृंखला को सामने लाती है। ढांचागत हिंसा में समाज के उपेक्षित हिस्से की शारीरिक और मनोवैज्ञानिक बाधाएं अहम कारक हैं, जो राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक संस्थानों की नीतियों की वजह से पैदा होती हैं (Galtung 1969)। शेपर, ह्यूज और बोर्जोआ (2004) इसे 'गरीबी, भूख, सामाजिक बहिष्कार और असम्मान से उत्पन्न हिंसा' मानते हैं। सांस्कृतिक हिंसा का तात्पर्य उस स्थिति से है, जब संस्कृति की कोई धारणा ढांचागत हिंसा या शारीरिक हिंसा को आश्रय अथवा वैधता देती है (Galtung 1990)। इन विस्तृत अवधारणाओं से यह माना जा सकता है कि हिंसा पीड़ितों (Victims) और हमलावरों (Agressors) के बीच शक्तियों की असमानता का परिणाम है, लेकिन इसमें काल्पनिक विस्तार का खतरा बना रहता है (Sartori 1970), क्योंकि यह स्थिति हिंसात्मक घटनाओं की अंतहीन श्रृंखला की धारणा को बढ़ाती है।

हिंसा शब्द को इस तरह परिभाषित किया जाता है– किसी व्यक्ति, समुदाय या सामाजिक समूह पर शारीरिक अथवा मनोवैज्ञानिक रूप से बल का इस्तेमाल या इस्तेमाल की धमकी। शक्तियों की असमानताओं के चलते इनसे जुड़े लोगों को हिंसात्मक रूप से और अधिक ताकत मिलती है जो समाज और राज्य के बीच विवादास्पद मुद्दों को जन्म देते हैं। ये मसले स्वयं राज्य (State) में अंतर्निहीत रहते हैं, जबकि सामाजिक तत्वों में भी विशिष्ट रूप से उपस्थित होते हैं।

> जब भी अपराध और हिंसा की बात की जाती है तो लंबे समय से यही माना जाता रहा है कि ये दोनों विषय मूलतः बस्तियों (Slums) से जुड़े हुए हैं। इस धारणा ने सार्वजनिक नीति निर्माताओं (Public Policy Makers) के मन में बस्तियों के प्रति नकारात्मक विचारों को बढ़ावा दिया। हालांकि, धीरे–धीरे यह तथ्य भी सामने आया कि बस्तियों में रहने वाले लोग आपराधिक गतिविधियों के मुख्य स्रोत नहीं हैं। बस्तियों में रहने वाले लोग (Slum Dwellers) सांगठनिक अपराध के मामले में बस्तियों में नहीं रहने वाले लोगों (Non Slum Dwellers) के मुकाबले जल्दी और अधिक अनावृत्त (Exposed) हो जाते हैं। इसकी मुख्य वजह सार्वजनिक आवास सुविधाओं का अभाव और अन्य जनहितकारी नीतियों में बस्तीवासियों को उपेक्षित रखना है। इससे यह भी साफ हुआ कि बस्तियों में रहने वाले लोग अपराध से अधिक पीड़ित होते हैं। हालांकि कुछ बस्तियों (विशेषतः शहरों के भीतर की पारंपरिक बस्तियां) में अपराध और हिंसा की अधिक घटनाएं सामने आ सकती हैं। इसका कारण यहां रहने वाले लोगों का अस्थायित्व, परस्पर विरोधी संस्कृति और सामाजिक तौर–तरीके हो सकते हैं।

वस्तु को पाने के मकसद से शक्ति के दुरुपयोग को मान्यता दी जाती है। हिंसा की परिभाषा टकराव या

संघर्ष (Conflict) और अपराध से अकसर अलग होती है, हालांकि इनमें कई विशिष्ट समानताएं भी पायी जाती हैं। शक्तियों को लेकर होने वाले संघर्ष या टकराव में यह आवश्यक नहीं है कि किसी को शारीरिक या मानसिक रूप से नुकसान हो, जबकि हिंसा की प्रकृति ही नुकसान पहुंचाने की होती है। इसी तरह अपराध में भी हिंसा अनिवार्य नहीं होती। हिंसा को निम्न श्रेणियों से समझा जा सकता है:

क्रम	हिंसा का प्रकार	अपराधी / पीड़ित
1	**राजनीतिक (Political)**	**राज्य और गैर राज्य (State and Non State)**
2	**संस्थागत (Institutional)**	**1. राज्य और अनौपचारिक व्यवस्थाएं (State and Informal)** **2. निजी क्षेत्र (Private Sectors)**
3	**आर्थिक (Economic)**	**1. संगठित अपराध (Organized Crime)** **2. व्यावसायिक लाभ (Business Interests)** **3. दायित्वों का अपालन (Delinquents)** **4. लुटेरे (Robbers)**
4	**आर्थिक–सामाजिक (Economic-Social)**	**1. गिरोह (Gangs)** **2. लावारिस बच्चे (Street Children)** **3. पारंपरिक हिंसा (Ethnic Violence)**
5	**सामाजिक (Social)**	**1. यौन हिंसा, दुराचार (Sexual Violence, Rape)** **2. घरेलू हिंसा (Violence at Home)** **3. बच्चों का शोषण (Child Abuse)** **4. अभिभावकों–बच्चों के अंतर्विरोध, पीढ़ीगत अंतर (Inter Generational Conflict Between Children And Parents)** **5. निष्कारण / दैनिक हिंसा (Gratuitous/Routine Violence)**

यद्यपि नगरीय हिंसा की विभिन्न श्रेणियों में बहुत अधिक विभाजन या अंतर नहीं है, लेकिन नीति नियंता इन श्रेणियों के हिसाब से घटनाओं के विश्लेषण के आधार पर इनकी रोकथाम के कदम उठाते हैं। सामाजिक हिंसा में सबसे अधिक मामले लैंगिक हिंसा (Gender Violence) के सामने आते हैं। इनमें पुरुषवादी व्यवस्था में महिला अधिकारों का हनन, घरेलू हिंसा, पति द्वारा मारपीट, बच्चों के साथ अपराध और यौन शोषण आदि शामिल हैं। इस तरह की हिंसा में पारंपरिक, क्षेत्रीय अथवा पहचान आधारित गिरोहात्मक हिंसा भी आती है। आर्थिक हिंसा का मूल वस्तुओं और लाभ का मकसद होता है। इसमें सड़कों पर होने वाले अपराध (छिनैती, लूटमार, जेब काटना आदि), नशे का कारोबार, अपहरण आदि शामिल हैं।

संस्थागत अपराध सांगठनिक अपराध होते हैं, जिसमें पुलिस, न्यायिक व्यवस्था, राज्यगत संस्थाएं, स्वास्थ्य–शिक्षा समेत विभिन्न सरकारी विभागों–मंत्रालयों के अधिकारी और राज्य के बाहर की संस्थाओं, प्राइवेट सेक्टर आते हैं। राजनीतिक अपराध का सीधा अर्थ उन प्रक्रियाओं से है, जिसमें राजनीतिक शक्तियों को हासिल करने के लिये गुरिल्ला युद्ध, सैन्य विद्रोह और राजनीतिक हत्याएं जैसे अपराध किये जाते हैं। यद्यपि राजनीतिक अपराध को सीधे तौर पर विद्रोहात्मक संघर्षों और युद्धकाल की प्रक्रिया माना जाता है, लेकिन कई बार शांतिकाल में भी यह सांगठनिक अपराध की प्रक्रिया को बढ़ावा देता है। चूंकि हिंसा की बेहद गतिशील और व्यापक घटनाओं की प्रक्रिया को सांख्यिकीय आधार पर बांधना पूरी तरह संभव नहीं है, लिहाजा अपराध और हिंसा को समझने के लिये इस तरह की श्रेणियां बांटी गयी हैं, ताकि अलग–अलग तरह के अपराधों के परस्पर संबंध और संपर्क को समझा जा सके। हिंसा हमेशा शारीरिक तौर पर ही प्रकट नहीं होती, बल्कि ढांचागत भी होती है। जैसाकि गलटंग (Galtung) ने हिंसा को सिर्फ नृशंस अपराधों से आगे सामाजिक व्यवस्थाओं में शोषण, सामाजिक असमानता, अन्याय, उपेक्षा आदि तक विस्तार दिया है।

महानगरों में सांगठनिक हिंसा के मामले और इनके कारण मौत की संख्या बेहद गंभीर हैं। इस तरह की हिंसा के परिणाम पारंपरिक सैन्य विद्रोह और युद्धों से कहीं अधिक भयावह हैं।

11.10 नगरीय हिंसा के कारण एवं परिणाम (Causes and Consequences of Violence)

असमान शक्ति संबंधों से संबद्ध हिंसा के ढांचागत कारणों की विशेषता और परिस्थितिगत खतरे के कारणों को समझना बेहद महत्वपूर्ण है, क्योंकि इसके जरिये हिंसा की संभावनाओं को कम किया जा सकता है। उदाहरण के लिये लैंगिक हिंसा के जोखिम (Risk Factors) में सामान्यतः नशा और शराब का उपयोग भी जुड़ते हैं। इस तरह ढांचागत अध्ययन के लिये समग्र दृष्टिकोण की जरूरत होती है, जो पारिस्थितिकीय मॉडल से मिल सकती है। इस मॉडल में उन तरीकों का अध्ययन किया जाता है, जिसमें विभिन्न स्तरों (व्यक्तिगत, अंतर्वैयक्तिक, संस्थागत और व्यवस्थागत) की हिंसात्मक गतिविधियां सामने आती हैं। एक अन्य मॉडल में लोगों के परिस्थितिगत हिंसात्मक अनुभवों, हिंसा के कारणों की पहचान की जाती है।
चूंकि शक्ति और शक्तिहीनता हिंसा को समझने के आधार हैं, यह मॉडल विस्तृत राजनीतिक और सामाजिक–आर्थिक ढांचे को व्यक्तिगत वास्तविकता के आधार पर समझने में मदद करता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि हिंसात्मक अनुभव लिंगभेद, आयु, परंपराओं और जाति के आधार पर समझे जा सकते हैं। पहचान मानव समुदाय से गहराई से संबद्ध होती है और कई बार संसाधनों पर प्रतिबंधों के कारण व्यक्ति अपने उद्देश्यों की पूर्ति और पहचान के लिये वैकल्पिक रास्तों की तलाश करता है। सामाजिक ढांचे में सहिष्णुता के स्तरों को आसानी से देखा जा सकता है जो हिंसात्मक गतिविधियों को कम करने वाली नीतियों के निष्पादन में प्रभावी होते हैं। उदाहरण के लिये, समुदायों में घरेलू हिंसा और मादक द्रव्यों के सेवन की सामाजिक स्वीकार्यता हिंसा को बढ़ावा तो देती है, लेकिन प्रभावी रक्षात्मकता का भी काम करती है। नगरीय संदर्भों में वे सीमाएं अकसर वाद–विवाद का विषय बनती हैं, जिनके आधार पर निर्धनता और असमानता को हिंसा की वजह माना जाता है। निर्धनता को सामन्यतः लंबे समय से हिंसा का कारण माना जाता रहा है, लेकिन बाद के शोधों से यह साफ हुआ है कि असमानता का भाव निर्धनता से कहीं अधिक हिंसा को बढ़ावा देता है। नगरीय क्षेत्रों में ग्रामीण इलाकों के मुकाबले आर्थिक असमानता हिंसा का बड़ा कारण है। कुछ विश्लेषक मानते हैं कि हिंसा के बढ़ते स्तर वैश्वीकरण, ढांचागत समायोजनों और राजनीतिक प्रक्रिया का परिणाम हैं।
इसी तरह नगरीय क्षेत्रों में निर्धन लोगों की दैनिक जीवनशैली विद्रोह, अपराध और हिंसा की आशंका को बढ़ाती है। अपराध का राजनीतिकरण (Politicization of Crime) नये दौर का उभरता हुआ संदर्भ है, जिसमें राज्यगत संस्थाओं को सामाजिक शासन की गैरराज्यगत, निजी संस्थाओं और व्यवस्था से चुनौती मिलती है। युद्धों का शहरीकरण (Urbanization of Warfare) उन क्षेत्रों में अकसर सामने आने लगा है, जो हाल में युद्धों के परिणामस्वरूप उभरे हैं। युद्धों का यह बदलता स्वरूप संगठित अपराध से जुड़े लोगों को लाभ पहुंचाता है। शहरों और उनके आसपास हिंसा के स्थानीय कारण भी सामने आते हैं, इनमें असुरक्षित स्थान (अंधेरी गलियां, निर्जन बस स्टॉप, सार्वजनिक शौचालय आदि) शामिल हैं, जहां दुराचार, लूटमार जैसे अपराध घटित होते हैं। नगरीय क्षेत्रों में अपराध के स्तर में इस तरह बढ़ावा होने से राज्य की ओर से प्रभावी सुरक्षा व्यवस्था उपलब्ध करा पाने पर विश्वास घटता है। समृद्ध लोग मजबूत चहारदीवारियों के भीतर रहते हैं और परिवहन के लिये विशेष सुविधाओं का इस्तेमाल करते हैं, जबकि सुरक्षा का जिम्मा निजी व्यवस्थाओं को दिया जाता है। यह पूरी प्रक्रिया उन्हें उन निर्धन लोगों से अलग करती है जो अकसर हिंसा के पीड़ित के रूप में सामने आते हैं।
हिंसा के कारकों पर नजर डालें तो ये मुख्यतः अपराध के मूल्य और परिणाम हैं। सर्वाधिक प्रासंगिक शोध प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष मूल्यों की श्रेणियों पर आधारित हैं। प्रत्यक्ष आर्थिक मूल्यों ने इन शोधों को आगे बढ़ाने में मदद की है, इन्हें इस तरह समझा जा सकता है। अपराधों की वजह से होने वाली मौतें और विकलांगता व इनसे होने वाला नुकसान, जीएनपी और जीडीपी का हिस्सा बनने वाले संपत्ति संबंधी अपराध। इस तरह के मानक अपराध के व्यक्ति और समाज पर होने वाले प्रभाव को समझने में सहायक होते हैं और इनके जरिये अन्य सामाजिक बुराइयों के मूल्यों से तुलनात्मक अध्ययन के जरिये महत्वपूर्ण नीतियों को लागू करने में मदद मिल सकती है। हालांकि, कई बार अपराधों की वजह से होने वाले पुलिस, न्याय व्यवस्था, कानून व्यवस्था और सैन्य बलों के खर्चों तक पहुंच नहीं हो पाने से मूल्य मूल्यांकन में अवरोध भी आता है। इसी तरह अप्रत्यक्ष मूल्यों –जिसमें व्यक्तिगत और सामाजिक कारक भी शामिल होते हैं– का भी भरोसेमंद मात्रात्मक आंकड़ा भी उपलब्ध नहीं होता। वृहद अध्ययन और विश्लेषण के आधार पर

पूंजीगत संपदाओं के पांच तरीकों को ही मान्य माना जाता है। ये हैं– भौतिक (Physical), वित्तीय (Financial), मानवीय (Human), सामाजिक (Social) और प्राकृतिक (Natural)। अपराधों के परिणामों को इन पांचों पर आपराधिक गतिविधियों के कारण होने वाले प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष प्रभावों से देखा जा सकता है। हिंसा और अपराध वित्तीय संपदा को नुकसान पहुंचाती है, जिससे आपराधिक न्याय सेवाओं और स्वास्थ्य सुरक्षा सेवाओं पर खर्चा बढ़ता है, जबकि निवेश में भारी कमी आती है। मानवीय पूंजीगत मूल्यों में इस लिहाज से कमी आती है कि अपराधों के कारण जीवनस्तर में कमी आती है, शैक्षिक अवसर घटते हैं और उत्पादन की क्षमता में भी गिरावट आती है, जिसका असर वित्तीय पूंजी पर पड़ता है। जीवनशैली के स्तर में गिरावट, भय का माहौल और असुरक्षा की भावना जैसे पहलू सामुदायिक जीवन में विश्वास का अभाव पैदा करते हैं और सामाजिक पूंजी पर असर डालते हैं।

शहरीकरण में संचयीकरण की अवधारणा की बढ़ोतरी के साथ अपराधों और सामाजिक ध्रुवीकरण को भी बढ़ावा मिला है, जिसने सुरक्षात्मक मानकों को बढ़ाया है। इन मानकों को बढ़ावा देने में समाज के धनाढ्य वर्ग का हाथ है। इन सुरक्षात्मक मानकों का एक उदाहरण भवन निर्माण में 'बंकर शैली' है, जिसे सिटाडेल (Citadel), फोर्टिफाइड (Fortified) और पैरानॉइड (Paranoid) स्थापत्य भी कहा जाता है। नगरीय विकास में अब गेटों, बैरियरों और दीवारों, सुरक्षा गार्डों, इंफ्रारेड सेंसर सिस्टम, पैनिक रूम, मोशन डिटेक्टर, पुलिस विभाग के साथ त्वरित प्रकिया वाले उपकरण, सर्विलांस सिस्टम, सीसीटीवी जैसी व्यवस्थाओं का महत्व बढ़ता जा रहा है।

को अपने घरों में ही रहने पर मजबूर करता है तो धनाढ्य वर्ग को अलग क्षेत्रों में जाने पर। यह पृथक्कीकरण एक–दूसरे के प्रति भय का माहौल बढ़ाता है और धीरे–धीरे इसके कारण सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक रूप से विखंडन सामने आता है। अपराध आधारित कुछ अध्ययन और नीतियों ने डर के इस मसले को उभारने का प्रयास किया है और यह स्पष्ट किया है कि भय का यह विषय शक्ति और शक्तिहीनता से जुड़ा है। यह तथ्य ऐसे महत्वपूर्ण तंत्र (Mechanism) के विकास में सहायक हो सकता है, जो निर्धन और सामाजिक दायरे से बाहर रहने वाले लोगों के जीवन पर दैनिक हिंसा–अपराधों के प्रभाव को कम कर सके और दुनियाभर के शहरों में हिंसा–अपराध के असर को रोक पाए।

11.12 अभ्यास प्रश्न (Model Questions)

1. शहरों में अपराध–हिंसा नियंत्रण में नगरीय शासन की क्या भूमिका है?
2. नगरों में नगरीय हिंसा का क्या प्रभाव होता है?
3. क्या आप मानते हैं कि नगरीय योजनाएं नगर की अपराध दर (Crime Rate) के कारण प्रभावित होती हैं?

11.13 सहायक अध्ययन (Suggested Readings)

Koonings, K., & Kruijt, D. (2007). Fractured cities: Social exclusion, urban violence and contested spaces in Latin America. London: Zed Books.

Rotker, S., & Goldman, K. (2002). Citizens of fear: Urban violence in Latin America. New Brunswick, NJ: Rutgers University Press.

Violence in the City Understanding and Supporting Community Responses to Urban Violence. 2011. Washington, D.C. : World Bank.

11.14 सन्दर्भ ग्रन्थ (References)

1. http://shodhganga.inflibnet.ac.in/bitstream/10603/38495/5/chapter%201.pdf
2. http://rnlkwc.org/pdf/anudhyan/18_04_2016/Urban_Local_Government_In_India.pdf
3. http://shodhganga.inflibnet.ac.in/bitstream/10603/38495/5/chapter%201.pdf
4. Rao. P.S. N., 'Good Urban Governance in India – The Road Ahead', Nagarlok, Vol. XXXVI, No. 2, April-June 2004, p. 52.

5. Definition of violence as Moncada Eduardo., 2013, Springer Science+Business media, New York.
6. http://pubs.iied.org/pdfs/10518IIED.pdf

इकाई 13: शहरीय विकास हेतू कार्यक्रम
(Programmes for Urban Development)

इकाई की रुपरेखा

13.0 उद्देश्य
13.1 परिचय
13.2 नगरीय नीति क्या है, प्रकृति और अवसर
13.3 भारत में नगरीय विकास कार्यक्रम
13.4 नगरीय नीतियां: अंतर देशीय दृष्टिकोण
13.5 भारत में वर्तमान नगरीय विकास योजनाएं
13.6 निष्कर्ष
13.7 अभ्यास प्रश्न
13.8 भावी अध्ययन

13.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के बाद हम जान सकेंगे:

1. नगरीय नीतियां क्या होती हैं और इनकी प्रकृति व अवसर क्या हैं
2. भारत में नगरीय नीतियों का विकास और इनके हितधारक
3. भारत में संचालित नगरीय विकास कार्यक्रम, इनका उद्देश्य और इनसे जुड़े मुद्दे

13.1 परिचय (Introduction)

भारत में स्वतंत्रता के पश्चात शहरीकरण की प्रक्रिया को गति मिली। 20वीं सदी के अंत में यह बात सामने आयी कि तत्कालीन शहरीकरण की प्रक्रिया की वजह से क्षेत्रीय असमानता और असंतुलन उभरा। इसके बाद की योजनाओं में अन्य उद्देश्यों के अलावा यह लक्ष्य भी महत्वपूर्ण था कि क्षेत्रीय संतुलन (Balance) एवं समन्वय (Co-ordination) बना रहे। हालांकि, नगरीय विकास का घटक आर्थिक विकास से सीधे तौर पर जुड़ा हुआ है। इसकी वजह यह है कि भारत की कुल सकल घरेलू उत्पाद (GDP) में नगरीय क्षेत्रों की भागीदारी 1950–51 में 29 प्रतिशत थी, जो 1980–81 में 47 प्रतिशत और 2007 में 63 प्रतिशत हो गयी। वर्ष 2021 तक इसके 75 प्रतिशत होने की संभावना है (Planning Commission 2008). यह भी माना जाता है कि जीडीपी में नौ से दस प्रतिशत की विकास दर भारतीय शहरों को बुनियादी तौर पर अधिक जीवनोपयोगी एवं समावेशी बनाने पर निर्भर है (Planning Commission, Govt. of India 2008). अधिकतर विकासशील देश तेज शहरीकरण के दौर से गुजर रहे हैं, जिसके चलते वहां नगरीय व्यवस्थाओं में निरंतर बदलाव आ रहे हैं। यद्यपि विभिन्न नीतियों को लागू करने का मकसद अंतिम लक्ष्य को प्राप्त करना होता है, लेकिन इनका संचालन करने वाली राजनीतिक–आर्थिक शक्तियां ही इसमें बड़े अवरोध के तौर पर सामने आती हैं। इसके चलते भारत में अधिकतर नगरों में शहरीकरण की प्रक्रिया नियोजित (Planned) होने के बजाय अनियमित और अनियंत्रित होकर अव्यवस्था में बदल गयी। (Gaganeswar, 1995).

वर्ष 1991 में उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण यानी LPG (liberalisation, privatisation and globalisation) की वजह से नीतियों में नगरीय अवस्थापना के वित्तीय निवेश को लेकर बदलाव किये गये। (Mehta and Mehta, 2010). वर्ष 2015 में पहली बार वित्तीय सेक्टर ने शहरों में नगरीय निकायों के जरिये अवस्थापना विकास (Infrastructure Development) के लिये नगरीय सेक्टर से समन्वय प्रारंभ किया। यह नगरीय निकायों के लिये एक नयी दिशा में कदम बढ़ाने जैसा था। इसकी पृष्ठभूमि में हम जानेंगे कि नगरीय निकाय नगरीय विकास प्रक्रिया को लेकर किस तरह नीतियों का निर्धारण करते हैं और इसके लिये क्या–क्या कदम उठाये जाते हैं।

13.2 नगरीय नीति, प्रकृति एवं अवसर (Urban Policy, It's Nature and Scope)

नगरीय नीति अवधारणात्मक (Conceptual) एवं व्यवस्थित (Systematic) गतिविधि है, जिसका संचालन नगर निकाय जैसे सार्वजनिक प्राधिकरण (Public Authority) द्वारा किया जाता है (Ministry for Regional Development of the Crezch Republic, 2010). इसके उद्देश्यों का निर्धारण प्रमुख नगरीय विकास मुद्दों, जरूरतों की पहचान और राष्ट्रीय व्यवस्था तथा क्षेत्रीय ढांचे में उनके महत्व, कार्य आदि के आधार पर किया जाता है। इनका निर्धारण छह सिद्धांतों के आधार पर किया जाता है। इस परिभाषा का तात्पर्य अंतरअनुशासनबद्ध व संयोजन की प्रकृति से है, यानी किसी समग्र नीति का निर्माण, निर्धारण एवं लागू करने की प्रक्रिया कई एकनिष्ठ उपनीतियों के संयुक्त समन्वय के जरिये होता है। क्षेत्रीय नीतियां, भूउपयोग योजनाएं इस संयोजन के लिये क्षेत्रीय तंत्र (Framework) तैयार करती हैं। Ministry for Regional Development of Crezch Republic,2010).

नगरीय नीतियों के सिद्धांत दरअसल उन दस्तावेजों का ढांचा हैं, जिनका उद्देश्य नगरीय विकास के लिये सरकार के स्तर पर उठाये जाने वाले विभिन्न कदमों का संयोजन एवं समन्वय (Co-ordination) है। इनकी मदद से ऐसी नियमावली और गतिविधियों को को चिहि्नत किया जाता है, जो निरंतर नगरीय विकास के लिये सर्वथा उपयोगी हों। जिनकी मदद से नगरों के विकास की जरूरतों को समझा जा सके और पूरी प्रक्रिया में मदद के लिये निजी और स्वयंसेवी सेक्टर को प्रेरित किया जा सके। भारत अब सिर्फ गांवों का देश नहीं रह गया है। वर्तमान में 31 करोड़ के करीब भारतीय 3700 के करीब शहरों और कस्बों

में रहते हैं, जबकि स्वतंत्रता के वक्त यह संख्या महज 60 लाख थी। पिछले 50 साल में भारत की आबादी में ढाई गुना की बढ़ोतरी हुई है, लेकिन भारतीय शहरों का विकास पांच गुना तक हुआ है। आंकड़ों की बात करें तो वर्ष 2011 में नगरीय आबादी 31.6 प्रतिशत रही। कस्बे या छोटे नगर भारत की जीडीपी में बड़ा योगदान करते हैं और उन सेवाओं के प्रदाता हैं जो उन नगरों–कस्बों में अथवा आसपास रहने वाले लोगों के लिये भी आवश्यक हैं। लेकिन, ये नगर सामाजिक, परिवहन, पर्यावरण, प्रदूषण संबंधी कई गंभीर समस्याओं से भी इसी वजह से जूझ रहे हैं।

शॉ (Shaw, 1999) ने नीति निर्माण में इसे बड़ी बाधा करार दिया है कि नगरीय नीति और योजना राज्य सूची के विषय हैं। इसकी वजह से जिस पंचवर्षीय योजना का निर्माण केन्द्र सरकार ने संवैधानिक विधायिका शक्ति से इतर विकास योजनाओं को गति देने के लिये किया था, वह नगरीय नीतियों के लिये सिर्फ निर्देशक तत्व (Directive Element) बनकर रह गयी। नगरीय नीतियों एवं योजनाओं के लिये नियम–सिद्धांतों का निर्माण आर्थिक विकास के लिये पूंजी संचय के मकसद से किया गया था। उदाहरण के लिये, 1960 में पूंजी के संकट ने शहरों पर केन्द्रित नीतियों के निर्माण को प्रोत्साहित किया, जो पहले से भारत के वार्षिक आर्थिक प्रदर्शन में बड़ा योगदान कर रहे थे। भारत की पहली और दूसरी पंचवर्षीय योजनाएं (1951-1961) पर विभाजन का साफ असर दिखता है। सान्याल (2014) के शब्दों में, इस दौर में लोगों के पलायन की तत्कालीन इतिहास की सबसे बड़ी घटना हुई। बड़ी संख्या में शरणार्थी भारत की ओर आये। उनकी जरूरतों को पूरा करने, आवासीय और अन्य सुविधाएं प्रदान करने में उपजी परिस्थितियों से दिल्ली, कलकत्ता (अब कोलकाता) जैसे बड़े शहरों के साथ राज्य एवं केन्द्र सरकारों तक को व्यग्र किये रखा। दिल्ली में किंग्सवे कैंप एवं कलकत्ता में कूपर्स कैंप जैसी जगहों की स्थापना भारत में नये आये इन लोगों के आवास के लिये की गयी, लेकिन उनकी तादाद बहुत अधिक होने के कारण इन शिविरों में व्यवस्थाएं, सुविधाएं कम पड़ने लगीं। बड़ी संख्या में लोगों को बैठे ही रहना पड़ता था, क्योंकि शिविरों में इससे अधिक व्यवस्था कर पाना मुश्किल हो गया था। सान्याल (2014) बताते हैं कि दिल्ली में मालवीय नगर, कालकाजी, लाजपतनगर आदि जिन क्षेत्रों को आज मध्यमवर्गीय लोगों का क्षेत्र और महंगा बाजार माना जाता है, उन्हें कभी पुनर्वास मंत्रालय ने शरणार्थियों के पुनर्वास के लिये इस्तेमाल किया था।

नगरीय नीति के बुनियादी तत्व (Fundamentals of Urban policy)

1. केन्द्रीय शहरों में हाशिये पर रहने वाले समूहों की निर्धनता और सामाजिक उपेक्षा आज के दौर के शहरों की सबसे बड़ी समस्या है। इसका निस्तारण अविलंब और संसाधन उपलब्ध कराने के दृढ़निश्चय के साथ किया जाना चाहिये, न कि इसे सिर्फ मामूली दिक्कत मानना चाहिये। ऐसे विशेष कार्यक्रम और नीतियों का निर्माण आवश्यक है जो ऐसे समूहों को विकास योजनाओं से जोड़ सकें।
2. नगरीय क्षेत्रों में आर्थिक और सामाजिक शक्तियों ने न तो संतुलन बनाये रखा है न ही साम्य। उद्योगों, परिवहन सुविधाओं, आवासीय व्यवस्थाओं, सामाजिक सेवाओं और नगरीय जीवन से जुड़े कई अन्य आयामों में अव्यवस्थाओं का माहौल लगातार बढ़ता जाता है और कई बार इस बढ़ावे की वजह नगरीय नीतियां ही होती हैं। ऐसे में नगरीय संतुलन की अवधारणा को समझना आवश्यक लगता है, 'सामाजिक परिस्थितियों में जब कुछ शक्तियां असंतुलन की स्थिति बनाती हैं तो ऐसी ताकतें भी उभरती हैं जो इसका प्रतिरोध करती हैं और धीरे–धीरे परिवर्तन करते हुए फिर संतुलन की स्थिति को साधती हैं।संघीय (Federal) अधिकारियों के लिये यह निरंतर लक्ष्य का विषय होना चाहिये, क्योंकि उनकी योजनाएं नगरीय क्षेत्रों को प्रभावित करती हैं और उनमें कुछ ऐसे भी होते हैं जो संतुलन नहीं चाहते हैं।' (planning tank, 2017).
3. नगरीय शासन के भंगुर (Fragile) और अनुपयोगी (Obsolescent) ढांचे ने नगरीय समस्याओं को जन्म दिया। नगरीय समस्याओं के निस्तारण को लेकर प्रभावी प्रयास नहीं करने की गैरजिम्मेदारी तो नगरीय सरकार में ही अकसर अंतर्निहित देखी गयी है। संघीय विचारों के साथ सरकारों को नगरीय परिस्थितियों के प्रति स्थानीय शासन के दायित्वों को जागरूक कर सुधारीकरण (Reformation) को प्रोत्साहित करने के प्रयास करने चाहिये। संघीय सरकार का एकमेव लक्ष्य स्थानीय शासन को शक्तिसंपन्न, अधिक प्रभावी, अधिक पारदर्शी, अधिक गतिशील और स्थानीय नागरिकों के प्रति अधिक दायित्वपूर्ण बनाना चाहिये। दूसरी ओर, एक

अच्छी संघीय सरकार को विशेष समस्याओं के निस्तारण के लिये तैयार की गयी समानांतर सत्ता व्यवस्थाओं को खत्म करने के साथ प्रभावी विकेन्द्रीकरण को बढ़ाना चाहिये।

4. संघीय नगरीय नीति का पहला और सबसे महत्वपूर्ण लक्ष्य नगरीय शासन की राजकोषीय गतिशीलता (Fiscal Vitality) को बढ़ाना और इसकी मदद से संसाधनों का विकास करना होना चाहिये। ताकि स्थानीय शासन के पास संसाधनों की पर्याप्त उपलब्धता हो और वह स्थानीय जनकल्याण को लेकर इनकी मदद से निर्णय ले सके।
5. नगरीय नीतियों में सार्वजनिक सेवाओं के समान वितरण के प्रावधानों को बढ़ावा देने के लिये आवश्यक बदलाव किये जाने चाहिये, जो विभिन्न नगरीय क्षेत्रों के अधिकार क्षेत्र में लागू हो सकें। संघीय नगरीय नीतियों में यह बिंदु प्रायिकता पर रहना चाहिये।
6. संघीय शासन को तकनीकी विकास, निर्धनता और अन्य कारणों से ग्रामीण क्षेत्रों से आबादी के नगरीय क्षेत्रों की ओर आने की गति व प्रक्रिया पर सर्वाधिक नजर रखनी चाहिये। इसके अलावा सघन आबादी वाले क्षेत्रों से उपनगरीय क्षेत्रों में भी लोगों के पलायन पर सरकार की नजर रहे।
7. नगरीय मामलों में राज्य सरकार को मुख्य भूमिका का निर्वहन करना चाहिये और इस काम में राज्य सरकार को संघीय सरकार की पूरी मदद व प्रोत्साहन मिलना चाहिये।
8. संघीय सरकार को प्रभावी प्रोत्साहन योजनाओं को लागू करना चाहिये, ताकि राज्य सरकार, स्थानीय निकाय और निजी सेक्टर संघीय नीतियों, कार्यक्रमों के सफल निष्पादन में मदद करें और निर्धारित लक्ष्य को हासिल किया जा सके।
9. संघीय शासन को नगरीय मसलों से जुड़ी सूचनाएं जुटाने के लिये निरंतर और वृहद् शोधकार्यों को बढ़ावा देना चाहिये।
10. संघीय शासन को स्वयं के उदाहरणों, प्रोत्साहन योजनाओं के माध्यम से प्राकृतिक संसाधनों को बढ़ावा देने और विकास के प्रयास करने चाहिये और सफल नगरीय विकास में सौंदर्यबोध के महत्व को भी ध्यान में रखना चाहिये।

13.3 भारत में नगरीय विकास कार्यक्रम (Urban Development Programmes in India)

'भारत में शहरीकरण का पिछले 35–40 वर्ष का रिकॉर्ड साफ करता है कि यहां निरंतर बढ़ती नगरीय आबादी के लिये सक्षम नगरीय प्रशासन, आवासीय और अन्य जरूरी सुविधाओं के लिये आवश्यक वित्तीय संसाधनों का असमान वितरण किया गया, जबकि प्रबंधन को लेकर भी अनदेखी की गयी।' (Nath,1986). अनियोजित एवं बेतरतीब तरीकों के कारण भारत के पिछड़े क्षेत्रों में औद्योगिक विकास की प्रक्रिया अप्रभावी रही। गलत शहरीकरण नीतियों के परिणामस्वरूप शहरों में बेरोजगारी बढ़ती गयी, जबकि शहरों में आबादी भी लगातार बढ़ रही थी।(Bandyopadhyay, 2017). विकास का अर्थ सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, पर्यावरणीय और सांस्कृतिक आयामों में जीवन की बेहतर परिस्थितियों से होता है। यह भविष्य के जीवन के लिये निरंतर क्षमता को बढ़ावा देने का भी परिचायक है। विकास एक गतिशील प्रक्रिया है, जो समग्र सामाजिक वातावरण को बदलती है। इसके आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, प्रशासनिक पहलू संतुलित एवं उर्ध्वगामी (Upwards) परिवर्तन को बढ़ावा देते हैं। यह अनिवार्य रूप से माना जाता है कि यह प्रक्रिया समाज के हर स्तर को अपनी इच्छाओं को पूर्ण करने के अवसर प्रदान करे।

भारत में नगरीकरण का जन्म ईसा से 2500 वर्ष पूर्व सिंधु घाटी में हुआ। इसके बाद से विभिन्न परिस्थितियों में भारत की नगरीय आबादी में निरंतर वृद्धि ने इसके अवस्थापना व्यवस्था पर दबाव बहुत अधिक बढ़ा दिया है। ऐसे में देश के निरंतर विकास के लिये बेहतर प्रबंधन और योजनाओं की आवश्यकता बढ़ गयी। स्वतंत्रता के बाद देश के विकास के लिये महत्वपूर्ण घटकों को ध्यान में रखते हुए भारत सरकार ने 1951 में पंचवर्षीय योजना लागू की। शुरुआती पंचवर्षीय योजना के दौरान भारत की अर्थव्यवस्था काफी पिछड़ी हुई थी, जिसमें आर्थिक लाभ के लिये आवश्यक व्यापार, उद्योगों के मुकाबले जनसंख्या में लगातार और काफी अधिक बढ़ोतरी हो रही थी। इसके चलते प्रति व्यक्ति आय भी काफी कम थी। यही वजह रही कि भारत में योजना को केन्द्रीय लक्ष्य मानकर विकास की ऐसी प्रक्रिया की शुरुआत की गयी, जिसका उद्देश्य लोगों के जीवनस्तर में सुधार के साथ उन्हें समृद्धि के बेहतर अवसर प्रदान करना था। (Commission) चूंकि 1947 से ही भारतीय अर्थव्यवस्था योजनाओं पर आधारित थी, योजना आयोग को भारत के पांच साल के विकास, क्रियात्मकता के लिये योजनायें बनाने का दायित्व दिया गया। 2014 में

योजना आयोग को भंग कर इसकी जगह नीति आयोग को यह जिम्मेदारी दी गयी। यहां नीति आयोग का अर्थ National Institution for Transforming India (NITI) है।
स्वतंत्रता से पूर्व भी देश के विकास को लेकर योजनाएं बनाने के प्रयास होते रहे थे। उदाहरण के लिये 1938 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की ओर से राष्ट्रीय योजना समिति बनायी गयी, 1945 में द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद पुनर्गठित इंडियन ट्रेड यूनियन का पीपुल्स प्लान (Peoples' Plan) और 1950 में जयप्रकाश नारायण की सर्वोदय योजना। इन सभी में आर्थिक रूप से भारत के विकास को लेकर जरूरी कदम सुझाये गये।
स्वतंत्रता के पश्चात प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू के समाजवादी प्रभाव पर आधारित भारत की पहली पंचवर्षीय योजना 1951 में आयी। इसकी प्रक्रिया 1950 में योजना आयोग के गठन के साथ शुरू हुई, जिसका लक्ष्य संसाधनों की उपलब्धता, उत्पादन में वृद्धि, अवसरों–रोजगारों की उपलब्धता आदि के जरिये लोगों के जीवनस्तर में सुधार तय किया गया। योजना आयोग को देशभर के संसाधनों के मूल्यांकन, कम उपलब्धता वाले संसाधनों में वृद्धि, संसाधनों के प्रभावी और संतुलित उपभोग और लक्ष्य को लेकर प्रायिकताओं के हिसाब से योजनायें तैयार करने का जिम्मा दिया गया।
पहली पंचवर्षीय योजना 1951 में आयी, जिसके बाद दो और पंचवर्षीय योजनायें योजना आयोग ने तैयार कीं, जो 1965 तक चलीं, क्योंकि इसी दौर में भारत–पाक विवाद उभर आया। इसके बाद 1966 से 1969 तक दो वर्ष अकाल पड़ने, रुपये के अवमूल्यन, महंगाई दर में बढ़ोतरी और संसाधनों की कमी की वजह से योजना आयोग की गतिविधियों पर असर पड़ा। ऐसे में तीसरी पंचवर्षीय योजना के 1965 में समाप्त होने के बाद चौथी योजना 1969 में लागू की जा सकी। वर्ष 1990 में लगातार बदलती राजनीतिक परिस्थितियों के चलते आठवीं योजना लागू नहीं हो सकी। ऐसे में 1990–91 एवं 1991–92 को वार्षिक योजना के तौर पर लागू किया गया। आठवीं पंचवर्षीय योजना 1992 में लागू की जा सकी।

पहली पंचवर्षीय योजना (1951–1956)

हेरड–डोमर मॉडल पर आधारित इस पंचवर्षीय योजना के जरिये भारत ने 2.1 प्रतिशत की विकास दर का लक्ष्य रखा था। इस पंचवर्षीय योजना में मुख्य फोकस बिजली, कृषि, परिवहन सुविधाओं के विकास के साथ महंगाई दर पर लगाम कसे रखना था। शरणार्थियों की बढ़ती संख्या एवं दामों में बढ़ोतरी के चलते यह आवश्यक हो गया था। इस पंचवर्षीय योजना को भाखड़ा बांध, मेट्टूर बांध, हीराकुंड बांध जैसी बड़ी सिंचाई परियोजनाओं के लिहाज से वरदान भी माना जाता है। शरणार्थियों की व्यवस्था एवं खाद्यान्न की कमी को दूर करने, महंगाई पर रोक के साथ इस योजना ने 3.6 प्रतिशत की विकास दर हासिल की।

दूसरी पंचवर्षीय योजना (1956–1961)

4.5 प्रतिशत की विकास दर हासिल करने के लक्ष्य के साथ इस योजना का मॉडल प्रो. पीसी महलानोबिस ने तैयार किया था। यही वजह है कि इसे महलानोबिस प्लान के तौर पर भी जाना जाता है। पहली पंचवर्षीय योजना के बाद खाद्यान्न संकट की समस्या काफी हद तक दूर हो चुकी थी। देश आर्थिक तौर पर विकास की ओर बढ़ रहा था, लिहाजा इस योजना में विदेशी मदद और आयात पर फोकस किया गया। इसी योजना के दौरान रूस, ब्रिटेन एवं जर्मनी की मदद से क्रमशः भिलाई, दुर्गापुर, राउरकेला स्टील प्लांट समेत पांच स्टील प्लांट लगाये गये।

तीसरी पंचवर्षीय योजना (1961–1966)

इस योजना के लिये विकास दर का लक्ष्य 5.6 प्रतिशत रखा गया। इस योजना में पिछली दो योजनाओं के अनुभवों का इस्तेमाल किया गया। विदेश निर्यात, उद्योगों के विकास पर इस योजना में फोकस किया गया, ताकि आर्थिक स्थिति को और मजबूत किया जा सके। इस पंचवर्षीय योजना का मकसद भारत में आर्थिक विकास के संसाधनों का विकास करना थ। लेकिन, इसी बीच 1962 में भारत–चीन युद्ध और 1965 में भारत–पाक युद्ध के चलते इस योजना का लक्ष्य रक्षा विकास की ओर मोड़ना पड़ा। इसके अलावा 1965–66 में अकाल ने भी मुश्किलें बढाईं। इस सबके चलते यह योजना 2.8 प्रतिशत की ही

विकास दर हासिल कर सकी, जो लक्ष्य से काफी कम थी। इसके चलते इस पंचवर्षीय योजना को असफल माना गया।

योजनावकाश (1966–1969)

इस अवधि में भारत में विभिन्न कारणों से तीन वार्षिक योजनाओं को लागू किया गया। यही वजह है कि इस अवधि को पंचवर्षीय योजनाओं के अवकाश का काल भी माना जाता है। इस अवधि में देश ने 4.3 प्रतिशत की विकास दर हासिल की। दरअसल, तीसरी पंचवर्षीय योजना की असफलता के बाद तीन अल्पकालिक योजनाओं की जरूरत महसूस हुई। इनका लक्ष्य खाद्यान्न संकट को देखते हुए कृषि को बढ़ावा देना और खेती के नये तरीकों, बीज–खाद की पर्याप्त उपलब्धता, सिंचाई व्यवस्था और मिट्टी संरक्षण की प्रक्रिया को बढ़ाना था। इन अल्पकालिक योजनाओं ने वास्तव में भारत के आर्थिक विकास में खासी मदद की और तीसरी योजना के काल में हुए नुकसान की भरपाई भी की।

चौथी पंचवर्षीय योजना (1969–1974)

5.7 प्रतिशत के लक्ष्य विकास दर के साथ इस योजना का मकसद आर्थिक तौर पर भारत की आत्मनिर्भरता और स्थायित्व को बढ़ाना था। भारत–पाक युद्ध के दौरान कई देशों ने भारत को कच्चा माल देने से इनकार कर दिया था। ऐसे में इस योजना में कृषि उत्पादन को बढ़ावा देने के साथ अन्य सेक्टर में भी स्थायित्व पर फोकस किया गया। प्रारंभिक दो वर्षों में रिकॉर्ड उत्पादन हुआ, लेकिन बाद के तीन वर्षों में मौसम और अन्य कारणों से उत्पादन पर खासा असर पड़ा। इसके अलावा भारत–पाक युद्ध के बाद बांग्लादेशी शरणार्थियों की बढ़ती संख्या ने भी मांग और उपलब्धता को प्रभावित किया। इस योजना से भारत को 3.9 प्रतिशत की विकास दर हासिल हुई। जनसंख्या नियंत्रण को लेकर परिवार नियोजन कार्यक्रम की शुरुआत को छोड़कर अन्य क्षेत्रों में इस योजना को नाकाम माना गया।

पांचवीं पंचवर्षीय योजना (1974–1979)

4.4 प्रतिशत विकास दर के लक्ष्य के साथ इस योजना का प्रारूप डीपी धर ने तैयार किया था। इस योजना को तेल की बढ़ती कीमतों के कारण पैदा हुए आर्थिक संकट और गेहूं के थोक व्यापार को अपने हाथों में लेने की सरकार की नाकामी को ध्यान में रखते हुए तैयार किया गया। इस योजना का मुख्य उद्देश्य निर्धनता को दूर कर आत्मनिर्भरता को बढ़ाना था। 1975 में आपातकाल की घोषणा के बाद इसका लक्ष्य बदलकर प्रधानमंत्री के 20 सूत्रीय कार्यक्रम कर दिया गया। 1978 में यह योजना समाप्त कर दी गयी। इस योजना ने 4.8 प्रतिशत की विकास दर हासिल की, लेकिन उच्च महंगाई दर को समाप्त कर पाने में यह योजना सफल नहीं हो सकी।

छठी पंचवर्षीय योजना (1980–1985)

इस अवधि में भारत ने 5.2 प्रतिशत की विकास दर हासिल की। इस योजना का मुख्य लक्ष्य राष्ट्रीय आय में बढ़ोतरी, तकनीकी विकास, गरीबी उन्मूलन, रोजगार योजनाएं, जनसंख्या नियंत्रण था। इसी दौर में TRYSEM -Training of Rural Youth for Self Employment, IRDP -Integrated Rural Development Programme, NREP -National Rural Employment Programme जैसी योजनाएं लागू हुईं। इस पंचवर्षीय योजना को सफल माना जाता है।

सातवीं पंचवर्षीय योजना (1985–1990)

5 प्रतिशत विकास दर का लक्ष्य इस पंचवर्षीय योजना के लिये तय किया गया था। इस योजना का मुख्य लक्ष्य खाद्यान्न एवं रोजगार सेक्टर रहे। उत्पादन में बढ़ोतरी और विभिन्न अवसरों की उपलब्धता का लक्ष्य

हासिल करने के साथ इस पंचवर्षीय योजना के जरिये भारत को 6 प्रतिशत की विकास दर हासिल हुई, जो इसके लक्ष्य से अधिक थी।

आठवीं पंचवर्षीय योजना (1992–1997)

5.6 प्रतिशत विकास दर के लक्ष्य के साथ इस पंचवर्षीय योजना को लागू किया गया। इससे पहले दो वर्षों तक केन्द्र में राजनीतिक उथल–पुथल बनी रही थी। प्रधानमंत्री पीवी नरसिंहा राव की अध्यक्षता में इस योजना में कमजोर आर्थिक स्थिति को शक्तिसंपन्न बनाने पर फोकस किया गया। इसी दौर में आर्थिक और वित्तीय सुधारों की कवायद शुरू हुई, जिसे उदारीकरण भी कहा जाता है। इस अवधि में कृषि, उत्पादन, निर्यात–आयात, वाणिज्य–व्यापार सेक्टर में बेहतर विकास देखा गया, जबकि घाटा भी कम करने में कामयाबी मिली। इस योजना से भारत ने 6.8 प्रतिशत की विकास दर हासिल की जो भारतीय योजना के इतिहास में सर्वाधिक विकास दर थी।

नवीं पंचवर्षीय योजना (1997–2002)

सामाजिक न्याय एवं समानता के साथ इस पंचवर्षीय योजना में 6.5 प्रतिशत की विकास दर हासिल करने का लक्ष्य था। इस योजना में निजी सेक्टरों के साथ विदेशी निवेश यानी एफडीआई पर भी फोकस किया गया। शिक्षा, स्वास्थ्य समेत विभिन्न अवस्थापना में निजी सेक्टरों को निवेश के लिये प्रोत्साहित किया गया। रोजगार, ग्राम्य विकास, कृषि विकास और गरीबी उन्मूलन भी इस योजना के अहम हिस्से रहे।योजना से भारत को 5.4 प्रतिशत की विकास दर हासिल हुई।

दसवीं पंचवर्षीय योजना (2002–2007)

आर्थिक विकास के साथ साक्षरता दर में वृद्धि, महिलाओं की बेहतर स्थिति, श्रम मूल्य, मातृ–शिशु मृत्यु दर में कमी, साफ पेयजल की उपलब्धता, नदियों से प्रदूषण खत्म करना आदि इस योजना के मुख्य लक्ष्य थे। आठ फीसदी की विकास दर इस योजना से हासिल करने का लक्ष्य था। विकास को लेकर शासन की भूमिका को ध्यान में रखते हुए इस योजना में पंचायती राज को महत्व दिया गया, जबकि राज्यवार भी विकास लक्ष्य तय किये गये। इससे संतुलित विकास प्रक्रिया में मदद मिली। योजना के समाप्त होने पर भारत ने 7.6 प्रतिशत की विकास दर हासिल की और योजनाओं व विकास में राज्यों की भूमिका को तय करने के साथ कृषि को अर्थव्यवस्था का अहम अंग माना गया।

11वीं पंचवर्षीय योजना (2007–2012)

समावेशी विकास आधारित इस योजना का लक्ष्य नौ प्रतिशत की विकास दर प्राप्त करना था। शिक्षा–स्वास्थ्य की बुनियादी सेवाओं की व्यवस्था, रोजगार के अवसर, गरीबी उन्मूलन, वायु प्रदूषण पर रोकथाम, वनों का संरक्षण, लैंगिक असमानता को दूर करना आदि इस समावेशी विकास की प्रक्रिया के हिस्से थे। ग्रामीण क्षेत्रों में संचार सुविधाओं का विकास भी इस योजना का अहम लक्ष्य थेः

1. सभी गांवों में वर्ष 2012 तक टेलीफोन कनेक्शन और ब्रॉडबैंड सुविधा उपलब्ध कराना
2. एक हजार और इससे अधिक आबादी वाले गांवों तक वर्ष 2009 तक सड़क निर्माण
3. सभी गांवों में वर्ष 2009 तक बिजली कनेक्शन

इस पंचवर्षीय योजना ने आठ प्रतिशत की विकास दर हासिल की। इस पंचवर्षीय योजना के निर्धारित लक्ष्य से कम प्रदर्शन करने के लिये फंड की कमी को बड़ी बाधा माना जाता है।

12वीं पंचवर्षीय योजना (2012–2017)

यह पंचवर्षीय योजना दूसरे वैश्विक मंदी के दौर में प्रारंभ हुई। यूरोजोन में उभरे आर्थिक संकट ने दुनिया के अन्य देशों की तरह भारत पर भी खासा असर डाला। ऐसे में इस पंचवर्षीय योजना का मूल मकसद आर्थिक स्थायित्व को बनाये रखना और समावेशी व निरंतर विकास की प्रक्रिया को बनाये रखना था। इसके लिये गरीबी उन्मूलन, क्षेत्रीय संतुलन, असमानता को दूर करना, सशक्तीकरण को बेहतर स्वास्थ्य सेवाओं, कौशल विकास, तकनीकी विकास, अवस्थापना विकास के जरिये पूर्ण करना था। सूचना तकनीकी के विकास, संचार, सड़क विकास आदि पर भी फोकस किया गया। उर्जा क्षेत्र में NELP-New Exploration Licensing Policy लागू की गयी।

नीति आयोग (National Institution for Transforming India)

एक जनवरी 2015 को नीति आयोग का गठन किया गया। हालांकि, उस वक्त 12वीं पंचवर्षीय योजना लागू थी, जिसे संचालित रहने दिया गया। अब पंचवर्षीय योजनाओं का स्थान नीति आयोग ने ले लिया है। यह संस्थान सरकार के थिंक टैंक के रूप में सेवाएं प्रदान करेगा और उसे निर्देशात्मक एवं नीतिगत गतिशीलता प्रदान करेगा। नीति आयोग, केन्द्र और राज्य स्तरों पर सरकार को नीति के प्रमुख कारकों के संबंध में प्रासंगिक महत्वपूर्ण एवं तकनीकी परामर्श उपलब्ध कराएगा। इसमें आर्थिक मोर्चे पर राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय आयात, देश के भीतर, साथ ही साथ अन्य देशों की बेहतरीन पद्धतियों का प्रसार नए नीतिगत विचारों का समावेश और विशिष्ट विषयों पर आधारित समर्थन से संबंधित मामले शामिल होंगे।

13.4 नगरीय नीतिः अंतर राष्ट्रीय दृष्टिकोण (Urban Policy: An Inter Country Perspective)

इवान टोरोक के अनुसार, 'राष्ट्रीय नगरीय नीति किसी विशेष दृष्टि अथवा लक्ष्य को हासिल करने के लिये सरकार के स्तर पर की जाने वाली प्रक्रिया और निर्णयों का एक संयुक्त स्वरूप है। इस प्रक्रिया में विभिन्न घटकों में समन्वय के जरिये सुधारात्मक, उत्पादात्मक, समावेशी और निरंतर नगरीय विकास की प्रक्रिया को लंबे समय के लिये संचालित किया जाता है। ऐसी राष्ट्रीय प्रक्रिया निरंतर गतिशील रहती है।' (2014). सामयिक नगरीय नीतियों का सीधा जुड़ाव यूरोपीय नगरों में 19वीं–20वीं सदी में तेजी से हुए विकास से है। ये नगर दुनिया के सबसे बड़े मानवीय व्यवस्था वाले नगर बन गये और इनके कारण भौतिक समन्वय समेत कई सामाजिक चुनौतियां भी उभरीं। (Chandler and Fox, 1974; Hall and Tewdwr-Jones, 2011; Collier and Venables, 2014).

शहरीकरण की प्रक्रिया औद्योगीकरण से सीधे तौर पर जुड़ी हुई थी। इस अवधि में श्रमिकों की भारी मांग के चलते लोग ग्रामीण क्षेत्रों की निर्धन परिस्थितियों से निकलकर शहरों की ओर आये। शहरों के स्थानिक महत्व के पीछे परिवहन सुविधा का बड़ा हाथ रहा। योजना की अवधारणा का जन्म दरअसल नगरीय सुधार के अभियान से हुआ, जिसका कारण निर्धन श्रमिक वर्ग की कठिनाइयों, मलिन जीवनस्तर, निचले स्तर की सुविधाओं और तेजी से हो रहे नगरीय विकास से उपजी परिस्थितियां थीं। ऐसे में पारंपरिक ग्रामीण तरीकों के अनुसार रहने वाले कुछ सामंजस्यपूर्ण समुदायों ने सामाजिक, भौतिक आयामों को नया विचार दिया (Hall, 1988). 1870 के बाद शहरों का तेजी से विस्तार हुआ, जिसके चलते सस्ती परिवहन सुविधा भी योजनाओं का अहम हिस्सा बनी। समय के साथ घोड़ागाड़ी, फिर बिजली से चलने वाले ट्राम और बसें और बड़े शहरों में ट्रेन, सबवे जैसी व्यवस्थाएं विकसित हुईं। 20वीं सदी के शुरुआती दशकों में ब्रिटेन, जर्मनी, स्वीडन और अन्य यूरोपीय देशों में औपचारिक नगरीय विकास व्यवस्था ने नगरीय विकास के नये साधनों के साथ संपत्ति विकास के उन गुणों को जन्म दिया, जो इससे पहले कभी अस्तित्व में नहीं थे। एबेनेजर हॉवर्ड (Ebenezer Howard), पैट्रिक गेडेस (Patrick Geddes), ला कॉर्बूजर (Le Corbusier), सिग्फ्रेड गिडियॉन (Sigfried Giedion) जैसे प्रारंभिक विद्वानों और अंतर्राष्ट्रीय बॉहास डिजाइन स्कूल (International Bauhaus Design School) ने भू–उपयोग क्षेत्र, नगरी विस्तार योजनाओं, ग्रीन बेल्ट, गार्डन सिटी, मास्टर प्लानिंग के सिद्धांत दिये जो बेहद प्रभावी साबित हुए और बहुत जल्दी लगभग पूरी दुनिया में इनका प्रसार हुआ। इन सिद्धांतों में सघनता के स्तरों के हिसाब से भवनों की ऊंचाई को सीमित करने, भू–उपयोग की अलग–अलग व्याख्या (विशेष तौर पर आवासीय,

औद्योगिक और व्यापारिक गतिविधियों के लिये भू–उपयोग), यातायात व्यवस्था के पैटर्न को स्पष्ट करने और अनुक्रमाधाारित नगरीय विकास को बढ़ावा देने में मदद मिली। (Hall, 1988, 1998).

स्थानीय शासन अपने अधिकार क्षेत्र में नगरीय पर्यावरण के निर्माण के लिये विकास की गुणवत्ता को नियंत्रित करने, हरित क्षेत्र के संरक्षण और यातायात नियमों को लागू करवाने के लिये पर्याप्त कानूनी शक्तिसंपन्न थे। लोगों के अपनी जमीनों पर मनचाहे विकास पर नियंत्रण के लिये सबसे महत्वपूर्ण साधन भू–उपयोग क्षेत्र का निर्धारण था। लेकिन, इससे कई बार यह विवाद भी खड़े हुए कि निर्धन वर्ग की बड़ी संख्या को एक ही बहुमंजिला इमारत में रहना पड़ता था, जबकि कई अभिजात्य लोगों के आवास बड़े–बड़े भूखंडों पर बने होते थे। नगरीय क्षेत्रों के भावी प्रारूप (Future Layout) के निर्धारण में राज्य ने नीति निर्देशक की भूमिका निभाई। इन सबका मेल बेहतर सार्वजनिक व्यवस्था के तौर पर सामने आया, हालांकि इसमें भी कई बार अभिजात्य वर्ग को निर्धन वर्ग की अपेक्षा अधिक सहूलियतें प्रदान की जाती थीं। नगरीय योजना एक रैखिक एवं तकनीकी गतिविधि थी, जिसमें स्थानिक दृष्टिकोण या भौतिक रूपरेखा महत्वपूर्ण थी, जिसे मास्टर प्लान कहा जाता है। और यहां आधारभूत मूल्यों के दांव पर लगने की स्थिति पर सवाल उठाने का बेहद सीमित मौका मिलता था। (Hall, 1988).

उत्तरी अमेरिका में भी इसी दौर में औद्योगीकरण और आप्रवासन के फलस्वरूप शहर तेजी से विकसित हो रहे थे। फिलाडेल्फिया का 'Grid Plan' इस महाद्वीप में नगरीय विचार के लिये विशेष रूप से प्रभावी था। यह किसी क्षेत्र के सर्वे और वहां नये शहर के विकास का सबसे आसान तरीका बना। इसने वहां अवस्थापना विकास से जुड़े सभी पहलुओं को स्पष्ट करने के साथ मानकानुरूप प्लॉटों के विकास से भूमि बाजार को विकसित किया, जिन्हें आसानी से बेचा–खरीदा जा सकता था। शहर के आसपास के निम्न सघनता वाले क्षेत्रों में एकल परिवारों के स्वतंत्र आवास की परंपरा भी अमेरिका से ही विस्तारित हुई, जिसने कारों की खरीद को भी बढ़ावा दिया। हालांकि, आवास के अन्य तरीके भी यहां प्रचलित थे। यूरोप में टैरेस वाले जुड़े हुए घर आम थे, मध्य क्षेत्र में आंगन वाले घरों में लोग रहते थे, वहीं अफ्रीकी और एशियाई व्यवस्था में आंगन, चहारदीवारी युक्त छोटे घर पाये जाते थे। 20वीं सदी के कुछ दशकों में ही नगरीय योजना कई यूरोपीय देशों में राजनीतिक शक्ति और सामाजिक दबाव का स्पष्ट हिस्सा बन गयी। बर्लिन, रोम, मैड्रिड, मॉस्को में तानाशाह शासन के दौर में पुनर्विकास के नाम पर भारी मात्रा में ध्वस्तीकरण किया गया, जिसके लिये आम जनता को निष्कासित भी किया गया। इस दौरान आम नागरिकों को सलाह–सुझाव देने अथवा चर्चा का कोई अधिकार नहीं था।

यूरोप और अमेरिकी देशों में नगरीय विकास का तीसरा दृष्टिकोण राष्ट्रीय नगरीय नीति (NUP) उभरा। इसे नव शहरीवाद (New Urbanism) या तीव्र विकास (Smart Growth) कहा गया (UN-Habitat 2013). इसका एक उद्देश्य ऐसे नगरीय स्वरूपों को बढ़ावा देना है जो प्राकृतिक पर्यावरण के प्रति संवेदनशील हों। इसके अलावा नगरीय क्षेत्रों को विशेष पहचान दिलाना, वाणिज्यिक–व्यापारिक संपत्तियों का विकास, एकसमान आवासीय क्षेत्र, उपनगरीय क्षेत्रों का नियंत्रण भी इसके लक्ष्य थे। भविष्य को ध्यान में रखते हुए दीर्घकालिक यातायात व्यवस्था के हिसाब से भूउपयोग, पारंपरिक विभाजन भी इसमें किया गया। नव शहरवाद ऐसी योजना को बढ़ावा देता है जो सुगठित हो, उच्च सघनता, सम्मिलित विकास करे, जिसमें घर, कार्यक्षेत्र, बाजार, मनोरंजन आदि सुविधाएं निकट होकर निरंतर शहरीकरण के दायरे में आ जायें।

बेहद सघन आबादी वाले क्षेत्रों में रहने वाले लोगों के प्रोत्साहन के लिये उच्च गुणवत्ता वाले सार्वजनिक स्थान आवश्यक पहलू है। निजी कारों के मुकाबले सार्वजनिक परिवहन सुविधाका इस्तेमाल करने वाले अथवा पैदल–साइकिल पर चलने वालों को भी बेहतर माना जाता है। परिवर्तनोन्मुखी (Transit-oriented) विकास नगर के आसपास सघन आवासीय व्यवस्था में लोगों के बदले मिलने वाली पहुंच (Accessibility) का पूंजीकरण करना चाहता है। नगरीय योजनाओं को लेकर यह व्यवस्था नगरीय योजनाकारों (Urban Planners) और निर्माणकर्ताओं (Developers) में परंपरागत निर्धारक भूमिका के बजाय संवाद बढ़ाती है, जिसके तहत भूमि पर निर्माण और अवस्थापना संबंधी विकास के अधिकारों के

अलावा सार्वजनिक सुविधाओं में योगदान पर सहमति बनती है। अकसर यह तर्क दिया जाता है कि सुगठित एवं एकीकृत नगरीय स्वरूप निम्न सुविधाएं देता हैः 1. शहर की समृद्धि (अनुपूरक गतिविधियों के बेहतर समन्वय एवं संयोजन के जरिये) 2. सामाजिक समावेश (नौकरियों और सुविधाओं तक बेहतर पहुंच के माध्यम से) 3. सामाजिक गतिशीलता और गुणवत्तापरक जीवन (सार्वजनिक सुविधाओं तक लोगों की पहुंच और जीवनशैली में सुधार के जरिये) 4. कम लागत की जनसुविधाएं (भारी मात्रा में अवस्थापना विकास से होने वाली बचत के जरिये) 5. पर्यावरणीय नुकसान को कम करना और मानव सुरक्षा (पुराने भवनों की मरम्मत और पारिस्थितिकी अवस्थापना को होने वाली हानि को कमतर करके). वे शहर जहां इन बिंदुओं की अनदेखी की जाती है, वहां भीड़, प्राकृतिक आपदाओं, असमान बुनियादी सुविधाओं, बेहद सीमित निकाय वित्त और भूमि व आवासों को लेकर सामाजिक–राजनीतिक द्वंद्व की आशंकाएं बनी रहती हैं। ऐसे शहर अवस्थापना के ऐसे जाल में फंस सकते हैं, जहां भू–उपयोग का कोई पैटर्न तय नहीं होता, पानी, उर्जा समेत प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुंध और अनुपयोगी दोहन किया जाता है और कार्बन उत्सर्जन यहां चरम पर होता है।

चौथा विचार नगरीय क्षेत्रों में सामाजिक उपेक्षा के मसले से निपटने का है। फ्रेंच विद्वान हेनरी लिफेवर (Henri Lefbvre, 1901-1991) ने सर्वप्रथम इस विचार का प्रस्ताव 'शहर का अधिकार' (Right to the City) के तौर पर दिया। यह दृष्टिकोण बताता है कि शहरीकरण को जितना अधिक महत्व दिया जाता है, राजनीतिक उपेक्षा के मामले उतने ही बढ़ते जाते हैं। ग्रामीण–शहरी पलायन, बड़े पैमाने पर बस्तियों को हटाने के कार्यक्रमों, आर्थिक पुनर्विकास योजनाओं के विस्थापन के प्रभावों से उपजी प्रतिक्रियाओं ने भी इस विचार को उभारा। यह नारा ब्राजील एवं दक्षिणी अफ्रीका जैसे देशों में सामाजिक अभियानों का अभिन्न अंग बन गया। यह विचार लोगों के शहरों की ओर विस्थापित होने के अधिकार से भी आगे की बात करता है। यह मानता है कि एक बार भी शहर में आ जाने के बाद यह लोगों का अधिकार है कि उन्हें औपचारिक तौर पर नागरिक की पहचान मिले। उन्हें उनके भविष्य के लिये तय की जाने वाली नीतियों, योजनाओं के निर्धारण में पर्याप्त भागीदारी मिले, नगरीय संसाधनों, आवास एवं अन्य बुनियादी जनसुविधाओं तक उनकी सीधी और बेहतर पहुंच हो। यह विचार मानता है कि सरकारों को अधिकार मांगने वालों पर आरोप लगाने या उनका दमन करने के बजाय कमियों को स्वीकार करने के साथ सुधार के प्रयास करने चाहिये। जमीन पर अनौपचारिक व्यवस्थाओं और अनौपचारिक उद्यमों की पहचान कर उन्हें तकनीकी योग्यता, संसाधन मुहैया कराकर औपचारिक बनाने के साथ आवास, जनसुविधाएं, व्यापार नियंत्रण के मानकों को पूरा करना चाहिये। डेविड हार्वे (David Harvey) इस कथन के साथ इस विचार को और आगे बढ़ाते हैं, 'शहर का अधिकार नगरीय संसाधनों पर किसी व्यक्ति की पहुंच मात्र तक सीमित नहीं है। वास्तव में यह शहर का बदलाव कर स्वयं के बदलाव की प्रक्रिया है। यह व्यक्तिगत अधिकार नहीं, बल्कि सामान्य और सामूहिक परिवर्तन की प्रक्रिया है, जो सामूहिक शक्ति के जरिये शहरीकरण की प्रक्रिया को अपरिहार्य रूप से रूपांतरित कर सकती है।' (Harvey, 2008, p. 23)

13.5 भारत में नगरीय विकास योजनाएं (Urban Development Plans in India)

स्वतंत्रता के पश्चात भारत में विकास, रोजगार को लेकर कई योजनाओं का संचालन किया गया। इसके साथ ही विभिन्न विकास परियोजनाओं, कार्यक्रमों के माध्यम से नगरीय क्षेत्रों के विकास को तेजी प्रदान करने के प्रयास किये गये। भारत में आर्थिक, समावेशी विकास के लक्ष्य से संचालित विभिन्न विकास योजनाओं को हम निम्नवत समझ सकते हैंः

1. **1965ः** क्रेडिट ऑथोराइजेशन स्कीम (CAS) का लक्ष्य रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया के जरिये पूंजी पर नियंत्रण की गुणवत्तापरक व्यवस्था बनाना था।
2. 1966–67ः हाई यील्डिंग वेराइटी प्रोग्राम (HYVP) का मकसद खाद्यान्न संकट को दूर करने के लिय फसलों की पैदावार को बढ़ाना और इसके लिये उच्च गुणवत्ता वाले व बीजों, फसलों को अपनाना था
3. **1975ः** कमांड एरिया डेवलपमेंट प्रोग्राम (CADP) का लक्ष्य बेहतर सिंचाई सुविधाओं का विकास और इनके जरिये कृषि विकास था
4. **1975ः** बीस सूत्री कार्यक्रम (TTP) को गरीबी उन्मूलन और जीवनस्तर में सुधार के लिये आवश्यक सभी बुनियादी उद्देश्यों को पूर्ण करने के लिये संचालित किया गया

5. **1977—78:** डेजर्ट डेवलपमेंट प्रोग्राम (DDP) इस विकास कार्यक्रम का लक्ष्य पर्यावरणीय संतुलन को बनाये रखते हुए मरुस्थल के विस्तार को नियंत्रित करना था
6. **1977—78:** काम के बदले अनाज यानी फूड फॉर वर्क कार्यक्रम का लक्ष्य श्रमिक वर्ग को खाद्यान्न उपलब्ध कराना था
7. **1986:** सब्सिडी एवं ऋण सुविधा के जरिये निर्धन वर्ग को स्वरोजगार के लिये प्रेरित करने के मकसद से सेल्फ इंप्लॉयमेंट प्रोग्राम फॉर द पुअर (SEPUP) कार्यक्रम संचालित हुआ
8. **1990:** नगरीय लघु उद्यमियों की मदद के लिये स्कीम फॉर अर्बन माइक्रो इंटरप्राइजेज (SUME)
9. **1990:** नगरीय निर्धन वर्ग के लिये स्कीम ऑफ अर्बन वेज इंप्लॉयमेंट (SUWE)
10. 1991: काले धन को रोकने के लिये नेशनल हाउसिंग बैंड वॉलन्टियरी डिपॉजिट स्कीम (NHBVDS) संचालित की गयी, जिसके जरिये निर्धन वर्ग के लिये निम्न मूल्य वाले आवास तैयार किये गये
11. **1992:** निजी क्षेत्र में काम करने वाले लोगों के लिये नेशनल रिन्यूअल फंड (NRF)
12. **1993:** विकास कार्यों को बढ़ावा देने के लिये मेंबर्स ऑफ पार्लियामेंट लोकल एरिया डेवलपमेंट स्कीम (MPLADS)
13. **1994:** बेहतर जल वितरण, सीवेज, नाले—नालियों के निर्माण, परिवहन सुविधा, भू—उपयोग के लिये स्कीम फॉर इंफ्रास्टक्चरल डेवलपमेंट इन मेगा सिटीज (SIDMC) एवं नगरों में बस्तियों के सुधारीकरण के लिये योजनाएं
14. **1994:** बच्चों को घातक उद्योगों में श्रम से निकालकर स्कूलों तक पहुंचाने और शिक्षा के अवसर प्रदान करने के लिये चाइल्ड लेबर इरेडिकेशन स्कीम (CLES)
15. **1995:** स्कूलों में बच्चों के दाखिले, उपस्थिति बढ़ाने के लक्ष्य के साथ उन्हें बेहतर पोषण उपलब्ध कराने के लिये प्राइमरी स्कूलों में मिड—डे मील योजना
16. **1995:** गरीबी रेखा से नीचे जीवनयापन करने वाले लोगों के लिये नेशनल सोशियल असिस्टेंस प्रोग्राम (NSAP)
17. **1997:** महिला साक्षरता दर के लिहाज से बेहद पिछड़े क्षेत्रों में जिलास्तर पर बालिका विद्यालयों की स्थापना कस्तूरबा गांधी शिक्षा योजना (Kastoorba Gandhi Education Scheme) के तहत की गयी
18. **1997:** नगरीय रोजगार की व्यवस्था के लिये स्वर्ण जयंती नगरीय रोजगार योजना
19. **1998:** बालिका शिशुओं की देखभाल और उनके जीवनस्तर में सुधार के लिये भाग्यश्री बाल कल्याण योजना
20. **1999:** वरिष्ठ नागरिकों को दस किलो खाद्यान्न उपलब्ध कराने के लिये अन्नपूर्णा योजना
21. **2000:** गरीबी रेखा से नीचे जीवनयापन करने वाले लोगों को बीमा कवर उपलब्ध कराने के लिये जनश्री बीमा योजना
22. **2000:** निर्धन वर्ग को खाद्य सुरक्षा देने के मकसद से अन्त्योदन योजना
23. **2005:** National Child Labour Project (NCLB)
24. **2015:** स्मार्ट सिटी मिशन
25. **2015:** अमृत योजना
26. **2015:** प्रधानमंत्री आवास योजना

13.6 निष्कर्ष (Conclusion)

नगरीय नियोजकों से यह उम्मीद की जाती है कि वे एक समावेशी नगरीय नीति तैयार करेंगे, जो भारत में नगर निकायों को गतिशील करने के साथ निकाय प्रशासन में सुधार, IDSMT कार्यक्रम के जरिये स्थानीय आर्थिकी में निवेश की व्यवस्था, 1989 की NRY की तरह रोजगार के अवसर प्रदान करने और EIUS तथा UBSP योजनाओं के जरिये मलिन बस्तियों में बेहतर सुविधाएं मुहैया कराने का काम कर सकें। (planning tank, 2017). ये सभी कार्यक्रम देश के सभी राज्यों में क्षेत्रीय अंतर को दूर करने के लिये सक्रिय रूप से लागू किये जाने चाहिये। 74वें संविधान संशोधन को नगर निकायों के जरिये लागू किया जाना चाहिये। नगरीय नीतियों को प्रत्यक्ष और प्रभावी रूप से गरीबी उन्मूलन, बेरोजगारी को खत्म

करने पर काम करना चाहिये। नगरीय अनौपचारिक सेक्टरों में श्रमिकों की अच्छी–खासी तादाद है। इन सेक्टरों का उच्चीकरण और नगरीय अर्थव्यवस्था में एकीकरण किया जाना आवश्यक है।

13.7 अभ्यास प्रश्न (Model Questions)

1. नगरीय नीति के बुनियादी सिद्धांत क्या हैं? भारत के सन्दर्भ में इन्हें किस तरह लागू किया गया है?
2. नगरीय विकास कार्यक्रमों को पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से कैसे लागू किया गया? विस्तार से समझाएं।
3. स्वतंत्रता के बाद भारत में नगरीय विकास कार्यक्रमों की जानकारी दें। हर योजना के पीछे क्या लक्ष्य और उद्देश्य थे, इसे भी समझाएं।

13.8 सहायक अध्ययन (Suggested Readings)

Harvey, D. (2008). "The right to the city", New Left Review, 53, pp. 23-40.

V.Gnaneshwar (1995), "Urban Policies in India Paradoxes and Predicaments",Habitat Intl. Vol. 19, No. 3, Pp. 293-316, 1995

Singh,M.S(2014),shodhganga.inflibnet.ac.in/bitstream/10603/31999/.../n14-various%20programme.pdf

Nath. V, "Urbanisation in India: Review & Prospects", EPW. Vol. XXI. No.8, Feb.22, 1986, p .339

Turok, I. (2014). "South Africa's tortured urbanization and the complications of reconstruction". In McGranahan, G. and G. Martine, eds. Urban Growth in Emerging Economies, London: Rutledge.